महर्षिपराशरविरचितः

गुल्मवृक्षायुर्वेदः

(वनस्पतिविज्ञान और आहारवेद सहित)

सम्पादक एवं अनुवादक

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

एवं

मुन्नालाल डाकोत

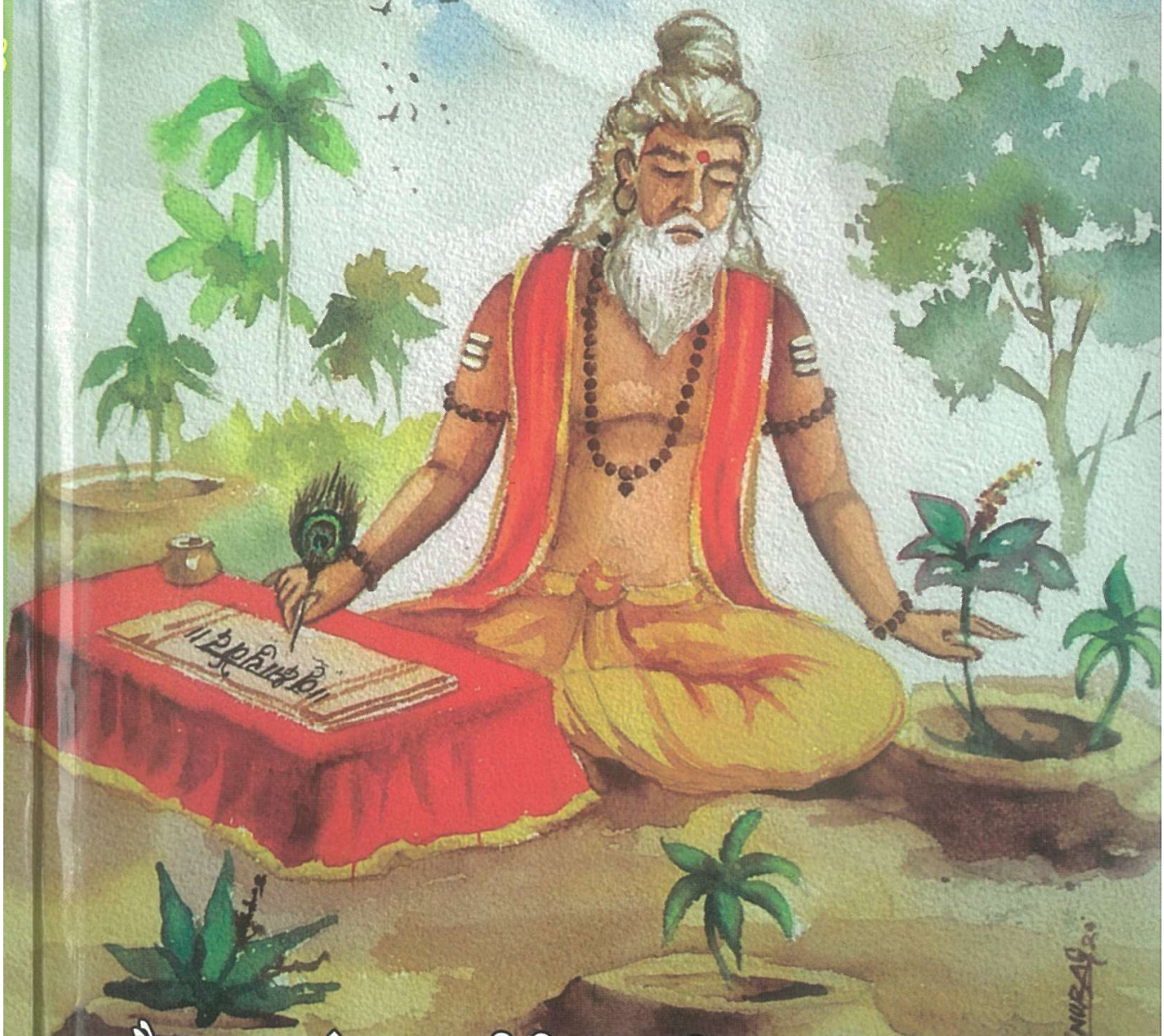

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

बनारस आयुर्वेद सीरीज
११४
***

महर्षिपराशरविरचितः

गुल्मवृक्षायुर्वेदः

(वनस्पतिविज्ञान और आहारवेद सहित)

मूलपाठ सहित अनुवाद और यथास्थान पर्याप्त टिप्पणियों से अलंकृत

सम्पादक एवं अनुवादक
डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'
एवं
मुन्नालाल डाकोत

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि०सं० २०७८, सन् २०२१

© डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

परम श्रद्धेय पिताश्री व सद्गुरु नित्यलीलास्थ

पण्डितप्रवर श्रीमद् मोहनलालजी चौहान

की पुण्यस्मृति को...

श्रीकृष्ण।

पुरोवाक्

प्रकृति बहुत दानी है और जितने रूपों में उसने प्राणियों के हित में द्रव्यादि दिए, उनका कोई मोल नहीं, आभार के लिए कोई शब्द नहीं। वह फलती-फूलती है तो प्राणियों के हित के लिए और दयार्द्र होती है तो आहार से लेकर आयुष्य के लिए। प्रकृति के जो गुण हैं, उनका अनुभव लगभग प्रत्येक प्राणी ने किया और लिया है। वेदों में क्रियाशील होकर पृथ्वी के उत्पादक गुणों को बनाए रखने का निर्देश है और उसके उत्पादों को सादर ग्रहण करने पर जोर है। पृथ्वी को इन्हीं गुणों के कारण प्रणम्य कहा गया है- यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमां पञ्चकृष्टयः। भूम्यै पर्जन्य पत्न्यै नमोस्तु वर्षमेदसे॥ *(अथर्ववेद 12, 1, 42)*

प्रकृति के वनस्पति स्वरूप का अध्ययन जिस अनुशासन में किया जाता है, उसको तीसरी शताब्दी ईसापूर्व, चाणक्य ने 'गुल्मवृक्षायुर्वेद' के नाम से कहा है। *(अर्थशास्त्र अधिकरण 2, 24)* इसमें भूमि पर उत्पन्न होने वाले गुल्म, लता, पेड़ आदि को उगाने से लेकर उनके उत्पादन की विधियों और रोग होने पर उपचार तक के अनुभवाधारित मन्तव्य मिलते हैं। इसमें धान्य (अनाज), कोशीधान्य (फली में होने वाले उड़द, मूँगादि), काण्डबीज (काण्ड के पर्वादि से होने वाले ईख इत्यादि), कन्दबीज (भूमिकन्द), अस्थिबीज (फलों में निष्पन्न होने वाले कपास, गाजर आदि) और शाखीबीज (शाखाधारित फल के बीज)- आदि रूपों में धान्यादि वनस्पतियों का वर्गीकरण किया गया है- कोशी धान्यानां मधुघृतशूकरवसाभिः शकृद्युक्ताभिः काण्डबीजानां छेदलेपो मधुघृतेन कन्दानां, अस्थिबीजानां शकृतदालेपः शाखिनां गतं दाहो गोस्थिशकृद्भिः काले दोहदं च।। *(उपर्युक्त 2, 24, 41, 32)* महर्षि सुश्रुत ने प्रकृति से प्राप्त होने वाले पदार्थों के 37 गणों का संक्षेप से विवरण दिया है- समासेन सप्तत्रिंशद् द्रव्यगणा भवन्ति।

प्रस्तुत ग्रन्थ गुल्म-वृक्षायुर्वेद इस समग्र विषय का अनुपम ग्रन्थ है। यह महर्षि पराशर प्रोक्त है और इसमें भारतीय वनस्पति विषयक अनुभवों का सम्यक् परिपाक हुआ है। पराशर के नाम और चरित्रादि से भारतीय जनमानस सुपरिचित है। इण्डोनेशिया में प्रचलित महाभारत के रूप में 'काकविन भारतयुद्ध' में एक अलग सी सूचना पराशर के सम्बन्ध में मिलती है। जिसके अनुसार पराशर ने अपना नाम परिवर्तित कर लिया था। वह राजा हुए और सत्यवती के साथ रहे। इससे लगता है कि पराशर ही शन्तनु या शान्तनु थे। कृष्णद्वैपायन व्यास का विवाह विचित्रवीर्य की पत्नियों से हुआ। शान्तनु के बारे में निरुक्त (2, 12) में आता है—शन्तनुः शं तनोऽस्विति वा। शमस्मै तन्वा अस्विति वा। इसका आशय हुआ स्पर्श (परस) से कल्याण करने वाले, स्पर्श से प्राणियों के तन को व्याधिमुक्त कर देने वाले शन्तनु या पराशर। (काकविन भारतयुद्ध प्रो. आर. एम. सुन्जिप्तो विर्जोसुपर्तो द्वारा अनुदित) इसको

युगापेक्षा के अनुसार सर्वजनोपयोगी जानकर न केवल वनस्पतिविदों के लिए तैयार किया गया है अपितु संस्कृतविदों के उपयोग को भी दृष्टिगत रखा गया है। यह ग्रन्थ वनारण्य संस्कृति के अध्ययन-अध्यापन का सुन्दर ज्ञान प्रदान करता है और आयुर्वेदविदों के लिए औषधीय अध्ययन का मार्ग भी प्रशस्त करता है। प्रस्तुत पाठ में आहारवेद पर शास्त्रीय विमर्श संयुक्त कर शाकाहार को जन-जन में बढ़ावा देने का प्रयास भी किया गया है।

इसके अनुवाद में निष्काम सहायता शिक्षाविद्, आदरणीय श्रीमुन्नालालजी डाकोत ने की है। उन्होंने मुगलकालीन इतिहास के मूल ग्रन्थों का अनुवाद किया और फिर पुराणादि पर पार्जीटर, हाजरा प्रभृति विद्वानों के ग्रन्थों पर भी श्लाघ्नीय कार्य किया है। मेरे आग्रह पर उन्होंने इस ग्रन्थ के मूलपाठ का अनुवाद ही नहीं किया बल्कि इसकी विषय वस्तु पर पर्याप्त विमर्श भी किया है। उनके प्रति धन्यवाद कहना बहुत लघु लगता है, मैं उनका अतीव आभारी हूँ।

इसमें सन्दर्भ शोधन के लिए ज्येष्ठपुत्री आयुष्मति डॉ. अनुभूति चौहान, टंकण के लिए कनिष्ठपुत्री आयुष्मति अनुकृति चौहान और पुत्र चि. गौरव चौहान ने यथासाध्य श्रम किया। अग्रज श्रीपुष्कररराजजी, सहधर्मिणी पुष्पा चौहान, अनुज श्रीअरविन्द चौहान ने भी पर्याप्त सहायता की। मैं सबका ऋणि हूँ। चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी इसके सुन्दर प्रकाशन के धन्यवादार्ह है और मुखपृष्ठ तैयार करने के लिए अनुजवत् श्रीअनुराग मेहता का अनेकशः आभार स्वीकारता हूँ। अनुवाद और सन्दर्भ आदि के लिए जिन ग्रन्थों का उपयोग किया है, उनके प्रकाशकों, सम्पादकों, अनुवादकों आदि के प्रति विनम्रभाव लिए हूँ। इसमें जो अच्छाइयाँ हैं, वे नन्द-नन्दन, आनन्दकन्द प्रभुवर श्रीनाथजी की कृपा का सफल रूप है और जो कुछ त्रुटियाँ हों, उनके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। विद्वज्जन हमारा सदैव मार्गदर्शन करेंगे। शुभमस्तु...

उदयपुर,
मार्गशीर्ष कृष्णा चतुर्दशी, संवत् 2077
13 दिसम्बर, 2020 ई.

विदुषां वशंवदः
श्रीकृष्ण 'जुगनू'

महर्षि पराशर और उनका शास्त्रीय अवदान

महर्षि पराशर को वनस्पति विद्या के आद्य उपदेशकों में गिना जाता है। संस्कृत ग्रन्थों में पराशर की गणना मरीचि, भृगु, दक्ष, नारद, व्यास, वसिष्ठ, भार्गव, वाल्मीकि, अगस्त्य, गर्ग और गौतम जैसे महर्षियों के साथ मनोरथ को पूर्ण करने वालों मांगलिकों के रूप में की गई है- मुनिर्मरीचिर्भृगुदक्षनारदाः पराशरो व्यासवशिष्ठभार्गवाः। वाल्मीकि कुम्भोद्भव गर्गगौतमाः कुर्वन्तु वः पूर्णमनोरथं सदा॥ कृषिपराशर में उनको 'कृषिपुराणज्ञ' कहा गया है- फलत्यवेक्षिता स्वर्णं दैन्यं सैवानवेक्षिता। कृषिः कृषिपुराणज्ञ इत्युवाच पराशरः।। *(कृषिपराशर 79)* हमारे यहाँ पराशर ज्ञान-वचनों की सुदीर्घ परम्परा रही है। चित्तौड़गढ़ के पास नगरी-घोसुण्डी से प्राप्त द्वितीय शती ईसापूर्व के एक अभिलेख में पाराशरीय पुत्र अश्वमेध यज्ञकर्ता राजा सर्वतात् का उल्लेख मिलता है जिसने नारायण वाटिका के लिए शिलाओं से प्राकार का निर्माण करवाया था। यह प्राचीन काल में पराशरीय कुल परम्परा का प्रमाण है।

विष्णुपुराण में सृष्टि रचना के अन्तर्गत महर्षि पराशर ने पादपवर्गों का जो वर्णन किया है, वह इस वनस्पति विद्या का प्राचीनतम अध्ययन कहा जा सकता है। इस पुराण का पाठ सर्वाधिक प्रमाणिक माना जाता है। इसमें वृक्षविद्या को 'उद्भिद् विद्या' कहा गया है और वृक्षों को संवृतात्मा या मूढ़स्वभावी बताया गया है। साथ ही उन्हें मुख्य सर्ग भी स्वीकारा गया है। इसका यह आशय है कि वे मुख्यसृष्टि हैं और उनमें जीवन पाया जाता है। *(विष्णुपुराण : प्रथमांश, 5, 6-7)*

प्रारम्भिक पुराणकाल में वनस्पतियों का अध्ययन आश्चर्यजनक रूप में मिलता है। वायुपुराण के उपोद्घातपाद में कश्यपीय प्रजासर्ग में वृक्षों, लता, वल्लरियों को भी प्रजा के रूप में स्वीकारा गया है। पुराणकार ने गरुड की सन्ततियों के बाद इरा की तीन पद्मनेत्र कन्याओं के बारे में कहा है कि वे मानुषी कन्याएँ थीं और उनके नाम लता, वल्ली और वीरुधा थे। इनमें से लता ने नदी के तटवर्ती प्रदेशों में स्थित, पुष्परहित वनस्पतियों को उत्पन्न किया। साथ ही पुष्पों व फल से युक्त वृक्षों को भी जन्म दिया। वल्ली ने गुल्मों को उत्पन्न किया। समस्त तृण जाति तथा त्वक्सार या जिनकी छाल में ही सार हो और बाँस आदि को भी जन्म दिया। वीरुधा की सन्ततियाँ वीरुध या विस्तार से फैलने वाली लताओं के नाम से प्रसिद्ध हुईं-

इरा प्रजज्ञे कन्या वै तिस्रः कमललोचनाः॥
वनस्पतीनां वृक्षाणां वीरुधां चैव मातरः।
लता चैवाथ वल्ली च वीरुधा चेति तास्तु वै॥
लता वनस्पतीञ्जज्ञे ह्यपुष्पान्पुलिनस्थितान्।
युक्तान् पुष्पफलैर्वृक्षाँल्लता वै सम्प्रसूयते॥

अथ वल्ली तु गुल्मांश्च त्वक्सारास्तृणजातयः।
वीरुधा तदपत्यानि वंशश्चात्र समाप्यते॥

—(वायु. 69, 339-342)

अमरकोशकार ने 'वानस्पत्य फलैः पुष्पात् तैरपुष्पाद् वनस्पति' कहकर वृक्षों की दो काटियाँ बताई हैं- वानस्पत्यः और वनस्पति। इनमें वानस्पत्य वे कहे जाते हैं जो वृक्ष क्रमशः पुष्प एवं फल देते हैं, जैसे आम- पुष्पाज्जातैः फलैः उपलक्षितो वृक्षो वानस्पत्यः एकं आम्रादे। दूसरे वनस्पति वे हैं जो पुष्व व फल नहीं देते हों, जैसे उदुम्बर, पनसादि- अपुष्पात् पुष्प विना जार्ते फलैः उपलक्षितो वृक्षो वनस्पतिः एकं पनसोदुम्बरादेः द्रुम मात्रेऽपि वनस्पतिः। *(अमरकोश द्वितीयकाण्ड, वनौषधिवर्ग, 6)* भागवतपुराण जिसका पर्याप्त आधार पराशर प्रोक्त विष्णुपुराण है, में वृक्षों के छह अंगों का नामोल्लेख सुश्रुतादि सम्मत है- वनस्पति, ओषधि, लता, त्वक्सार, वीरूध और द्रुम। यद्यपि इनमें प्रत्यक्ष ज्ञान शक्ति का अभाव होता है लेकिन वे अन्तस्थ में स्पर्श की अनुभूति कर सकते हैं। इनमें भी प्रत्येक में कोई न कोई गुण पाया जाता है-

वनस्पत्योषधि लतात्वक्सारा वीरूधो द्रुमाः।
उत्स्त्रोतसस्तमः प्राया अन्तःस्पर्शा विशेषिणः॥ *(भागवत. 3, 10, 18-19)*

पाराशर स्मृति :

महर्षि पराशर के नाम से प्रसिद्ध पाराशरस्मृति में वानस्पतिक उत्पादों को निरन्तर बनाए रखने का निर्देश मिलता है। भले ही इसके लिए बीजों की बुवाई ही क्यों न करनी पड़े-

वापयेत् सर्वबीजानि सा कृषिः सर्वकामिका॥
सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम्।

—(पाराशरस्मृति 1, 64-65)

इस श्लोक में स्पष्ट कहा है कि अच्छे सन्दूक में जिस तरह धन को सुरक्षित किया जाता है, वैसे ही अच्छे खेत तैयार कर समस्त प्रकार के बीजों की बुवाई कर उत्पादन करना चाहिए। यह समस्त कामनाओं की सिद्धि का हेतु है। वह यह भी कहते हैं कि वृक्षों की कटाई से लगने वाले दोष, पृथ्वी को हल से फाड़ने तथा लोह निर्मित हल के मुँह से जोतने के कारण निधन को प्राप्त होने वाले कृमि-कीटादि के पातकों के बावजूद कृषि कर्म उत्तम है क्योंकि यह मानव के आत्मनिर्भर होने की दिशा में एक सशक्त उपाय है-

वृक्षांश्छित्वा महीं भित्त्वा हत्वा च कृमिकीटकान्।
कृषिं साध्विति मन्यते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता॥

—(उपर्युक्त 2, 16)

पराशर के नाम से कृषि और वृक्ष विद्या के रूप में 'कृषिपराशर' और 'वृक्षायुर्वेद' ग्रन्थ ज्ञात है और 'बृहत्पाराशरी' का कृषि प्रकरण अभी प्रकाशन की प्रतीक्षा में है। इसके अतिरिक्त 'पराशरसंहिता' नामक एक अन्य ग्रन्थ की सूचना हमें 'वीरमित्रोदय' के लक्षणप्रकाश से मिलती है। मित्र मिश्र ने उसी से हाथियों की भद्रा, मन्दा, मृगा और मिश्र जातियों का उद्धृत किया है। *(लक्षणप्रकाश : गजलक्षण प्रकरण, पृष्ठ 329-330, 352, 355, 490, 494 आदि)* गजों के पराशरप्रोक्त लक्षणों को बृहत्संहिता के विवृत्तिकार उत्पल ने भी उद्धृत किया है। इससे ज्ञात होता है कि 9वीं सदी से पूर्व पराशरसंहिता अस्तित्व में आकर प्रसिद्ध हो चुकी थी।

कृषिपराशर :

कृषिपराशर में कृषि का महत्व प्रतिपादित किया गया है और प्रथमत: कहा है कि अन्न प्राण है, अन्न मन का बल है और अन्न सर्वार्थ साधन है। मनुष्य ही क्या, देवता व असुर भी अन्न चाहते हैं, सभी जीवधारियों के लिए अन्न आवश्यक हैं- अन्नं प्राणा: बलमन्नमन्नं सर्वार्थसाधनम्। देवासुरमनुष्याश्च सर्वेचान्नोपजीविन:।। *(कृषिपराशर 6)* इसमें अन्नोत्पादन के लिए वृषि विषयक महत्वपूर्ण सूचनाएँ हैं जो ग्रन्थ को सर्वोपयोगी बनाती हैं। इसके बाद वृषभादि वाहन विधान, गोशाला, खेत, हल, गोमय कूटोद्धार, बीज, मेधिरोपण, संवत्सर, ग्रह, ऋतु, योग, राशि आदि का प्रामाणिक वर्णन हैं।

पराशर ने सस्योत्पादन में अभिवृद्धि के लिए जो उपाय बताए गए हैं, उनमें खेत में सहभोज का प्रसंग रोचक है। उक्त ग्रन्थ में पौष मास में लोगों द्वारा समूह बनाकर पुष्य-यात्रा उत्सव आयोजित करने का सन्दर्भ उपलब्ध है। यह प्राचीन काल में वैसे ही होता था, जैसा कि कुछ समय पहले तक खेतों में सहभोज रखने का प्रचलन था। कहा गया है कि पौष मास में जबकि फसल खड़ी हो, तब कोई शुभ दिन देखकर लोगों को जुटाकर एक खेत से दूसरे खेत तक पुष्य-यात्रा का आयोजन करना चाहिए-

अखण्डिते ततो धान्यो पौषे मासि शुभे दिने।
पुष्ययात्रां जना: कुर्युरन्योन्यं क्षेत्र सन्निधौ।।

—(कृषिपराशर 221)

पराशर ने कहा है : लोगों को चाहिए कि वे बस्ती के वृद्ध सज्जनों को साथ लें और यात्रा के बाद भोजन पकाएँ। इसमें खीर, मत्स्य मांस तथा शाकाहारी भोजन हों। निरामिष भोजन हींग, मरिच आदि से युक्त हों। दही, दूध, घी का प्रयोग करते हुए खीर बनाएँ और पानक द्रव्य भी तैयार करें। भोज में अनेक प्रकार के फलों का प्रयोग करें जिसमें मूल भी हों। मिठाइयों और पिष्टक से भोजन को विस्तार देना चाहिए और अन्नादि को केले के पत्तों (पत्तल) पर परोसकर वृद्धों के आगे रखना चाहिए। इसके बाद, आचमन करते हुए परस्पर घिसे हुए चन्दन का लेपन करें और सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग

भी करें। इस यात्रा में सभी नवीन वस्त्रों से अलंकृत हों। ताम्बूल का प्रयोग करें। फूलों के आभरण धारण करें। लोग इन्द्रदेव को नमस्कार करते हुए गाजे-बाजे के साथ नृत्यादि भी करें। तत्पश्चात् सभी को भास्कर की ओर देखकर मन्त्र पाठ करना चाहिए। इसके चार श्लोक दिए गए हैं-

क्षेत्रे चाखण्डितधान्ये पुष्ययात्राप्रभावतः।
अस्माभिर्मानिता सर्वैः सास्मान् पातु शुभप्रदा॥
कर्मणा मनसा वाचा ये चास्माकं विरोधिनः।
सर्वे ते प्रशमं यान्तु पुष्पयात्राप्रभावतः॥
धान्यवृद्धिः यशोवृद्धिः प्रवृद्धिर्दारपुत्रयोः।
राजसम्मानवृद्धिश्च गवां वृद्धिस्तथैव च॥
मन्त्रशासनवृद्धिश्च धनवृद्धिरहर्निशम्।
अस्माकमस्तु सततं यावत् पूर्णो न वत्सरः॥

—(कृषिपराशर 229-232)

उक्त मन्त्रमय प्रार्थना में यह कामना की गई है कि इस अविभाजित धान्य के खेत पर हम सभी लोगों द्वारा सम्मानित लक्ष्मी पुष्य-यात्रा के प्रभाव से हमें शुभफल प्रदान करें। हमारी रक्षा भी करें। जो कोई मन-कर्म-वचन से हमारे विरोधी हों, वे इस पुष्य-यात्रा के प्रभाव से शान्त हो जाएँ। हमारे लिए इस उत्पादित होने वाले धान्य की अभिवृद्धि हो, कीर्ति का प्रसार हो। स्त्री और पुत्रों की वृद्धि हो। राजकीय सम्मान की वृद्धि हों, गोधन की अभिवृद्धि हों। शासन के मन्त्रियों की वृद्धि हों, धन की अहर्निश अभिवृद्धि हों। ऐसी वृद्धि का क्रम तब तक निरन्तर रहे, जब तक कि यह वर्ष पूरा न हो जाए।

यह भी रोचक प्रसंग है कि समस्त मनोरथ पूर्ण करने वाली इस यात्रा को मुनि पराशर ने ही प्रवर्तित किया था- हिताय सर्वलोकानां पुष्ययात्रा मनोहरा। पुरा पराशरेणेयं कृता सर्वार्थसाधिनी। ग्रन्थ में यह भी कहा गया है कि फसल की अभिवृद्धि और समस्त बाधा-विघ्नों के शमन के लिए इस पुष्य-यात्रा का आयोजन करना चाहिए- तस्मादियं प्रयत्नेन पुष्ययात्राविधानतः। सर्वविघ्नप्रशान्त्यर्थं कार्या शस्यस्य वृद्धये।। *(उपर्युक्त 234-235)* इस प्रकार पराशर के कृषि और वृक्ष विषयक नियमों पर आधारित ग्रन्थों की प्राप्ति होती रही है।

बृहत्पाराशरी :

इस ग्रन्थ एक हस्तलिखित पाण्डुलिपि राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा में संग्रहित है। यह मातृका संवत् 1731 तद्नुसार 1674 ई. की है। इसमें तीसरा अध्याय कृषि प्रकरण नाम से मिलता है। कोशकारों ने उसका प्रयोग अपने शोध कार्यों में

किया है और अनेक शब्दों के व्यवहार के रूप में पराशरीय परिभाषाओं को उद्धृत किया है। उसके कतिपय उदाहरण यहाँ दिए जा रहे हैं-

मुनि पराशर ने खेत की सुरक्षा के लिए पर्याप्त जोर दिया है और खर, ऊँट, बकरियों, कुत्ता, सुअर, सियार, कौआ, उलूक, कपोत आदि से बचाकर रखने को कहा है। यह भी कहा है कि खेत की बाड़ को कोई सुअर, अश्वादि पशु उलंघन नहीं कर सके, ऐसी बाड़ की रचना करें कि हरिण आदि से भी कोई भय नहीं हो-

खरोष्ट्राजोरणस्तथाविशतस्तु निवारयेत्।
श्वशूकर शृगालादीन काकोलूक कपोतकान्॥
न लङ्घयेत् पशुर्नाश्वो नाभियात् यां च शूकरः।
बन्धाश्च यत्नतः कुर्याद् मृगाद्युत्त्रासनाय च॥

—(बृहत्पाराशरी 3, 57-58)

कृषि कार्य के बारे में यह भी कहा है कि रास्ते में बुवाई नहीं करनी चाहिए क्योंकि वहाँ आते-जाते वाहनों से दुःख, हानि सम्भावित है। चूँकि खेत को कोई भी पशु आदि हानि पहुँचा सकता है, ऐसे में उसके चारों ओर इतनी ऊँची बाड़ हो कि ऊँट भी नहीं देख सकें। वहाँ पर राजजन्य युद्धादि कोई उपद्रव नहीं होना चाहिए, चोरों का भय भी नहीं हो। खेत को प्रयत्नपूर्वक सुरक्षित रखा जाए। घर की तरह उसका बाड़बन्दी होनी चाहिए। आने-जाने के लिए एक ही द्वार रखना चाहिए। वहाँ पर बीजूका बनाकर बाँधने का निर्देश भी है-

वाहयेन्न पथि क्षेत्रं वाहयन् दुःख भाग्भवेत्।
क्षेत्रेष्वेव वृत्तिं कुर्यात् यामुष्ट्रो नावलोकयेत्॥
तत्राप्युद्रवं राजा तस्करादि समुद्भवम्।
संरक्षेत् सर्वतो यत्नात् तस्मात् गृहवत्थसोकरान्॥
चतुर्दिक्षु खले कुर्यात् प्रोच्चामति घनां वृतिः।
सेकद्वारं पिधानां चापि दध्याच्चैव सर्वतः।।

—(उपर्युक्त 3, 27-29)

धान्यराशि (रास) जब जमा कर दी गई हो तो वहाँ पर राख या जलधारा का प्रबन्धकर सुरक्षा करनी चाहिए-

रक्षां च भस्मना कुर्यात् जलधाराभिः रक्षणम्॥

—(उपर्युक्त 3, 158)

इसी प्रकार मेधि कार्य के अवसर पर खलयज्ञ करने का निर्देश भी दिया गया है। इसमें कहा गया है कि तीनों ही संध्याकाल में हल की रेखा का पूजन करें और परशर ऋषि का स्मरण करना चाहिए लेकिन उस धान्यराशि के आगे प्रेत-भूतादि जैसे किसी नाम

को नहीं बोलना चाहिए। सूतिकागृह की तरह उस धान्यराशि की रक्षा करनी चाहिए। किसी भी हरणकर्ता से रक्षा का उपाय सुनिश्चित करना चाहिए। इस प्रकार खल या धान्यराशि का उचित कालानुसार यजन करें और आगन्तुकों को भक्तिपूर्वक उचित अंश प्रदान करना चाहिए-

त्रिसंध्यामर्चयेत्सीतां पराशरं ऋषिं स्मरन्।
प्रेतभूतादि नामानि न वदेत् तदग्रतः॥
सूतिका गृहवत् तत्र कर्त्तव्यं परिरक्षणम्।
हरन्त्यरक्षितं यस्तात् रक्षांसि सर्वमेव हि॥
यजेत् खलभिक्षाभिः काले रोहिण एव हि।
भक्त्यास्तु प्रदत्तं हि तत्समस्तमिहायम्॥

—(*बृहत्पाराशरी* 3, 61-62, 64)

उत्पादित धान्य के बारह, नौ, सात या पाँच की संख्या में अलग-अलग भाग करने और जोतने वाले किसान एवं क्षेत्रपति आदि के लिए सुरक्षित करने का निर्देश भी पराशर ने दिया है-

द्वादशो नवमो वापि सप्तमं पञ्चमोपि वा।
धान्यभागः प्रदातव्यः शीरिणा क्षेत्रिणो ध्रुवम्॥

—(उपर्युक्त 3, 44)

खलयज्ञ के प्रसंग में यह निर्देश भी है कि किसान विप्रों आदि को अन्नदान करें। विवाह का अवसर हो या खलयज्ञ, संक्रान्ति हो या ग्रहण-पर्व हो, पुत्र उत्पन्न हुआ हो या व्यतीपात् का योग हो- ऐसे अवसरों पर अन्नदान अक्षयफल प्रदान करता है। अन्य याचकों भी भी दयापूर्वक अन्नदान करना चाहिए-

एतदुद्दिश्य विप्रेभ्यो दद्याच्च प्रथमं हली।
विवाहे खलयज्ञे च संङ्क्रान्तौ ग्रहणेषु च॥
पुत्रजाते व्यतीपाते दत्ते भवति चाक्षयम्।
अन्येषामर्थिनां पश्चात् कारुणां ततः पुनः॥

—(उपर्युक्त 3, 67-68)

ग्रन्थ में गेंहूँ आदि धान्यों की बुवाई, लवन आदि कार्यों के लिए कहा है-

वापने लवने क्षेत्रे खले गन्त्री प्रवाहणे।
एष एव विधि ज्ञेयो धान्यानां च प्रवेशने॥

—(*उपर्युक्त 3, 20*)

पराशर ने हल के लिए 'कुह' शब्द काम में लिया है जिसका प्रमाण 48 अंगुल दिया गया है- चत्वारिंशत् तथा चाष्टावङ्गुलानि कुह स्मृतः। *(उपर्युक्त 3, 60)* इसी में

बैल हाँकने के लिए प्रयुक्त होने वाले दण्ड के लिए 'प्रतोद' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसके लिए समग्रन्थि बाँस का उपयोग करने और उसके आगे के भाग में यवाकार लोहे की कील लगाने का निर्देश दिया गया है। उसकी लम्बाई 4 हाथ होगी और बैलों के सामर्थ्य के अनुसार न्यूनाधिक करने की अनुमति दी है-

प्रतोदश्च समग्रन्थि बैणवश्च चतुः करः॥
तदग्रे तु प्रकर्तव्या यवाकारा तु लोहकम्।
हीनातिरिक्तं कर्त्तव्यं नैव किञ्चित्प्रमाणतः॥
कुर्यादनडुहां दैन्यादैन्या नरकं व्रजेत्।
यथा दृष्टं यथा शोभं वाहकस्य प्रमाणतः॥

—(*बृहत्पाराशरी 3, 73-75*)

हल के नीचे के मोटे एवं भारी भाग में लकड़ी का 26 अंगुल का एक नुकीला उपकरण लगाया जाता है, जिसमें लगा लोह फाल विदारण का कार्य करता है, यह सम्भवतः प्रतिहारी हो-

बध्वा हि प्रतीहारी षड्विंशदङ्गुला भवेत्।
सुतीक्ष्ण लोह फालाश्च मृक्षसादि विदारकृत॥

—(*उपर्युक्त 3, 67*)

इसी प्रकार मंगलभोज के बाद हल और उसका बेझ जिसमें हाल फँसाई जाती है, का परिमाण इस प्रकार दिया है-

अथोर्द्वमङ्गलेभोज्यो हलीषा वेधतश्च यः॥
प्राञ्जला सप्तहस्ता तु चतुरस्राग्र वर्तुला।
शालादि शुभकाष्ठानां हलीषं विदुषा मता॥
तस्या वैथः कर्णायाः कार्यो न च वितस्तिभिः।
नीचोच्च वृषमानेन तज्ञास्तां प्रवदन्ति हि॥

इसी प्रकार जूड़े और सोलों का परिमाण इस प्रकार कहा है-

चतुर्हस्तं युगं कार्यं स्कन्धस्थानेर्द्धचन्द्रवत्॥
मेष शृङ्गा कदम्बस्य शालाद्यन्यतमस्य च।
शम्या वेधा बहिः कार्यादशाङ्गुल प्रमाणिका॥
तन्मानेन प्रवाली च तदन्तरं दशाङ्गुलम्।

—(*उपर्युक्त 3, 60, 70-73*)

बृहत्पाराशरी में कृषि कार्य में सहयोगी बैलों की महिमा में कहा गया है कि वे धान्योत्पादन में सहायक है, धान्यराशि का मर्दन करते हैं, गाड़ी और हल में जुतकर हमारा कल्याण करते हैं, उनसे अधिक हमारे सहयोगी इस भूमि पर और कौन हो सकते हैं-

उत्पादयन्ति सस्यानि मर्दयन्ति वहन्ति च।
आनर्यन्ति दवीयस्थमुक्षाणः को अधिको भुवः॥

—(*बृहत्पाराशरी* 3, 49)

पराशर ने बैलों से आधे दिन से अधिक काम नहीं लेने का निर्देश किया है और कहा है कि कार्य के बाद स्नान करना चाहिए-

वाहयेद्दिवसस्यार्द्धं पश्चात् स्नानं समाचरेत्।

—(उपर्युक्त 3, 5)

पराशरीय गोलक्षण :

पराशर ने बृहद्रथ के प्रति गोलक्षणों को कहा था। ऐसे किसी ग्रन्थ की सूचना हमें बृहत्संहिता (रचनाकाल 587 ई.) में प्राप्त होती है। क्या वह पराशरसंहिता है ? पराशर-बृहद्रथ संवाद रूप में पराशर की उक्त रचना की प्राप्ति होने तक हमें ऐसे द्वितीयक स्रोत पर ही निर्भर रहना होगा। वराहमिहिर ने उसका संक्षेपण अपने स्तर पर किया था- पराशरः प्राह बृहद्रथाय गोलक्षणं यत् क्रियते ततोऽयम्। मया समासः शुभलक्षणास्ताः सर्वास्तथाप्यागमतोऽभिधास्ये॥ (*बृहत्संहिता 61, 1*) वराह के वर्णन की विवृत्ति में उत्पलभट्ट ने पराशर के श्लोकों को उद्धृत किया है। यथा-

साश्रुणी लोचने यासां रूक्षाल्पे च न ताः शुभाः।
चलच्चिपिटशृङ्गाश्च करटाः खरसन्निभाः॥
दशसप्तचतुर्दन्त्योऽलम्बवक्त्रा न ताः शुभाः।

उक्त श्लोकों में कहा गया है कि ऐसा गोधन शुभ नहीं होता जिसकी आँखें आँसुओं से भरी रहती हों या रूखी रहती हों अथवा छोटी-छोटी हों। हिलते-डुलते सींग वाली, चपटे सींग वाली, काले-लोहित वर्ण वाली और गधे के समान दिखाई देने वाली, जिसके दाँत दस, सात या चार हों और जो लम्बे मुँह वाली हो, वह भी ठीक नहीं होती है।

विषाणवर्जिता ह्रस्वाः पृष्ठमध्यातिसन्नताः॥
ह्रस्वस्थूलगला याश्च यवमध्याः शुभा न ताः।
भिन्नपादा बृहदुल्फा याश्च स्युस्तनुगुल्फकाः॥
श्यावातिदीर्घजिह्वाश्च महत्ककुदसंयुताः।
याश्चातिकृशदेहाश्च हीना अवयवैश्च याः॥
न ता शुभप्रदा गावो भर्तुर्यूथस्य नाशना।

—(*बृहत्संहिता विवृत्ति 61, 2-4*)

इसी प्रकार बिना सींग वाली, कद में छोटी, जिसकी पीठ मध्य में बहुत झुकी हुई रहती हों, छोटी-मोटी गर्दन वाली और जौ के समान मध्य में मोटी हो, वह भी शुभ नहीं होती है। जिसके पाँव अलग-अगल पड़ते हों या जो फटे हुए खुर वाली हों, बहुत बड़े

अथवा बहुत छोटे गुल्फ प्रदेश वाली, श्याम वर्ण वाली लम्बी जिह्वा वाली, जिसके बहुत बड़े ककुद हों, जिसकी दैहिक रचना बहुत कृशकाय हो या जिसके अवयव कम हों- ऐसी गाय शुभप्रद नहीं होती है, कदाचित् वह गोस्वामी और गोसमूह का नाश करने वाली होती है।

बैल के विषय में पराशर का मत है कि जो पाँव तक कपिल हो, जिसके देह में श्याम वर्ण के पुष्प के समान चिह्न हो, जिसके नेत्र बिल्ली के समान नेत्र हो या कपिल वर्ण के नयन हों, जो दुर्बल हो वह अपने समूह का नाश करता है। जो बैल जोते जाने पर कीचड़ में गड़े हुए पाँव को उठाने की तरह पदचाप करता हो और जो दबी हुई पीठ वाला हो, वह बैल भार उठाकर चलने की दृष्टि से समर्थ नहीं होता है-

आपादक्षारकपिलाः कृष्णपुष्पचिताश्च ये।
मार्जारकपिलाक्षाश्च दुर्बला यूथघातिनः॥
पङ्कादिवार्त्ताः पादानुद्धरन्तो व्रजन्ति ये।
अधूर्वहा भवन्त्येते भाराध्वनि विगर्हिताः॥

—(बृहत्संहिता विवृत्ति 61, 7-9)

पराशर ने बैलों की संख्या बढ़ाते रहने पर जोर दिया है और राज्य की अर्थ व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण के लिए बैल-बल से कृषि कार्य के सम्पादन को अहम माना है। उस काल में बैलों के सहारे ही यान्त्रिक और अन्य वाहनादि के कार्य होते। उन्होंने कृषकोपयोगी पद्मक नामक बैलों के विषय में कहा है-

मृदुसंहतताम्रोष्ठास्तनुजिह्वास्तनुस्फिजः।
वैदूर्यमधुवर्णैश्च जलबुद्बुदसन्निभैः॥
रक्तस्निग्धैश्च नयनैस्तथा रक्तकनीनिकैः।
सिंहस्कन्धा महोरस्का दृढपुष्टाः ककुद्मिनः॥
भूमौ कर्षति लाङ्गूलं प्रलम्बस्थूलवालधिः।
पुरस्तादुन्नता नीचाः पृष्ठतः सुसमाहिताः॥

ऐसा बैल जो कोमल, मिले-जुले ताम्रवर्ण के बराबर होठ और वैसे ही तालु व जीभ व तनु स्फिज वाले, मूँगा व शहद जैसे वर्ण वाले और जल के बुलबुले के समान, लाल, चिकने नेत्रों वाले जिनमें रक्तिम कनीनिका हों, सिंह के समान कन्धे वाले, मजबूत छाती वाले, दृढ़ पीठ और बड़ी थूही-ककुद वाले, जिनकी लटकती हुई स्थूल वाल की पूँछ भूमि को स्पर्श करती हों और जो आगे से उन्नत और पीछे से निम्न आकार तथा जो अच्छी तरह रूप वाला हो, श्रेष्ठ होता है।

वृत्ताङ्गाः स्थूलगात्राश्च विस्तीर्णजघनाश्च ये।
स्पष्टताम्रतनुश्लक्ष्णैः शफैरविरलैर्दृढैः॥

समुद्गवरसंस्थानैः समास्फुटितपार्ष्णिभिः।
वृत्तस्थूलोद्धतग्रीवाः ककुदैश्च समुच्छ्रितैः॥
एते भारसहा ज्ञेया धुरि याने च पूजिताः।

जिस बैल के अंग अच्छी तरह के हों, ऐसे मजबूत शरीर वाला जिसके जघन फैले हुए हों और जो तांबे जैसे वर्ण और पतले लेकिन अविरल दृढ़ हों, जिसके संस्थान मुद्गवर हो, समान रूप से खुर खुलते हों, ग्रीवा वृत्तीय व मजबूत हो, ककुद उठा हुआ हो- ऐसे बैल को भार को उठाने वाला, वाहन की धुरि को धारण करने में समर्थ और पूजा के योग्य समझना चाहिए। इसी प्रकार कहा है—

आवर्तैर्दक्षिणावर्तैर्युक्ता दक्षिणतश्च ये॥
वामावर्तैर्वामतश्च संयुक्तास्तेऽपि पूजिताः।
प्रलम्बवृषणोत्यर्थं सङ्क्षिप्तोदरवङ्क्षणः॥
विस्तीर्णवक्षो जघनो भारे याने च पूजितः।
स्निग्धपिङ्गेक्षणश्वेतताम्रशृङ्गो महाननः॥
स तु गौः पद्मको नाम गोसहस्रवर्धनः।

—(बृहत्संहिता विवृत्ति 61, 19)

जिस बैल पर आवर्त (केशों की भँवरियाँ) दक्षिण-पार्श्व में दक्षिणावर्त और वाम-पार्श्व में वामावर्त हों, वह बैल सम्मान के योग्य होता है। लम्बाकार अण्डकोश और छोटा पेट, पिछली जंघा व अण्डकोश के बीच का भाग तथा अगली जंघाओं के बीच का भाग संकुचित हो, जिसके वक्ष व जघन विस्तीर्ण हों, वह वाहन-भार उठाने के लिए समर्थ होता है। चिकने पिंगल नेत्र, सफेद व ताँबे के वर्ण वाले सींग तथा बड़ा मुँह हों- ऐसा बैल पद्मक नाम वाला और हजार गायों की अभिवृद्धि करने वाला माना जाता है।

पराशर प्रश्न :

इसी प्रकार पराशर के कुछ मत टीकाकार उत्पल ने बृहत्संहिता की विवृत्ति में अंगविद्या के विषय में उद्धृत किए हैं जिनमें वृक्ष और धान्योषधि आदि के आधार पर प्रश्न के उत्तर निश्चित किए गए हैं। यह भी कहा गया है कि वहाँ पर प्रश्न नहीं करना चाहिए जहाँ पेड़ कटा-फटा, रूखा-सूखा, टेढ़ा-बाँका, कीड़ों का खाया, जला हुआ, काँटे वाला और क्रव्यादि अशुभ पक्षियों (काक, गृद्ध, बकादि) से युक्त हो। निन्दित नाम वाले पादपों की छाया, श्मशान, सुनसान गृह, चौराहा, सदैव ऊषर रहने वाले, शत्रु, नापित, आयुध और मद्य बिक्रीघर, नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम), आग्नेय कोण (पूर्व-दक्षिण), दक्षिण व पश्चिम दिशा, वायव्य कोण (उत्तर-पश्चिम) की ओर मुख करके प्रश्न करने से अनर्थ होता है, ऐसा जानना चाहिए—

छिन्नभिन्नशुष्करूक्षवक्रजन्तुजग्धदग्धकण्टकिक्रव्यादद्विजनिषेवितप्रशस्त

नामाङ्कितपादपच्छाय श्मशानशून्यायतनचत्वरोषररिपुनापितायुधमद्यविक्रयशालासु नैर्ऋताग्नेय याम्यवारुणवायव्याशाभिमुखः प्रचोदयेत्तस्येष्टमर्थमनर्थाय विन्द्यात्।

—*(बृहत्संहिता विवृत्ति 51, 6)*

जब कोई प्रश्न किया जाए, उस समय कौनसी वनस्पति अथवा द्रव्य दिखाई दे रहे हों, उनके बारे में पराशर का मत है कि उनसे निम्नानुसार फल होते हैं- पीप्पली के दिखाई देने पर दुष्ट स्त्रीजन्य चिन्ता, मरिच से पुरुषजन्य पाप, अदरक से मरण की चिन्ता, बकरी के घी से पुत्र विनाश, लोध से अर्थनाश, नागरमोथा से सर्वनाश, कूट से पुत्रनाश, वस्त्र से अर्थनाश, हीवेर से धान्यनाश, तगर से भूमि नाश, सौंफ से पशुधन का नाश और मांस से लोगों के नाश की चिन्ता होती है-

पिप्पलीनां दर्शने प्रदुष्टस्त्रीकृतां चिन्तां मरिचस्य पापपुरुषकृतां शृङ्गवेरस्य मृत चिन्ताम्। अजाज्याः सुतनाशकृतां रोध्रस्यार्थनाशकृतां मुस्तस्य सर्वनाशकृतां कुष्टस्य सुतनाशकृतां वस्त्रस्यार्थनाशकृतां हीवेरस्य धान्यनाशकृतां तगरस्य भूविनाशकृतां शतपुष्पया चतुष्पन्नाशाय मांस्या द्विपदनाशकृताम्। *(उपर्युक्त 51, 15-16)*

पराशर तन्त्र :

इसी प्रकार 'पराशरतन्त्र' का नाम भी उत्पल ने आदित्याचार अध्याय में लिया है जिसमें सूर्य की पाँच प्रकार की गति बताई गई है। *(उपर्युक्त 3, 5)* भूकम्पलक्षणाध्याय में भी स्मरण हुआ है- एवमुक्तपरिशेषाणां विशेषफलं नास्ति पराशरे तन्त्रे विशेषतरं पठ्यते। *(उपर्युक्त 32, 29)* उत्पल ने पराशर का एक श्लोक कुसुमलताध्याय में इस अर्थ में उद्धृत किया है कि जब वृक्ष-गुल्म पर फैली हुई किसी लता के पत्र छिद्ररहित और अच्छी तरह चिकने दिखाई देते हों तथा वे फल-फूल से युक्त हो तो वर्षा के लिए शुभ कहना चाहिए, यदि वृक्षों के लक्षण इसके विपरीत हों तो मौसम का फल भी विपरीत ही कहना चाहिए-अच्छिद्रपत्राः सुस्निग्धाः फलपुष्पसमन्विताः। निर्दिशन्ति शुभं वृक्षा विपरीतं विगर्हिताः॥ *(उपर्युक्त 29, 14)*

संध्यालक्षणाध्याय में पराशर के मत से कहा गया है कि यदि बन्धूक पुष्प विकसित होकर तपते हों या उदयकाल में सूर्य रज से संवृत्त हो तो शस्त्रभय होता है, शंख के चूर्ण की तरह सफेद धूल से सूर्य ढँका हुआ हो तो राजा की विजय की ख्याति और जनपद की अभिवृद्धि होती है- बन्धुजीवनिकाशेन तपनीयनिभेन वा। उदये रजसा सूर्यः संवृत्तः शस्त्रमावहेत्॥ शङ्खचूर्णनिकाशेन रजसा संवृतो रविः। राज्ञां विजयमाख्याति वृद्धिं जनपदस्य च॥ *(उपर्युक्त 30, 15)* इसी प्रकार पराशर ने कृषि के लिए मेघ, गर्भकाल और मासानुसार प्रसव-वर्षण पर भी विचार दिए हैं, जैसा कि कृशिपराशर में भी वर्णित है। उत्पल ने उनके मतों को महत्वपूर्ण मानकर अपनी विवृत्ति में उचित स्थान दिया है। यथा-

अथ माघेन श्रावणं फाल्गुनेन भाद्रपदं चैत्रेणाश्वयुजं वैशाखेन तु कीर्तितम्। शुक्लेन कृष्णं कृष्णेन शुक्लं दिवसेन रात्रिं रात्र्या दिवसं गर्भाः प्रवर्षन्ति॥

—(*बृहत्संहिता विवृत्ति 21, 13*)

अथ गर्भसंस्थासु माघादिषु चतुर्षु मासेषु या शुचौ धारणा। नभोनभस्यौ प्रावृट् तस्या अनु वर्षा येषु प्रसवन्ति। तत्र चापाभ्रविद्युत्स्तनयित्नुवर्षाणि गर्भास्तांल्लक्षयेत् प्रशस्तानप्रशस्तांश्च। प्रशस्ताभाश्च यस्मिन् काले सूर्येन्दुनक्षत्राश्रयाणां वर्षालिङ्गानां प्रादुर्भावः। पञ्चरूपता गर्भाणां धारणा मासेन शुद्धिरिति॥ —(*उपर्युक्त 21, 14-18*)

तेषां ग्रहाणामुदयास्तमयोल्कानिर्घाताशनिपातगन्धर्वनगरदिग्दाहार्करश्मिवर्णविकार भूचलनप्रादुर्भावो वर्षास्ववर्षाय॥ —(*उपर्युक्त 21, 25-26*)

आढकांश्चतुरो द्रोणमपां विन्द्यात्प्रमाणतः।
धनुःप्रमाणं मेदिन्या विन्द्याद्द्रोणातिवर्षणम्॥
समे विंशाङ्गुलानाहे द्विचतुष्काङ्गुलोच्छ्रिते।
भाण्डे वर्षति सम्पूर्णं ज्ञेयमाढकवर्षणम्॥

—(*उपर्युक्त 21, 32*)

मैंने उक्त श्लोकों के आधार पर बृहत्कृषिपराशर तैयार करने का विचार किया। चौखम्बा से उसका प्रकाशन हुआ है। चूंकि, लगभग इन्हीं विषयों के कतिपय श्लोकों को 'कृषिपराशर' में संग्रहित किया गया है और अध्ययन व उपयोग के लिए मुझे विस्तृत पाठ की अतीव आवश्यकता अनुभव हुई। 'बृहत्पराशरहोराशास्त्र' नामक ग्रन्थ परवर्ती है और लोमशसंहिता पर आधारित है।

पराशरीय गुल्म-वृक्षायुर्वेद :

उक्त सोदाहरण विवरण से यह स्पष्ट है कि हमारे यहाँ पराशर के नाम से अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इनमें कृषि-वनस्पति विवरण पराशर को प्रिय और अभीष्ट रहा है। चरकसंहिता से ज्ञात होता है कि आयुर्वेदावतरण ब्रह्मा से हुआ। उनसे क्रमशः दक्ष प्रजापति, अश्विनीद्वय, इन्द्र, भरद्वाज तथा आत्रेय पुनर्वसु को प्राप्त हुआ। प्राणिमात्र के प्रति मैत्री-अपनापन का भाव रखने वाले भरद्वाज के शिष्य पुनर्वसु आत्रेय ने समस्त प्राणियों पर अनुग्रह दृष्टि रखकर छह शिष्यों को कल्याणकारी आयुर्वेद का उपदेश किया। ये थे- 1. अग्निवेश, 2. भेल, 3. जतूकर्ण, 4. पराशर, 5. हारीत और 6. क्षारपाणि। कहा गया है- अथ मैत्रीपरः पुण्यमायुर्वेदं पुनर्वसुः। शिष्येभ्यो दत्तवान् षड्भ्यः सर्वभूतानुकम्पया॥ अग्निवेशश्च भेलश्च जतूकर्णः पराशरः। हारीतः क्षारपाणिश्च जगृहुस्तन्मुनेवचः॥ (*चरक. सूत्र. दीर्घञ्जीविताध्याय 1, 30-31*) इन्होंने अपने अपने ग्रन्थों की रचना की- अथ भेलादयश्चक्रुः स्व स्व तन्त्रं कृतानि च।

उनके प्रतिपादित विषयों में पितामह द्वारा प्रदर्शित 1. हेतुज्ञान (उत्पत्ति आदि के कारण), 2. लिंगज्ञान (उनके उचित लक्षण) और 3. औषधज्ञान (चिकित्सा की प्रक्रिया)-

ये तीन सूत्र माने गए हैं- हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम्। त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधे यं पितामहः॥ *(उपर्युक्त 1, 24)* इस ज्ञानानुशासन में द्रव्यों का वर्णन है। चरक ने कहा है कि आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये पंचमहाभूत, द्रव्यवर्णन तथा आत्मा, मन, काल और दिशा ये नौ द्रव्य हैं। चेतन और अचेतन भेद से द्रव्य दो प्रकार के हैं। जो द्रव्य इन्द्रिय सहित हैं, वे चेतन कहलाते हैं और जो इन्द्रिय रहित हैं, वे अचेतन या जड़ कहलाते हैं- खादीन्यात्मा मनः कालो दिशश्च द्रव्यसंग्रहः। सेन्द्रियं चेतनं द्रव्यं निरिन्द्रियमचेतनम्॥ *(उपर्युक्त 1, 48)*

इनमें गुणों की विशेष गणना की जाती है- सार्था गुर्वादयो बुद्धिः प्रयत्नान्ताः परादयः। गुणाः प्रोक्ता...। इनमें अर्थ अर्थात् इन्द्रियगोचर विषय हैं- शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। इनके गुरु आदि बीस गुण हैं- बुद्धि, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न (प्रयत्नान्त) और परत्व, अपरत्व, युक्ति, संख्या, संयोग, विभाग, पृथक्त्व, परिमाण, संस्कार और अभ्यास। इनको इस रूप में समझा जा सकता है-

अ. वैशेषिक गुण : आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी- इन पंचमहाभूतों के एक-एक विशेष गुण होने के कारण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये वैशेषिक या इन्द्रिय गुण कहलाते हैं।

आ. गुर्वादि गुण : इसमें क्रमशः गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, स्थिर, सर, मृदु, कठिन, मन्द, तीक्ष्ण, विशद्, पिच्छल, श्लक्ष्ण, खर, स्थूल, सूक्ष्म, सान्द्र और द्रव- ये बीस गुण हैं।

इ. आध्यात्मिक गुण : बुद्धि, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और प्रयत्न- ये छह गुण सचेतन के धर्म हैं और आत्मस्थ हैं।

ई. परादि सामान्य गुण : परत्व, अपरत्व, युक्ति, संख्या, संयोग, विभाग, पृथक्त्व, परिमाण, संस्कार और अभ्यास- ये दस परादि गुण हैं। इन गुणों के अध्ययन और अनुभव को किसी द्रव्य के व्यवहार में सफल होने का उपाय कहा गया है। *(चरकसंहिता, पृष्ठ 18-19)*

हमें याद रखना चाहिए कि पुराकालीन भारत में वनस्पति विज्ञान में किया गया अध्ययन अनेक रूपों में मिलता है। चिकित्सकीय कार्य के लिए औषधीय पौधे, ऋषियों द्वारा वन में रहकर आश्रमों का निर्माण, वन संरक्षण, आश्रमों में विद्यादान आदि स्वाभाविक रूप से चलते रहते थे। ज्ञान की परम्परा में परा और अपरा विद्या दोनों पर काम होता था। वनस्पति को मानव जीवन का अभिन्न भाग माना जाता रहा है।

स्वाभाविक है कि जो हमारे आसपास है, चारों ओर विद्यमान है और जिस पर जीवन आधारित है, उसका ज्ञान भी जीवन के लिए अति आवश्यक हो जाता है। चरक, सुश्रुत, धन्वन्तरि आदि ने चिकित्सकीय उपयोग के लिए औषधीय पौधों का गहन

अध्ययन किया तो पराशरीय विचारकों ने उनके आकार, प्रकार, गुण, रचना, भूमि और वन आदि आधारित वनस्पतियों का व्यवस्थित अध्ययन कर उसको अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया। भारतीय दर्शन के पंचतत्त्व भी इस अध्ययन और ज्ञान का आधार रहे।

इसी का उत्कृष्ट उदाहरण है : गुल्म-वृक्षायुर्वेद। पराशर प्रोक्त कहे गए इस लघुकाय ग्रन्थ का मूल नाम 'वृक्षायुर्वेद' है लेकिन इसमें गुल्म, वल्ली आदि का भी सम्यक् अध्ययन विद्यमान है इसीलिए चाणक्य प्रदत्त संज्ञा से इसे पुनः नामित किया जा रहा है। इसमें जो विषय वस्तु सुलभ होती है, वह पहली सदी के आसपास के भारतीय जनजीवन के अध्ययन-अनुभव को रेखांकित करती है, जैसा कि इसके अध्येताओं का मत है। इसी कारण इसको उसी काल का ज्ञानशासन माना है लेकिन इसका विकास और विस्तार समय-समय पर होता रहा होगा। पराशर के वनस्पति विषयक सूत्रों को ज्योतिषीय सन्दर्भों में पाँचवीं-छठवीं सदी से ही पर्याप्त रूप से उद्धृत किया जाता रहा है। पराशर के आयुर्वेद ग्रन्थ का उल्लेख चरक ने दिया है और इसी आधार पर उनके इस तरह के ज्ञानानुशासन के विद्यमान होने की सम्भावना बनती है। पराशर ने आलोच्य ग्रन्थ में जैसे वनों का वर्णन किया है, वैसा संकेत लक्षणप्रकाश में विष्णुधर्मोत्तरपुराण के श्लोकों के उद्धरण में प्राप्त होता है। सौराष्ट्रक नामक वन के लिए कहा गया है- अर्बुदावन्तिनर्मदान्तरतः सौराष्ट्रकं वनमिति पराशरोक्तेः। *(लक्षणप्रकाश पृष्ठ 355)* विष्णुधर्मोत्तर का सम्पादनकाल 6-7वीं सदी माना गया है। ऐसे में प्रस्तुत ग्रन्थ उसका पूर्ववर्ती होना चाहिए। इस शास्त्र की विषय-वस्तु की कतिपय विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं-

जीवन का उद्गम : पराशर के इस ग्रन्थ में जीवन के क्रमशः अस्तित्व में आने स्पष्ट विचार है। ग्रन्थकार ने कहा है कि पानी गाढ़ा होकर एक लसलसा पदार्थ (कलल) बना जिसमें 'पिण्डस्थानुकं' जैविक पदार्थ बना जो कालान्तर में वसुना (ऊर्जा) से नियन्त्रित होकर (व्युहन) बीज में बदल गया। चरक, वराहमिहिरादि ने भी इस क्रम को दिया है और यही पद्मपुराणादि में वर्णित है। वर्तमान काल में प्रचलित सिद्धान्त भी कोशिका का निर्माण क्रम इसी तरह मानता है।

पंचमहाभूत व उनका प्रभाव : भारतीय दर्शन जीवन का आधार पंचमहाभूत को मानता है। इसी को आधार बताकर स्वाद व फलों में रस निर्माण को वर्णित किया गया है। जिस रस की प्रधानता हो, उसी के अनुसार स्वाद का होना और उस रस के निर्माण में किस तत्त्व का प्राधान्य है, यह स्पष्टीकरण भी ग्रन्थ देता है।

जड़, पोषक तत्त्वों का प्रतिपादन : यदि यह मान लिया जाए कि इसका काल चौथी शताब्दी पूर्व का है तो जड़ द्वारा पोषक पदार्थों को प्राप्त करना, तना, शाखाओं व पत्तियों तक उसके आवागमन का विचार उस समय निश्चित ही क्रान्तिकारी रहा होगा।

इस ग्रन्थ में पादपों की उपलब्धता के क्रम में सर्वप्रथम देशों का परिचय वहाँ

उत्पादित होने वाली वनस्पति के आधार पर दिया गया है। तत्पश्चात् वनों का वर्णन है। दिशागत निश्चित सीमाओं से आबद्ध जनसंकुलात्मक क्षेत्र देश होता है। हमारे यहाँ गणात्मक समुदायों के क्षेत्र को भी ऐसी पहचान दी गई है। आयुर्वेद सहित संहिताकारों ने प्राकृतिक स्थितियों और जल की उपलब्धता के आधार पर भूक्षेत्रों को देश का नाम दिया है। इसके भी प्रधान दो रूप हैं-

1. सामुदायिक संगठन, भाषा, भूषा, विशिष्ट बनावट, उत्पाद, शासक, वंशादि के आधार पर नामित देश और

2. जल की उपलब्धता के आधार पर भूमिभेद से वर्गीकृत देश।

वन, वनस्पति, वायु और वृष्टि के अध्येता सुश्रुत, चरकादि की प्राचीन संहिताओं में उक्त दोनों ही कोटियाँ मिलती हैं। सुश्रुत ने भूमिभेद के आधार पर संक्षेप में तीन देश बताए हैं-

देशस्त्वानूपो जाङ्गलः साधारण इति। तत्र बहूदकनिम्नोन्नत नदीवर्षगहनो मृदु-शीतानिलो बहुमहापर्वतवृक्षो मृदुसुकुमारोपचित शरीरमनुष्यप्रायः कफवात रोगभूयिष्ठश्चानूपः।

आकाशसमः प्रविरलाल्पकण्टकिवृक्षप्रायोऽल्पवर्षप्रस्रवणोदपानोदकप्राय उष्ण दारुणवातः प्रविरलाल्पशैलः स्थिरकृशशरीरमनुष्यप्रायो वातपित्तरोगभूयिष्ट जाङ्गलः। उभय देशलक्षणः साधारण इति।

समाः साधारणे यस्माच्छीतवर्षोष्ममारुताः। दोषाणां समता जन्तोस्तस्मात्साधारणो मतः॥ *—(सुश्रुत. सूत्रस्थान 36, 49-51)*

उपर्युक्त देश परिचय परवर्ती काल के अनेक कोशों और ग्रन्थकारों को स्वीकार्य रहा है। सुश्रुत का स्पष्ट कहना है कि जहाँ जल अधिक बरसता हो अथवा भरा हुआ रहता हो या भूमि में खुदाई करने पर मामूली गहराई पर मिल जाता हो, पृथ्वी अधिक नीची और ऊँची हो, नदी नाले अधिक हों, वर्षा का औसत अधिक हो, हवा कोमल और शीतल संचारित होती हो, पर्वत और वृक्ष अधिक संख्या में मिलते हों और बड़े-बड़े हों, जहाँ अधिसंख्य पुरुष और स्त्री कोमलांगी हों, सुकुमार और हृष्ट-पुष्ट देह वाले हों और जहाँ कफ तथा वायुजन्य रोग अधिक होते हों, उस भूक्षेत्र को 'आनूपदेश' कहा जाता है।

इसी प्रकार जो देश आकाश जैसी ऊँचाई और निम्नता से रहित होकर समस्तर हों, जहाँ अति विरल, छोटे और काँटेदार वृक्ष पाए जाते हों, पानी कम बरसता हो और झरने, कूप, वापी आदि में भी पानी कम हो, गरम और तेज हवाएँ संचारित होती हों, जहाँ छोटे-छोटे पहाड़ किसी-किसी स्थान पर स्थित हों, जहाँ के मनुष्य अधिकतर दृढ़ और कृश शरीर वाले हों और जहाँ वायु तथा पित्तजन्य रोग अधिक होते हों, उसे 'जांगल देश' कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त जिस भूक्षेत्र में पूर्ववर्णित आनूप और जांगल दोनों के लक्षण मिलते हों, उसको 'साधारण देश' कहा जाता है। यही मिश्र देश भी है। कारण यह भी है कि वहाँ पर सर्दी, वर्षा, गरमी और पवन ये सब समान रहते हैं और निवासियों के वातादि दोष भी समानावस्था में विद्यमान रहते हैं।

'वृक्षायुर्वेद' की प्राप्ति एक पाण्डुलिपि के रूप में पश्चिम बंगाल के वैद्यशास्त्री श्री जोगेन्द्रनाथ सिरकार को हुई थी। इसकी सूचना उनके पुत्र श्री एन. एन. सिरकार ने जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल (वॉल्यूम 16, संख्या 1, 1950) में अपने आलेख में दी थी। 'एन इण्ट्रोडक्शन टू द वृक्षायुर्वेद ऑफ पराशर' शीर्षक इस आलेख के बाद इसका प्रकाशन श्रीसिरकार और रोमा सरकार ने अंग्रेजी अनुवाद सहित 1996 ई. में करवाया जिसमें आधुनिक वनस्पति-विज्ञान की विषय वस्तु के साथ इसकी तुलना की गई थी।

विडम्बना यह रही कि 65 पृष्ठों की इस मातृका में इसके विषयानुसार चिकित्सा काण्ड नहीं मिला था। केवल बीजोत्पत्ति काण्ड, वानस्पति काण्ड, वानस्पत्य काण्ड, गुल्मक्षुप काण्ड और विरुधवल्ली काण्ड ही मिले थे और चिकित्सा काण्ड होने का उल्लेख बीजोत्पत्ति काण्ड (प्रथम अध्याय, श्लोक 15) में था। इसी कारण यह पाठ अधूरा था। उक्त पाठ में भाषायी त्रुटियाँ भी पर्याप्त थीं। उपशीर्षकों के नहीं होने से विषय विभाजन में कठिनाइयां भी थीं। वैसे अध्यायों का प्रारम्भ और उपसंहार से समापन की प्रक्रिया सुश्रुत और चरकसंहिता के समान ही मिलती है।

प्रस्तुत पाठ में यह ध्यान रखा गया है कि पाठ सुसंस्कृत हो। प्रत्येक विषय के श्लोक पर उसका शीर्षक हों और यथासम्भव अन्यान्य ग्रन्थ में उपलब्ध विषय से उसकी तुलना भी हो। प्रस्तुत पाठ में प्रशिक्षांश के रूप में तीन अध्यायों को जोड़ा गया है। इसमें यह ध्यान रखा गया है कि चूंकि इसके अधिकांश विषय सुश्रुत, चरकादि के संहितात्मक ग्रन्थों से समानता लिए हैं, ऐसे में उक्त ग्रन्थों सहित प्राचीनतम अन्य ग्रन्थों का भी उदाहरणों को दिया जाए। चूंकि हमने कृषिपराशर, काश्यपीय कृषि पद्धति, सुरपाल कृत वृक्षायुर्वेद, चक्रपाणि मिश्र कृत विश्ववल्लभ, शार्ङ्गधर कृत पद्धति आदि पर सम्यक् कार्य किया है, ऐसे में इस ग्रन्थ को भी संस्कृत-सम्मत पाठोद्धार से लेकर तुलनात्मक उद्धरणों सहित पुनर्प्रकाशित किया जा रहा है। यह सब कार्य पूर्णतः निष्काम है और भारतीय कृषि अनुशासन के तकनीकी ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन की दिशा में एक पहल है। चौखम्बा परिवार सहित अनेक मित्रों का इसके लिए स्नेहपूर्ण आग्रह भी था। इसमें भारतीय वनस्पति शास्त्र की अवधारणा और आहारवेद पर पर्याप्त विचार किया गया है ताकि यह ग्रन्थ किसानों, वनस्पति विज्ञानियों सहित चिकित्सकों और समस्त पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके।

अन्न एवं भारतीय वनस्पति विज्ञान

आयुर्वेदविदों ने आहार को जीवन का आधार माना है। तैत्तिरीयोपनिषदकार ने कहा है कि अन्न से ही प्रजा उत्पन्न होती है, जो कुछ प्रजा पृथ्वी को आश्रित करके स्थित है, वह सब अन्न से ही उत्पन्न होती है, फिर वह अन्न से ही जीवित रहती है और अन्ततः उसी में लीन हो जाती है क्योंकि अन्न ही प्राणियों का ज्येष्ठ-अग्रज है। उसको इसी कारण सर्वौषध कहा जाता है-

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। याः काश्च पृथिवीँश्रिताः।
अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपि यन्त्यन्तः।
अन्नँ हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते।

—*(तैत्तिरीय. अनुवाक 2, 1)*

उपनिषदकाल में लोगों द्वारा अन्न को ब्रह्म मानकर उसी उपासना करने का पुरजोर चलन था। इसका आशय है कि अन्न को शीर्ष महत्व प्राप्त था, वैसे ही जैसे आज भी अन्न को देवता माना जाता है। अन्न को ठुकराया नहीं जाता, आदर से ग्रहण किया जाता। उपनिषदकार ने इसी भाव से कहा है कि जो लोग अन्न ही ब्रह्म है, इस भाव से उपासना करते हैं, वे निश्चय ही सम्पूर्ण अन्न प्राप्त करते हैं। अन्न ही प्राणियों में बड़ा है, इसलिए वह सर्वौषध कहलाता है। अन्न से ही प्राणियों की उत्पत्ति सम्भव है, उत्पन्न होकर वे अन्न से ही वृद्धि को प्राप्त करते हैं। अन्न प्राणियों द्वारा खाया जाता है और वह भी उन्हीं को खाता है। उसका अन्न होना इसी अर्थ में है। उपनिषद के शब्दों में कहा है-

सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति येऽन्नं ब्रह्मोपासते।
अन्नँ हि भूतानां ज्येष्ठम्। तत्मात्सर्वौषधमुच्यते।
अन्नाद्भूतानि जायन्ते। जातान्यन्नेन वर्धन्ते।
अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यत इति।

—*(उपर्युक्त)*

उपनिषदकार ने यह मान्यता बहुत पुरानी मानी है और इसी अर्थ में कहा है- तदप्येष श्लोको भवति। (उपर्युक्त) यह उस काल की मान्यता है जबकि मानव ने सभ्यता के क्षेत्र में अहम कदम रखा और मांसाहार की अपेक्षा अन्नाहार को एक आवश्यक और सर्वोपरि आहार के रूप में स्वीकार कर लिया था। मानव समुदाय ने अन्न को प्राप्त करने के लिए वैसे ही अनुष्ठान अपनाए होंगे जो कि खेती के साथ आज भी सहज रूप से जुड़े हुए हैं। यह अन्नोपासना एक विशिष्ट रूप में तैत्तिरीयोपनिषद् में आई और जिसको भागवत गीता ने भी सहेजा है- अन्नाद्भवति भूतानि और 'पञ्चाम्यन्नं चतुर्विधम्।' (15, 14)

इससे पूर्व, अन्नोत्पत्ति के लिए अनेक उपाय किए जाने लगे होंगे। कृषिकर्म का

विचार जागा होगा। इसके लिए उपयोगी बीजों की पहचान और उनके संग्रह, संस्करण के उपाय निर्धारित किए होंगे। कृषि के उपाय निश्चित किए गए होंगे। कृषि चूंकि ऋतु प्रधान होती होती है और उसकी उपज भी एक सावधिक होती हैं जबकि वृक्ष स्थावर होते हैं और वे दीर्घकाल तक स्थायी रहते हैं- ऐसे में वृक्षों को लेकर अध्ययन भी हुआ ही होगा। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वृक्षों के जीवन का अध्ययन और अनुभव गुल्म, वल्ली, विरुध इत्यादि वनस्पतियों के उगाने, पनपाने और उत्पाद प्राप्त करने में भी सहायक रहा होगा। ये सबकी सब औषधियाँ और द्रव्य हैं।

इनके दो प्रकार हैं- स्थावर और जंगम (तास्तु द्विविधाः स्थावरा जङ्गमाश्च। सुश्रुत. सूत्र. 1, 36)। चरक ने इनका एक परिपक्व अध्ययन प्रस्तुत किया है और कहा है-

यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत्। तद्द्रव्यम्। खादीन्यात्मामनः कालो दिशश्च द्रव्यसंग्रहः। सेन्द्रियं चेतनं द्रव्यं निरिन्द्रियमचेतनम्। किञ्चिद्दोषप्रशमनं किञ्चिद्धातु प्रदूषणम्। स्वस्थावृत्तौ मतं किञ्चित्त्रिविधं द्रव्यमुच्यते। तत्पुनस्त्रिविधं प्रोक्तं जङ्गमौद्भिद पार्थिवम्।। —(चरक सूत्र. 1, 48-51)

स्पष्ट है कि जिस वस्तु में कर्म और गुण आश्रित रहते हैं तथा जो कर्म और गुण का समवायी कारण होता है, उसको द्रव्य कहा जाता है। कार्य रूप में द्रव्य दो प्रकार का होता है- 1. चेतन और 2. अचेतन। चेतन के दो भेद हैं- अन्तश्चेतन और बहिश्चेतन।

इनमें से अन्तश्चेतन द्रव्यों में भीतर तो ज्ञान तथा सुख-दुःख का अनुभव होता है लेकिन वे अपने ऊपर होने वाले आक्रमण का प्रतिरोध करने में असमर्थ होते हैं; जैसे वनस्पति वर्ग। कतिपय द्रव्यों में प्रत्यक्ष रूप से अन्तश्चेतनता परिलक्षित होती है जैसे लाजवन्ती छूने पर सिकुड़ जाती है। सूर्यमुखी का फूल सूर्य की गति के अनुसार घूमता रहता है। कामिनी के चरण प्रहार से अशोक के स्तबक खिलते हैं। बिजौरा नींबू के मूल में चर्बी डालने से उसमें अच्छे फल लगते हैं। आम्र के वृक्ष में मछलियों की वसा के खाद के प्रयोग से भरपूर फल आते हैं। बकुल के वृक्ष पर रजस्वला स्त्री के कुल्ला करने से उसमें फूल लगते हैं। उक्त वनस्पतियों पर होने वाली प्रतिक्रियाओं के देखने से उनमें अन्तश्चेतना होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। दूसरे बहिश्चेतन द्रव्यों की चेतना का बाह्यरूप से प्रत्यक्ष अनुभव होता है, ये द्रव्य अपने ऊपर होने वाले आक्रमण का मुकाबला करने में समर्थ होते हैं; जैसे मानव, पशु-पक्षी आदि। अचेतन द्रव्यों में न तो अन्तःज्ञान होता है और न बाह्यज्ञान पाया जाता है; जैसे—खनिज द्रव्य, पाषाण, बालू, कोयला तथा स्वर्णादि धातु अचेतन हैं।

चरकसंहिता के सूत्रस्थान पर अपनी टीका में चक्रपाणि ने स्पष्ट किया है- *अत्र सेन्द्रियत्वेन वृक्षादीनामपि चेतनत्वं बोद्धव्यम्। तथाहि सूर्यभक्ताया यथा यथा सूर्यो भ्रमति तथा तथा भ्रमणात् दृगनुमीयते तथा लवली मेघस्तनितश्रवणात् फलवती स्यात्। बीजपूरकमपि*

शृगालादिवसागन्धेनातीव फलवद् भवति। आम्रवृन्तानां च मत्स्यवसासेकात् फलाढ्यतया रसनमनुमीयते। अशोकस्य च कामिनीपादतलाहति सुखिनस्तबकितस्य स्पर्शनानुमानम्। स्मृतिश्चानुमानं द्रढयति, यथा- अभिवादे तु यो विप्रो नाशिषं सम्प्रयच्छति। श्मशाने जायते वृक्षो गृध्रकङ्कोपसेवितः। तथा- वृक्षगुल्मं बहुविधं तथैव तृणजातयः। तमसाऽधर्मरूपेण शब्दिताः कर्महेतुना। अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः। एतदन्ताश्च गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः। तथा तन्त्रकारश्च वानस्पत्यानूकान् प्राणिनो वक्ष्यति। तेनागमसंवलितया युक्त्या चेतना वृक्षाः। (च. सू. चक्रपाणिटीका 1, 48)

उत्पत्ति अर्थात् योनिभेद से द्रव्य को तीन प्रकार का कहा गया है-

1. जांगम : जो एक स्थान से दूसरे स्थान में चल-फिर सकते हों (गच्छतीति जङ्गमं तस्य भावः जाङ्गमम्।) जैसे जरायुज-मनुष्यादि, अण्डज-पक्षी आदि और स्वेदज-जूँ, लीख इत्यादि।

2. औद्भिद : जो पृथ्वी को फोड़कर निकलते हैं (उद्भिद्य पृथिवीं जायते इति उद्भिद्, तस्य भावः औद्भिदम्।) जैसे वृक्ष, लता-गुल्म, जौ, गेहूँ, ज्वार आदि।

3. पार्थिव : जो पृथ्वी के भीतर खानों से निकलते हैं (पृथिव्याः विकारः पार्थिवम्) जैसे सोना, चाँदी, लोहा आदि-आदि।

औद्भिद : वनस्पति के चार प्रकार

वृक्षायुर्वेद के क्रम में हमारे लिए चूँकि वनस्पति द्रव्य ही विचारणीय है, ऐसे में औद्भिद वर्ग विवेच्य है। अमरकोश में कहा है- उद्भिदस्तरुगुल्माद्या (वृक्ष, वेल, घास आदि)। *(अमर. 3, विशेष्य. 51)* चरकादि ने इसके चार प्रकार स्वीकार किए हैं- औद्भिदं तु चतुर्विधम्। वनस्पतिस्तथा वीरद्वानस्पत्यस्तथौषधिः॥ फलैर्वनस्पतिः पुष्पैर्वानस्पत्यः फलैरपि। ओषध्यः फलपाकान्ताः प्रतानैर्वीरुधः स्मृताः॥ *(सूत्र. दीर्घञ्जीवितीयाध्यायः 1, 71-72)* भेलसंहिता में कहा है- उद्भिज्जास्तु तृणलतावृक्ष वनस्पतयः। सुश्रुतसंहिताकार ने वनस्पति, वृक्ष, वीरुध और औषधि नाम से वर्गीकरण किया है- तासां स्थावराश्चतुर्विधाः- वनस्पतयो वृक्षा वीरुध ओषधय इति। तासु, अपुष्पाः फलवन्तो वनस्पतयः। पुष्पफलवन्तो वृक्षाः। प्रतानवत्यः स्तम्बिन्यश्च वीरुधः। फलपाकनिष्ठा ओषधय इति। *(सुश्रुत. सूत्र 1, 37)*

ये ही प्रकार वृक्षायुर्वेदकार पराशर को भी स्वीकार रहे हैं और वृक्षायुर्वेद के अध्यायात्मक स्वरूप एवं संगठन में द्रष्टव्य है -

1. वनस्पति : जिनमें केवल फल आते हों अर्थात् फूल नहीं दिखाई देते, ऐसे वनस्पति वृक्ष- गूलर, वट, पाकड़ आदि।

2. वीरुध : जो लता के रूप में शाखा-प्रशाखा फूटकर फैलते हैं, जैसे गुडूची, विधारा, अनन्तमूल आदि।

3. वानस्पत्य : जिनमें फूल आने के बाद फल आते हैं यानी जिनका फूल और फल दोनों ही प्रत्यक्ष दिखाई देता है, जैसे आम, जामुन, महुआ आदि।

4. औषधि : जो अपने फल के पकने पर सूखकर नष्ट हो जाएँ, वे पाकान्त दूर्वा और जव, गेहूँ, धान आदि।

डल्हण ने अपुष्पा के लिए कहा है कि जो अविद्यमानपुष्पा हों- *अपुष्पाः अविद्यमानपुष्पाः इति डल्हणः, येषां पुष्पमन्तरेणैव फलजन्मेति हाराणचन्द्रः।* वट, उदुम्बर, पीपल आदि इसके उदाहरण हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि इनमें भी असंख्य पुष्प होते हैं अतः अपुष्प का अर्थ अदृश्यपुष्प भी हो सकता है, जैसा कि घाणेकर का का मत है। वीरुध का उदाहरण त्रपुष (खीरा), अलाबु (लौकी) है। वीरुध में तृणजाति (शरेक्षु प्रभृति) तथा गुल्म और वल्ली का भी समावेश मानना चाहिए। ओषधि में शालि, गोधूम, यव, तिल, मुद्ग आदि स्वीकार्य है।

सुश्रुत ने स्थावर नाम से औषधियों की छाल, पत्ते, पुष्प, फल, जड़, कन्द, निर्यास और स्वरस को उपयोगी माना है- तत्र स्थावरेभ्यस्त्वक् पत्रपुष्पफलमूलकन्द निर्यासस्वरसादयः प्रयोजवन्तः। *(सुश्रुत. सूत्र. 1, 40)* इसी प्रकार चरकसंहिताकार ने औद्भिद द्रव्यों के निम्न अंग उपयोगी माने हैं- मूल-त्वक्-सार-निर्यास-नाल-स्वरस-पल्लवाः। क्षाराः-क्षीरं-फलं-पुष्पं-भस्म-तैलानि-कण्टकाः।। पत्राणि-शुङ्गाः कन्दाश्च-प्ररोहाश्चौद्भिदो गणः॥ इनका संक्षिप्त परिचय वनस्पति के अध्ययन की दृष्टि से विचारणीय है, क्योंकि ये ही अंग वृक्षायुर्वेद में भी वर्णित हैं-

- मूल (जड़, भूमि में सीधी गहराई तक जाने वाली, अल्पप्रसारित, गाँठ-गठिली आदि)
- त्वक् (छाल, अनेक वर्ण वाली, मोटी और पतली)
- सार (मध्यवर्ती पकी हुई लकड़ी, जैसे सीसम की हीर)
- निर्यास (गोंद, जो कि बबूल, नीम आदि से रिसता है)
- नाल (पादप का डण्ठल, नलिका या नड़िका)
- स्वरस (पेड़-पौधे से निचोड़कर निकाला हुआ उसका द्रव)
- पल्लव (नवीन, कोमल-कोमल पत्ते)
- क्षार (यवादि वनस्पतियों से प्राप्त खारापन)
- दूध (क्षीरीय पादपों का दुग्ध, जैसे वट, पीपल आदि में निकलता है)
- फल (पेड़-पौधों पर लगने वाले उत्पाद फल)
- फूल (पेड़-पौधों पर आने वाले पुष्प)
- भस्म (जलाकर तैयार पेड़ों की लकड़ी आदि की राख)

- तेल (पेड़-पौधों से प्राप्त होने वाला तेल)
- काँटे (बेर, बबूल, बिल्व आदि के पेड़ों पर लगे हुए शूल)
- पत्तियाँ (पके हुए पत्र)
- शृंग (ठूसा, सींगड़ा)
- कन्द (भूमि से जड़ के साथ प्राप्त होने वाला द्रव्य, जैसे मूली, गाजर आदि)
- प्ररोह (अंकुर अथवा जटा इत्यादि)।

पादप पल्लवन प्रक्रिया :

पौधों के अंकुरण से लेकर विकसित होने की एक निश्चित प्रक्रिया है। पुष्पित होने वाले पौधों में गन्ध एक पहचान के रूप में ज्ञेय है। गन्ध है अथवा नहीं ? ऐसा नहीं कहा जा सकता है अथवा गन्ध है ऐसा भी कह नहीं सकते क्योंकि पूर्व से विद्यमान भावों की ही अभिव्यक्ति होती है- ऐसा सिद्धान्त है। केवल सूक्ष्म होने के कारण कच्ची कली में गन्ध व्यक्त नहीं होती है किन्तु कुछ समय बीतने पर कलिका के पंखुड़ी और पराग विकसित होते हैं और गन्ध प्रकट होती है- पुष्पमुकुलस्थो गन्धो न शक्यमिहास्तीति वक्तुमथो नै चास्तीति; अथवाऽ(च)स्ति सतां भावानामभिव्यक्तिरिति ज्ञात्वा, केवलं सौक्ष्म्यान्नाभिव्यज्यते, स एव पुष्पे विवृत्तपत्रकेशरे कालान्तरेणाभिव्यक्तिं गच्छति।

—(सुश्रुत. सूत्र. 14, 18)

इसी प्रकार पादप द्रव्यों के वर्गों का निर्धारण भी वनस्पतिविद् महर्षियों ने किया है। महर्षि पुनर्वसु के अनुसार ये क्रमशः निम्न हैं-

1. मूलिनी : जिनकी जड़ों में उत्तम गुण पाया जाता हो। ये 16 की संख्या में हैं- हस्तिदन्ती, हैमवती (वच), श्यामा (काली निशोथ), त्रिवृत् (सफेद निशोथ), अधोगुडा (विधारा), सप्तला (सात धारा वाला सेहुँड़), श्वेतनामा (सफेद अपराजिता), दन्ती, गवाक्षी (इन्द्रवारुणी), ज्योतिष्मती (मालकांगुनी), बिम्बी (कुन्दरु), शणपुष्पी (सनई), विषाणिका (काकड़ासींगी), अजगन्धा, द्रवन्ती और क्षीरिणी (स्वर्णक्षीरी)।

इनमें से शणपुष्पी (वनसनई), बिम्बी और वचा की जड़ वमन के लिए उपयोगी है। श्वेता (अपराजिता) तथा मालकांगुनी की जड़ का उपयोग शिरोविरेचन (नस्य) के लिए होता है। अन्य 11 औषधियों की जड़ विरेचन कर्म के लिए प्रयोग के योग्य हैं- शणपुष्पी च बिम्बी च च्छर्दने हैमवत्यपि। श्वेता ज्योतिष्मती चैव योज्या शीर्ष विरेचने।। एकादशावशिष्टा याः प्रयोज्यास्ता विरेचने। इत्युक्त नामकर्मभ्यां मूलिन्यः।

—(चरक. सूत्र. 1, 79-80)

2. फलिनी : उत्तम गुणयुक्त फल वाले 19 द्रव्य माने गए हैं। ये हैं- शंखिनी, वायविडंग, त्रपुष (खीरा), मदनफल, धामार्गव (तरोई), इक्ष्वाकु (तितलौकी), जीमूत

(देवदाली), कृतभेदन (तिक्तराई), जलज मुलहठी, स्थलज मुलहठी, करंज, अपामार्ग (आँधीझाड़ा), हरीतकी, अन्तःकोटरपुष्पी, हस्तिपर्णी, काम्पिल्लक, आरग्वध और कुटज। इनमें से तरोई, इक्ष्वाकु, जीमूत, कृतभेदन, मदन, कुटज, त्रपुष और हस्तिपर्णी- इन आठ औषधियों का फल वमन और आस्थापन (रूक्षबस्ति) में किया जाता है। नस्य के लिए अपामार्ग का प्रयोग होता है जबकि शेष दस औषधियों का प्रयोग विरेचन के लिए होता है।

3. शोधनवृक्ष : उक्त मूलिनी और फलिनी के अतिरिक्त संशोधन के लिए उपयोगी आधार पर छह वृक्षों को चुना गया है- अथापरे त्रयो वृक्षाः पृथग्ये फलमूलिभिः। हालांकि यह चुनाव आयुर्वेद की दृष्टि से किया गया है लेकिन वनस्पति के गुण-धर्म के अध्ययन की दृष्टि से उपयोगी है। प्रथम तीन पादप हैं और तीनों के ही कर्म अलग-अलग हैं- स्नुही (सेहुँड़), अर्क (मदार) और अश्मन्तक (पत्थरचूर)। इनमें से स्नुही का प्रयोग विरेचन के लिए, अर्क के दूध का प्रयोग वमन और विरेचन के लिए तथा अश्मन्तक का प्रयोग वमन के लिए किया जाता है।

तीन अन्य वृक्षों की छाल का हितकर प्रयोग किया जाता है- 1. पूतीक (लताकरंज), कृष्णगन्धा (सहिजन) और तिल्वक (गुलाबचीन)। इनमें से पूतीक एवं तिल्वक की छाल का प्रयोग विरेचन के लिए होता है। कृष्णगन्धा की छाल विसर्प, शोथ, अर्श, दाद, विद्रधि, गलगण्ड, कुष्ठ और अलजी में किया जाता है। *(चरक. सूत्र. 1, 114-118)*

वनस्पतियों के अध्येता

यह ज्ञेय है कि वनस्पतियों के विषय में वनविहारी अच्छी जानकारी रखते हैं। चूंकि वे पशुओं को चराते समय यह ध्यान रखते हैं कि पशु कौन-कौनसी वनस्पति का सेवन करते हैं? कौन-कौनसी वनस्पति खाद्य अथवा अखाद्य हैं? वनस्पति के सेवन से क्या-क्या लाभ होते हैं? चरक आदि वनस्पतिविदों ने देहातवासियों के इस ज्ञान का उपयोग उपचारात्मक औषधियों के लिए किया है- ऐसा प्रतीत होता है। चरक ने कहा है- ओषधीर्नामरूपाभ्यां जानते ह्यजपा वने। अविपाश्चैव गोपाश्च ये चान्ये वनवासिनः॥

इसका आशय है कि वनस्पतियों की पहचान उनको हो सकती है जो वन में बकरियाँ चराते हैं, भेड़ों को चराते हैं और गायों को पालते हैं। जो वनवासी लोग हैं, उनको भी औषधियों के नाम और रूप ज्ञात होते हैं लेकिन केवल नाम जानने और रूप-रंग से औषध को पहचान लेने मात्र से कोई व्यक्ति औषधियों के उत्तम प्रयोग का ज्ञाता नहीं हो जाता। इसके लिए तो शास्त्र और व्यवहार होना आवश्यक है।

—(चरक. सूत्र 1, 120-121)

चरक से पूर्व सुश्रुत ने लगभग यही मत दिया है कि गाय, भैंस और बकरी चराने वाले, जंगल में निवास करने वाले, तपस्वी, हरिणादि का आखेट करने वालों तथा कन्द, मूल, फल खाकर वन में रहने वालों और अन्य जो भी वनवासी हों, उनसे वनस्पति

जड़ी-बूटियों का ज्ञान पाया जा सकता है- गोपालास्तापसा व्याधा ये चान्ये वनचारिण:। मूलाहाराश्च ये तेभ्यो भेषजव्यक्तिरिष्यते।। —(सूत्र. 37, 11)

चरक यह भी कहते हैं कि विधिसम्मत परीक्षा करके देश, काल अर्थात् दोष, औषध, सात्म्य, बल, शरीर, आहार, प्रकृति और आयु आदि का विचारकर तद्नुसार औषधों के योग को जानता है, वही उत्तम कोटि का आयुर्वेदविद् या भिषक् हो सकता है। सुश्रुत ने भी कहा है कि अमृत के समान प्रभाव वाली औषधियाँ या चिकित्सोपयोगी समस्त द्रव्य अज्ञानियों द्वारा दिए जाने पर शस्त्र, वज्र (विद्युत्पात) और विष के समान हानि करती है, ऐसे में ज्ञानरहित जनों का परित्याग करना चाहिए-

ओषध्योऽमृतकल्पास्तु शस्त्रशनिविषमोपम:।
भवन्त्यज्ञैरुपहृतास्तस्मादेतान् विवर्जयेत्॥

—(सूत्र. 3, 51)

❖❖❖

आहारवेद : अवधारणा और आवश्यकता

प्राणियों की जीवन रक्षा का मूल कारण आहार कहते हुए माना है कि शरीर के बल, वर्ण और ओज की रक्षा अथवा वृद्धि में भी आहार ही कारण है। यह छः रसाश्रयी होता है। रस द्रव्यों के आश्रित होते हैं। औषधियों को द्रव्य कहा जाता है और उनके ज्ञान को आहारवेद के रूप में आयुर्वेद के ग्रन्थों में प्रथमतः स्मरणीय और वर्णनीय मानकर विवेचन किया गया है।

सभी प्राणियों के लिए आहार योग्य वर्ग निश्चित किया गया है। इनको पथ्यद्रव्य के नाम से भी बताया गया है। यथा-

लाल चावल (रक्तशालि), साठ दिन में पकने वाले (षष्टिक) कंगुक (कांगुनी), मुकुन्दक (काले साँठी), पाण्डुक (पीले धान्य), पीतक, प्रमोदक, कालक, असनक, पुष्पक, कर्दमक, शकुनाहृत, सुगन्धक, कलम, नीवारधान्य, कोद्रव (कोदो), उद्दालक (वनकोदो), श्यामाक, गेहूँ, वेणुयवादि धान्य विशेष।

शाकों में- मूँग, वनमूँग, मोठ, कलाय (मटर), मसूर, मंगल्य (पाण्डुवर्ण की मसूर), चना, हरेणु, अरहर, सतीन, चिल्ली (खेत का बथुआ, चील), वास्तुक (बथुआ, वाथला), सुनिषण्णक (चौपतिया), जीवन्ती, तण्डुलीयक (चौलाई) और मण्डूकपर्णी की गणना है। *(सुश्रुत. सूत्र. 20, 5)* चरक ने भी कहा है- लोहितशालयः शूकधान्यानां पथ्यतमत्वे श्रेष्ठतमाः। मुद्गाः शमीधान्यानां सैन्धवं लवणानां जीवन्तीशाकं शाकानाम्।

वनस्पतियों के गणभेद :

सुश्रुत के काल तक वनस्पतियों व अन्य द्रव्यों पर विशद् अध्ययन किया जा चुका था। सुश्रुत ने द्रव्यों के 37 गण किए हैं और स्पष्ट किया है कि हालांकि यह विभाजन बहुत संक्षिप्त है- समासेन सप्तत्रिंशद् द्रव्यगणा भवन्ति। यह विभाजन भारतीय वनस्पति विज्ञान का आश्चर्यकारी पक्ष है। वृक्षायुर्वेद ने भी गण के नाम से ही औषधियों का वर्गीकरण किया है। इस वर्गविभाजन के साथ ही वनौषधियों और अन्य द्रव्यों के गुण-धर्म को रेखांकित किया है ताकि प्रयोग-अप्रयोग का ज्ञान हो सके -

1. विदारीगन्धादि गण : विदारीगन्धा (शालपर्णी), विदारी (भूमिकूष्माण्ड), विश्वदेवा (नागबला या गंगरेन), सहदेवा (पीले पुष्पों वाली बला), श्वदंष्ट्रा (गोखरू), पृथक्पर्णी (पिठवन), शतावर, अनन्तमूल (सालसा), कृष्णसारिवा, जीवक, ऋषभक, महासहा (माषपर्णी), क्षुद्रसहा (मुद्गपर्णी), बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, पुनर्नवा, एरण्ड, हंसपादी (हंसराज), विच्छिया घास और ऋषभी (कौंच के बीज)। यह वर्ग पित्त व वात को नष्ट करता है तथा राजयक्ष्मा, गुल्म, अंगमर्द, ऊर्ध्वश्वास और कास को नष्ट करता है।

2. आरग्वधादि गण : अमलतास, मैनफल, गोपघोण्टा (कर्कोटी या सुपारी),

कण्टकी (विकङ्कत), कूड़ा, पाठा, पाटला, मूर्वा, इन्द्रयव, सतवन, निम्ब, कुरुण्टक (सफेद फूल वाली झिण्टी), दासी कुरण्टक (नीले फूलों की झिण्टी, पियावासा), गिलोय, चित्रक, शार्ङ्गष्टा (काकजंघा), नाटा और पूतीकरंज, पटोल, चिरायता तथा करेला। यह वर्ग कफ और विष को नष्ट करता है तथा प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर, वमन और खाज नाशक व व्रणों का शोधक है।

3. वरुणादि गण : वरुण, आर्त्तगल (नीले फूलों का पियावासा), सहजना, लाल सहजना, तरकारी (जयन्ती), मेढासिंगी, पूतीकरंज, नक्तमाल (करंज), मूर्वा या अंकोल, अरणी, दोनों तरह के कुरण्टक, बिम्बी (कुन्दरू), वसुक (बकपुष्प अथवा आक), वसिर (अपामार्ग अथवा गजपीपल), चित्रक, शतावरी, बिल्व, काकड़ासिंगी, कुश तथा छोटे और बड़े फलों वाली कटेरी। यह वर्ग कफ और मेद को नष्ट करता हैं तथा शिर:शूल, गुल्म व आभ्यन्तरिक विद्रधि का नाशक हैं।

4. वीरतर्वादि गण : अर्जुन, दोनों प्रकार के सहचर (पीत, नील पुष्प वाली पियावासा), कुशा, बंदाक, गुन्द्रा, नरसल, कुश, काश, पाषाणभेद, अरणी, मोरट (मूर्वा), वसुक (बकपुष्प), वसिर (अपामार्ग), भल्लूक (श्योनाक), कुरण्टक (पीले फूलों का पियावासा), नीलकमल, कपोतवंका (ब्राह्मी) और गोखरू। यह वर्ग वायु के विकार को नष्ट करता है तथा अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात की पीड़ा का शमन करता है।

5. सालसारादि गण : सालवृक्ष, अजकर्ण, खैर, कदर (श्वेत या पूति खैर), कालस्कन्ध (तिन्दुकवृक्ष या तमाल), सुपारी का वृक्ष, भोजपत्र, मेढ़ासिंगी, तिनीश (सादन), सिरस, असन, धव, अर्जुन, ताड़वृक्ष, शाक (सागौन), नक्तमाल (करंज), पूतिकरंज, अश्वकर्ण (सालवृक्ष भेद), अगर और कालीयक (पीतचन्दन)। यह वनस्पति वर्ग गुण रूप में कुष्ठरोग और प्रमेह व पाण्डुरोग को नष्ट करता है तथा कफ और मेद धातु का शोषक है।

6. रोध्रादि गण : लोध, सावर, ढाक, कुटन्नट (श्योनाक), अशोक, फंजी (भारंगी), कायफल, एलवालुक (नालुका या हरिवालुलक), शल्लकी, जिंगण, कदम्ब, साल और कदली। यह मेद और कफ को नष्ट करता है और योनि दोषों का नाशक, अतिसारादि रोगों में मलादि का स्तम्भक, व्रण में हितकारी और विष विनाशक है।

7. अर्कादि गण : आक, अलर्क (सफेद आक), दोनों तरह के करंज, नागदन्ती (जमालगोटा), अपामार्ग, भारंगी, रास्ना, इन्द्रपुष्पी (लांगली), क्षुद्रश्वेता (सेफन्द, अतीस या विदारीकन्द), महाश्वेता (नीलपुष्प, सेफन्द, वन्ध्याकर्कोटी, श्वेतापराजिता), वृश्चिकाली (मेढासिंगी भेद), अलवणा (ज्योतिष्मती) और तापसवृक्ष (इंगुदी)। यह वर्ग कफ, मेद और विषों को नष्ट करता है तथा कृमि और कुष्ठ का शामक व विशेषरूप से व्रणों का शोधक है।

8. सुरसादि गण : सुरसा (कृष्ण तुलसी), श्वेत तुलसी, फणिज्झक (मरुवक), अर्जक (वर्वरिका), भूस्तृण (रोहिस घास), सुगन्धक (द्रोणपुष्पी), सुमुख (राजिका), कालमालिका (कृष्णार्जक), कसौन्दी, क्षवक (नकच्छिंकनी), खरपुष्पा (वनवर्वरिका), वायविडंग, कायफल, सुरसी (कपित्थपत्रा तुलसी या श्वेत निर्गुण्डी), निर्गुण्डी (नील पुष्पा सम्भालू), कुलाहल (मुण्डिका), उन्दुरुकर्णिका (मूसाकानी), फंजी (भारंगी), प्राचीबल (काकजंघा), मकोय और विषमुष्टि (राजनिम्ब, बड़ी अलम्बुषा, कर्कोटी या कुचला इनमें से कोई एक वनस्पति)। यह वर्ग कफ नाशक, कृमिनाशक तथा प्रतिश्याय (पुराना जुकाम), अरुचि, श्वास और कास को नष्ट करता है।

9. मुष्कादि गण : मोखा, ढाक, धव, चित्रक, मदन, वृक्षक (कूड़ा), सीसम, थूहर, हरड़, बहेड़ा और आंवला। यह वर्ग बढ़ी हुई चर्बी तथा शुक्रदोषों का शमन करता है। प्रमेह, बवासीर, पाण्डुरोग और मूत्रशर्करा (पथरी) का नाशक भी है।

10. पिप्पल्यादि गण : पिप्पली, पिपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, काली मिर्च, गजपीपल, हरेणुका, छोटी इलायची, अजमोद, इन्द्रयव, पाठा, जीरा, सरसों, बकायन का फल, हींग, भारंगी, मूर्वा, अतीस, वचा, वायविडंग और कुटकी। यह वर्ग कफहर्ता और प्रतिश्याय, वातविकार, अरुचि आदि को नष्ट करता है तथा जठराग्नि को दीप्त करता है। गुल्म व शूल का नाशक तथा आमदोषों का पाचक है।

11. एलादि गण : छोटी इलायची, तगर, कूठ, जटामांसी, ध्यामक (रोहिस तृण), दालचीनी, पत्र (तमालपत्र या तेजपत्र), नागकेशर, प्रियंगु, हरेणुका, व्याघ्रनख, शुक्ति (नखीभेद), चण्डा (चोरक), स्थौणेयक (थुनेर), श्रीवेष्टक, चोच (दालचीनी भेद), चोरक (ग्रन्थिपर्ण), बालुक (खश), गूगल, सर्जरस (राल), तुरुष्क (शिलारस), कुन्दुरु (लोभान), अगुरु, स्पृक्का (एक सुगन्धित द्रव्य), उशीर (खस), देवदारु, केशर और पुन्नागकेशर (पद्मकेशर)। यह वर्ग वात, कफ और विष को नष्ट करता है। शरीर के वर्ण को निर्मल करता है और खाज, पिडका व कोठ को नष्ट करता है।

12. वचादि गण : वचा, नागरमोथा, अतीस, हरड़, देवदारु और नागकेशर।

13. हरिद्रा गण : हल्दी, दारुहल्दी, कलशी (पृश्निपर्णी), इन्द्रयव व मुलेठी। वचादि और हरिद्रादि वर्ग वनस्पति दुष्ट स्तन्य (दुग्ध) के शोधक, आमातिसार के शामक और विशेषकर आमदोषों के पाचक है।

14. श्यामादि गण : काली निशोथ, महाश्यामा (विधारा), लाल निशोथ, दन्ती, शंखिनी (कालामेघ या कालादाना), तिल्वक (लोध्र), कबीला, रम्यक (लजायन), सुपारी, पुत्रश्रेणी (दन्तीभेद), गवाक्षी (इन्द्रायण), अमलतास नाटा और पूतिकरंज, गिलोय, सातला, छगलान्त्री (वृद्धदारुक भेद), सेहुण्ड और स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी, चोक, कंकुष्ठ उशारे रेवन)। यह वर्ग गुल्म और विष को नष्ट करता है और आध्मान व उदर रोग में मल का भेदन करता है। यह उदावर्त विनाशक है।

15. बृहत्यादि गण : बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, इन्द्रयव, पाठा और मुलेठी। यह वर्ग पाचनीय, पित्त और वात का नाशक एवं कफ, अरुचि, हृदयरोग व मूत्रकृच्छ्र की पीड़ा को नष्ट करने वाला है।

16. पटोलादि गण : पटोल, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, मूर्वा, गिलोय, पाठा और कुटकी। यह वर्ग पित्त, कफ और अरुचि को नष्ट करता है। यह ज्वर का शामक है। व्रण के लिए शोधनादि दृष्टि से हितकारी व वमन, खाज व विषव्याधि नाशक है।

17. काकोल्यादि गण : काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकड़ासिंगी, वंशलोचन, पदमकाठ, प्रपौण्डरीक (सफेद कमल), ऋद्धि, वृद्धि, द्राक्षा, जीवन्ती और मुलेठी। यह वर्ग पित्त, रक्त व वायु विकार नाशक, जीवनीय, बृंहणीय व वृष्य है तथा दुग्ध व क्षीण हुए कफ को बढ़ाने वाला है। इस गण में अष्टवर्ग की ओषधियों का वर्णन हुआ है।

18. ऊषकादि गण : इस वर्ग में हींग जैसे वनस्पति उत्पाद के साथ ही क्षारमृत्तिका, सेन्धवनमक, शिलाजीत, कासीस और पुष्पकासीस व नीलाथोथा आते हैं। यह वर्ग कफनाशक, मेद वृद्धि का अवशोषक व पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र व गुल्म को नष्ट करता है।

19. सारिवादि गण : अनन्तमूल (सारिवा), मुलेठी, चन्दन, लालचन्दन, पद्माख, खम्भारी का फल, महुवे का फल और खस। यह प्यास को नष्ट करने वाला, रक्त-पित्तनाशक, पित्तज्वर शामक तथा दाह निवारक है।

20. अंजनादि गण : सौवीरांजन, रसांजन (स्रोतोंजन व दारुहरिद्राक्वाथ कृत) नागकेशर, प्रियंगु, नीलकमल, उशीर, कमलकेशर और मुलेठी। यह वर्ग रक्त-पित्तनाशक, विष का संशामक तथा शरीर के भीतरी दाह को नष्ट करता है।

21. परुषकादि गण : फालसा, द्राक्षा, कट्फल, दाड़िम, खिरणी, निर्मलीबीज, सागवान का फल और त्रिफला (हरड़, बहेड़ा व आंवला)। यह वात को नष्ट करता है, मूत्रदोषों का हारक, हृदयहितकारी, प्यास को नष्ट करने वाला और रुचिकारक है।

22. प्रियंग्वादि गण : प्रियंगु, लज्जालु, धाय के फूल, पुन्नाग (तुंग), नागपुष्प (नागकेशर), श्वेत चन्दन, रक्तचन्दन, मोचरस, रसांजन, जलकुम्भी, स्रोतोंजन, कमलकेशर, मजीठ, शालपर्णी अथवा दुरालभा।

23. अम्बष्ठादि गण : पाठा, धाय के फूल, लज्जालु, सोनापाठा, मुलेठी, बेलफल की गिरी, पठानी लोध, ढाक, तून और कमलकेशर। उक्त प्रियंग्वादि वर्ग और अम्बष्ठादि वर्ग पके हुए अतिसार को नष्ट करते हैं, भग्न अस्थि को जोड़ते हैं तथा पित्त के विकारों में हितकारी व व्रणों का रोपण करते हैं।

24. न्यग्रोधादि गण : बड़, गूलर, पीपल, पाखर, मुलेठी, आम्रातक, अर्जुन,

आम, कोशाम्र, चोरक के पत्ते, बड़ा व छोटा जामुन, चिरोंजी वृक्ष, महुआ, कुटकी, वेतस, कदम्ब, बेर, तेन्दु, सल्लकी, लोध्र, सावरलोध, भिलावाँ, ढाक और नन्दीवृक्ष (पारस पीपल)। यह वर्ग व्रण में हितकारी, संग्राही, भग्न अस्थि का संधानकर्ता, रक्त-पित्तनाशक, दाह व वृद्ध मेदोधातु का नाशक व योनिदोष निवारक है।

25. गुडूच्यादि गण : गिलोय, नीम, धनिया, चन्दन और पद्माख। यह वर्ग सभी प्रकार के ज्वरों का नाशक व दीपन है और जी मचलाना, अरुचि, वमन, प्यास व दाह को नष्ट करता है।

26. उत्पलादि गण : कमल (उत्पल), लाल कमल (रक्तोत्पल), श्वेतकमल (कुमुद), श्वेत-नीलकमल (सौगन्धिक), पुण्डरीक (अति श्वेत कमल) और मुलेठी। यह वर्ग शरीर का दाह, रक्त-पित्त, पिपासा, विषविकार, हृदय के रोग, वमन व मूर्च्छा को नष्ट करने वाला है।

27. मुस्तादि गण : मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, हरड़, आंवला, बहेड़ा, कूठ, श्वेत वचा, पाठा, कटुकी, काकजंघा, अतीस, द्राविड़ी (छोटी इलायची), भिलावाँ और चित्रक। यह वर्ग कफनिवारक, योनिदोष विनाशक, स्तन्यशोधक तथा आमादि दोषों का पाचक माना गया है।

28. त्रिफलादि गण : हरड़, आंवला और बहेड़ा (त्रिफला)। यह वर्ग कफ, पित्तनाशक, प्रमेह और कुष्ठविनाशक, नेत्रों के लिए हितकर तथा अग्निदीपक व विषमज्वर का विनाशक है।

29. त्र्यूष्णादि गण : यह त्रिकटु भी कहा जाता है, इसमें छोटी पीपल, काली मिर्च व सोंठ आते हैं। यह वर्ग कफ व मेदजन्य रोगों को नष्ट करता है व प्रमेह, कुष्ठ व त्वचा के रोगों का विनाश करता है। यह अग्निदीपक तथा गुल्म, पीनस व मन्दाग्नि को नष्ट करने वाला है।

30. आमलक्यादि गण : आंवला, हरड़, पीपल और चित्रक। यह वर्ग सभी प्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है, यह नेत्रों के लिए हितकारी है। अग्निदीपक, वृष्य और कफ व अरोचक निवारक है।

31. त्रप्वादि गण : त्रपु वंग, सीसा, तांबा, चांदी, कान्तलौह, सुवर्ण और लोहे को किट्ट (मण्डूर)। ये वनस्पति नहीं, धातु आदि हैं। यह गरदोष व कृमियों को नष्ट करता है तथा प्यास, विषविकार, हृदयरोग, पाण्डु व प्रमेह को नष्ट करता है।

32. लाक्षादि गण : लाख, अमलतास, कूड़ा, कनेर, कायफल, हल्दी, दारुहल्दी, निम्ब, सप्तपर्ण, चमेली और त्रायमाणा। यह वर्ग कषाय, तिक्त और मधुर रस वाला है तथा कफ व पित्तजन्य वेदना को विनष्ट करता है, कुष्ठ व कृमियों का नाशक व दुष्टव्रण का विशोधक है।

33. लघु पंचमूलादि गण : गोखरू, छोटी और बड़ी कटेरी, पृश्निपर्णी व विदारीगन्धा (शालपर्णी)। यह वर्ग कषाय, तिक्त व मधुर होता है व वात को नष्ट करता है। पित्त का शमन करता है। यह बृंहण और शारीरिक बल को बढ़ाने वाला है।

34. बृहत्पंचमूल गण : बिल्व, अरणी, सोनापाठा, पाढल और गम्भारी। उक्त लघु पंचमूल और बृहत्पंचमूल मिलाकर दशमूल कहे जाते हैं। यह श्वासनाशक, कफ, पित्त व वात का शामक, आमदोषों का पाचक और सभी प्रकार के ज्वरों का नाशक है।

35. वल्लीपंचमूल गण : विदारीकन्द, सरिवन, हरिद्रा, गिलोय और मेढासिंगी।

36. कण्टकपंचमूल गण : करोंदा, गोखरु, पियावासा, शतावरी और बदरवृक्ष (गृधनखी)। उपर्युक्त वल्लीपंचमूल व कण्टकपंचमूल दोनों ही वर्ग रक्त-पित्त को नष्ट करते हैं तथा तीनों प्रकार के (वातिक, पैत्तिक व श्लैष्मिक) शोथ को नष्ट करते हैं। सभी प्रकार के प्रमेहों के नाशक व शुक्रदोषों के संहारक हैं।

37. तृणपंचमूल गण : कुश, काश, नरसल, दर्भ और काण्डेक्षुक (गन्ना)। इस वर्ग को दूध के साथ प्रयोग करने पर मूत्र दोषों और रक्त-पित्तजन्य व्याधियों का निवारण होता है। *—(सुश्रुत. सूत्र. 38, 3-78)*

उक्त विस्तृत वर्णन से ज्ञात होता है कि वनस्पतियों के वर्गों का उनके गुण-धर्म के अनुसार भी विवेचन किया गया है। इन वर्गों में ओषधियों का शरीर पर रोगनाशन, स्वास्थ्य रक्षण और बलवृद्धिरूप जो प्रभाव या कार्य होता है, वह गुण माना गया है। जिन वनस्पतियों, ओषधियों की उपयोगिता रस, गुण, बल, विपाकादि से नहीं हो सकती है, वैसी अवस्था में चरक और वाग्भट ने उनके लिए प्रभाव शब्द का प्रयोग किया है और सुश्रुत ने ऐसी ओषधियोंको अचिन्तनीय तथा अमीमांस्य कहा है। वनौषधियों की पंचमहाभूतात्मक रचना द्रव्य कही जाती है। यह द्रव्य चिकित्सकीय में ओषधियों का संगठन कहा जा सकता है।

इनमें प्रथम औषधि के आधार पर गण का नामकरण किया गया है। चूंकि यह वर्णन मूलतः आयुर्वेद की दृष्टि से किया गया है, ऐसे में गुणादि को जानकर यथाविधि लेप कषाय, तेल, घृत और पानक आदि योग बनाकर रोगी को देने का निर्देश भी किया गया है- एभिर्लेपान् कषायांश्च तैलं सर्पींषि पानकान्। प्रविज्य यथान्यायं कुर्वीत मतिमान् भिषक्॥ *—(उपर्युक्त 38, 81)*

अन्नपान योग्य वनस्पतियाँ :

उपर्युक्त ओषधियों के अतिरिक्त आहार योग्य उत्पादों का भी एक पृथक् वर्गीकरण मिलता है जो वनस्पतिशास्त्र और आहारशास्त्र के अध्ययन की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। धन्वन्तरि ने इसका जो विवेचन सुश्रुतसंहिता में किया, उसको कालान्तर में अनेक शास्त्रविदों ने ग्रहण किया और अनुभव के आधार पर विस्तार भी दिया। इस वर्णन का

मूल कारण है कि अन्न ही प्राणियों के जीवन का मूल कारण है और शरीर के बल, वर्ण और ओज की बुनियाद भी अन्न है। आहार की विषमता के फलस्वरूप अस्वास्थ्य होता है। ऐसे में 'अशितपीतलीढखादितस्य' अर्थात् अनेक द्रव्यों से खाने के लिए बनाए गए (अ.) मोदकादि अशित, (ब.)उदकादि पीत, (स.) मध्वादि लेह्य और (द.) खादित या भक्ष्य पदार्थों का नियमन भी किया गया है। यही गीताकार को भी अभीष्ट रहा है।

हालांकि 'सस्यवेद' और 'काश्यपीय कृषि पद्धति' में इस विषय में संक्षिप्त विमर्श मिलता है लेकिन यहाँ प्राचीन उत्पादों का परिचय प्रासंगिक होगा। आहार में धान्योपयोग के क्रम में प्रथमतः शालिवर्ग को लिया गया है।

जैसा कि अन्यत्र भी कहा गया है, शालिवर्ग (चावलों) में लालशाली, कलम, कर्दमक, पाण्डुक, सुगन्धक, शकुनाहृत, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक, महाशाली, शीतभीरुक, रोध्रपुष्पक, दीर्घशूक, कांचनक, महिष, महाशूक, हायनक, दूषक, महादूषक आदि अठारह सालधान्य भेद सुश्रुत के काल में प्रचलन में थे और काण्ड के बिना हेमन्त ऋतु में पकने वाले थे, जैसा कि भावप्रकाश में कहा गया है- काण्डनेन विना शुक्ला हेमन्ताः शालयः स्मृताः। इनमें रक्तशालि को श्रेष्ठ और दोषनाशक माना जाता था- तेषां लोहितकः श्रेष्ठो दोषघ्नः शुक्रमूत्रलः। इसके बाद के 17 शालिधान्य गुणों में उत्तरोत्तर कम थे। शकुनाहृत शालि द्वीपान्तर से गरुड द्वारा लाए गए थे। इसी कारण उसको गरुड नाम से भी जाना जाता था- शकुनाहृत द्वीपान्तरात् समानीतो गरुडेन महात्मना। शकुनाहृतः स शालिः स्याद् गरुडापरनामकः॥

जो चावल साठ दिनों में पकता था, उसको षष्टिक कहा जाता था। चक्रपाणि का मत है- ते हि षष्टिरात्रेण भवन्ति। इसके षष्टिक, कंगुक, मुकुन्दक, पीतक, प्रमोदक, काकलक, असनपुष्पक, महाषष्टिक, चूर्णक, कुरवक और केदारक आदि भेद थे। ये ग्रीष्म ऋतु में पकते थे और विपाक में मधुर, वात, पित्त के शामक और गुणों की दृष्टि से शालि के तुल्य, बृंहण व कफ-वीर्यादि उत्पादक थे। वाग्भट ने कहा है- षष्टिको व्रीहिषु श्रेष्ठः।

व्रीहि धान्य भेद में कृष्णव्रीहि, शालामुख, जतुमुख, नन्दीमुख, लावाक्षक, त्वरितक, कुक्कुटाण्डक, पारावतक, पाटल आदि की उपज होती थी जो रस में कषाय तथा मधुर, विपाक में मीठे, बल में उष्ण, स्वल्प क्लेदकारक और षष्टिक चावलों के समान गुण वाले होते। व्रीहिधान्यों में कृष्णव्रीहि श्रेष्ठ होता और वह अनुरस में कषाय तथा पचने में हलका होता। उसके अतिरिक्त शेष सब व्रीहि यथोत्तर कम गुण वाले होते थे- यह बहुत अनुभव के आधार पर निश्चित किया गया था। व्रीहि वर्षा ऋतु में उत्पन्न होते, जैसा कि भावप्रकाशकार का मत है- वार्षिकाः कण्डिताः शुक्ला व्रीहयश्चिरपाकिनः।

तब यह भी अनुभव प्रकट किया गया कि दग्धायाम वन (दग्ध वन भूमि) में उत्पन्न शालि पाचन में हलके होते थे। जांगल देश में उत्पादित किए जाने वाले चावल

कफ व वातनाशक, कषाय, कुछ कटु, तिक्त व मधुर तथा वायु व पाचकाग्नि के वर्धक होते थे। जल बहुल भूमि (केदार) में होने वाले चावल मधुर, वृष्य, बलवर्धक, पित्तशामक, कुछ कषाय, कुछ मलोत्पादक, पचने में भारी और कफ व वीर्योत्पादक होते। उस काल में रोप्य और अतिरोप्य जैसी विधियों से शालि उत्पादन किया जाता था। रोप्य शालि वे होते जो एक बार उखाड़कर अन्य भूमि में रोपे जाते थे। अतिरोप्य शालि उनको कहा जाता था जो कई बार एक स्थान से उखाड़कर अन्य स्थान में लगाए जाते थे। ये लघु और गुणों में श्रेष्ठ होते थे। *—(सुश्रुत. सूत्र. अध्या. 45)*

कुधान्य वर्ग में छोटे धान्यों को गिना गया है। सुश्रुत ने यह नाम दिया है और चरक ने शालि के साथ शूकधान्य वर्ग में रखा है। इसके अन्तर्गत कोरदूषक (कोदो), श्यामाक (सावाँ), नीवार, शान्तनु, वरक, उद्दालक, प्रियंगु, मधूलिका, नान्दीमुखी, कुरुविन्द, गवेधुक, वरुक, तोयपर्णी, मुकुन्दक, वेणुयव आदि पन्द्रह छोटी प्रजाति के धान्य लिए गए हैं। ये कुधान्य उष्ण, कषाय, मधुर व रूक्ष, विपाक में कटु, कफनाशक, मूत्र की मात्रा को अल्प करने वाले तथा वात और पित्त के प्रकोपक होते हैं।

इसी प्रकार दालों (द्विदली) का मुद्गादि वर्ग माना गया है। इसमें मुद्ग, वनमुद्ग, कलाय (मटर), मकुष्ठ (मोठ), मसूर, मंगल्य (मसूर भेद), चना, सतीन (मटर भेद), त्रिपुटक (खेसारी), हरेणु (मटर भेद), आढ़की (अरहर, तूअर) आदि ग्यारह दालों को लिया गया है। ये धान्य मधुर, कषाय और शीत, विपाक में कटु, वातकारक, मूत्र व मल को बाँधने वाले तथा पित्त व कफ के नाशक हैं। इसी प्रकार माष (उड़द) को भारी व मल-मूत्र का प्रवर्तक, स्निग्ध, उष्ण, वृष्य, मधुर व वातनाशक कहा गया है। इसको इन्द्रियादि को तृप्त करने वाला, स्त्रियों में विशेषकर दुग्धवर्धक, बलदायक व शुक्र व कफोत्पादक माना गया है। अलसान्द्र (राजमाष) को कषाय होने के कारण मल का भेदन नहीं करने वाला कहा है। आत्मगुप्ता (कौंच) के बीज उड़द के समान ही गुणकारक कहे हैं। काकाण्ड (बड़ी शिम्बी) के फल भी इन्हीं गुणों के धारक होते हैं। जंगली उड़द रूक्ष, कषाय व अविदाही गुण वाले हैं। कुलथी (कुलत्थ) वीर्य में उष्ण, रस में कषाय, विपाक में कटु होती है। वन कुलथी आनाह, मेदोवृद्धि, गुदकील या अर्श, हिक्का व श्वास को नष्ट करती है।

इसी प्रकार तिलों में काले तिल को अच्छा माना गया है और श्वेत तिल को मध्यम। अन्य रंग-बिरंगे तिल निकृष्ट कहे गए हैं। तिल कुछ कषाय, मधुर, तिक्त, संग्राही, पित्तजनक, उष्ण, विपाक में मधुर, बलवर्धक, स्निग्ध तथा व्रण पर लेप करने के लिए पथ्य है। तिल दांतों के लिए हितकारी, अग्निदीपक, बुद्धिवर्धक, मूत्र की मात्रा को घटाने, त्वचा व केशों के हितकारी, वातनाशक व गुरु होते है।

यव (जौ) कषाय, मधुर, शीतल, विपाक में कटु तथा कफ व पित्तनाशक, व्रणों में

तिल के ही समान सदा पथ्य, मूत्र कम करने वाला, वात और विष्ठा को बढ़ाने वाला, स्थैर्यजनक, पाचकाग्नि प्रदीपक, बुद्धिवर्धक, कण्ठ स्वर को अच्छा करने वाला, वर्ण वर्द्धक, पिच्छल तथा मोटापा कम करने वाला है। यह मेदोरोग, वातरोग और तृषा को नष्ट करने वाला, अतिरूक्ष व रक्त-पित्त का प्रसादक होता है। अतियव को उक्त गुणों से कमतर माना जाता है।

सुश्रुत द्वारा गोधूम (गेहूँ) को मधुर, भारी, बलदायक, स्थैर्यकारक, शुक्र व रुचिवर्धक, स्निग्ध, अतिशय, वात व पित्त का शामक, भग्नास्थि का संयोजक, कफकर व दस्तावर बताया गया है। इस प्रकार शिम्बी वर्ग के अन्न रुक्ष, कषाय, विष, शोष, शुक्र, कफ व दर्शन शक्ति का क्षय करते हैं तथा विदाहकारक, विपाक में कटु, मधुर, विष्ठा के भेदक और वात-पित्तवर्धक होते हैं। मुद्गपर्णी, माषपर्णी, मूलक शिम्बी, कुशिम्बी, वल्ली शिम्बी (कौंच बीज) विपाक और रस में मधुर व बलदायक व पित्तनाशक होती हैं। कुसुम्भ को विपाक व रस में कटु, कफनाशक, विदाहकारक होने से अहितकारी माना गया है। अलसी को उष्ण, मधुर, वातनाशक, पित्तवर्धक तथा विपाक में कटु कहा है। श्वेत सरसों को विपाक व रस में कटु तथा रक्त-पित्त को कुपित करने वाला माना गया है। यह तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष व कफ व वायु नाशक भी है। काली सरसों भी इन्हीं गुणों वाली है।

फल वर्ग में दाड़िम, आँवला, बैर, कोल (झाड़ी के बेर), कर्कन्धु (छोटे बेर), सौवीर (बदर भेद), सिंचतिका (बेर भेद), कैथ, बिजोरा, निम्बू, आम, आम्रातक, करौंदा, चिरोंजी, नारंगी, जम्बीरी निम्बू, बड़हल, भव्य (कमरख), पारावत, वेत्रफल, प्राचीनामलक (पानी आंवला), इमली, नीप (कदम्ब), कोशाम्र, अम्लीका (इमली भेद) आदि फलों को लिया गया है। यह भी कहा गया है कि उक्त फल रस में अम्ल, विपाक में गुरु, वीर्य में उष्ण, पित्तकारक, वायुनाशक तथा कफ का उत्क्लेश करने वाले हैं। *—(सुश्रुत. सूत्र. 46, 139-140)*

यह रोचक पक्ष है कि इन फलों के गुणों के विषय में निश्चय करते हुए उनके प्रयोग पर विचार किया गया है। यथा-

दाड़िम : यह फल कषायानुरस, अधिक पित्त नहीं करने वाला, अग्निदीपक, रुचिकारक, हृदय के लिए हितकारी तथा मल को बाँधने वाला होता है। दाड़िम दो प्रकार के होते हैं- मधुर और खट्टा। मधुर दाड़िम तीनों ही दोषों का नाशक तथा खट्टा दाड़िम वात और कफ को नष्ट करता है।

आंवला : यह फल खट्टा, मीठा, तिक्त, कषाय, कटु, दस्तावर, नेत्रों के लिए हितकारी, समस्त दोषों का नाशक और वृष्य माना गया है। यह खट्टा होने से वात को नष्ट करता है, मधुर व शीत होने से पित्त का निवारण करता है और रूक्ष व कषाय होने से कफ को दूर करता है। यह समस्त फलों में श्रेष्ठ माना गया है।

कर्कन्धु, कोल और बदर : ये फल कच्चे होने पर पित्त व कफवर्धक होते हैं। पक जाने पर पित्त और वात रोग को नष्ट करते हैं। ये स्निग्ध, मधुर और दस्तावर माने गए हैं। सूखे हुए बेर तृषाशामक, थकावट को दूर करने वाले, अग्निदीपक और पचने में हल्के होते हैं। सौवीर जाति के बेर स्निग्ध, मधुर व वात तथा पित्त के नाशक होते हैं।

सिंचतिका (सेव) : ये फल कषाय, मधुर, दस्त को बाँधने वाले तथा प्रकृति से शीतल होते हैं। कच्चा कैथ स्वर को हानि पहुँचाने वाला, कफनाशक, दस्त बाँधने वाला और वात को नष्ट करने वाला होता है। यह फल मधुर, अम्ल, भारी, श्वासनाशक, कासनाशक, अरुचिनाशक तथा कण्ठ को साफ करता है।

मातुलुंग : बिजौरा निम्बू लघु, अम्ल, अग्निदीपक तथा हृद होता है। उसका छिलका तिक्त, पचने में भारी एवं वात, कृमि और कफ को नष्ट करता है। उसका गूदा मधुर, शीतल, पचने में भारी, स्निग्ध, वात तथा पित्त का शामक, बुद्धिवर्धक और शूल, वात, वमन, कफ और अरुचि का नाशक है। उसका केसर पाचकाग्निदीपक, लघु, संग्राही तथा गुल्म व अर्श का नाशक है। उसका रस शूल, अपचन, विबन्धन, अग्निमान्द्य, कफ तथा वात के रोग एवं अरोचक में विशेष रूप से उपयोगी है।

आम : कच्चा आम जिसमें गुठली न पड़ी हो (अमिया) पित्त और वायु पैदा करता है। बद्धकेसर (जिसमें गुठली पड़ गई हो), पित्त उत्पादक होता है। पका हुआ आम्रफल हृद्य, वर्णकारक, रुचिवर्धक तथा रक्त, मांस व बल को बढ़ाने वाला होता है। अनुरस में कषाय, रस में मधुर, वातनाशक, बलवर्धक, पचने में भारी, पित्त का विरोध न करने वाला तथा शुक्रवर्धक होता है।

आम्रातक : अम्बाड़ा नामक फल बृंहण, मधुर, बलवर्धक, पचने में भारी, आँतों में विष्टम्भ (वायु, तोद, शूल) होकर पचने वाला तथा वृष्य, स्निग्ध और कफवर्धक माना जाता है।

लकुच : बड़हल त्रिदोषजनक, विष्टम्भकारक और वीर्यनाशक होता है।

करोंदा : अम्ल, तृषानाशक, रुचिवर्धक व पित्तकारक होता है।

प्रियाल : चिरोंजी का फल वात तथा पित्त का नाशक, वृष्य, पचने में भारी तथा शीतल होता है।

भव्य : कमरख नामक फल हृदय के लिए हितकर, मधुर, कषाय, अम्ल, मुख का शोधक, पित्त व कफ का नाशक, दस्त बाँधने वाला, पचने में भारी, विष्टम्भकारक और शीतल होता है।

पारावत : मधुर, रुचिकारक तथा अत्यग्नि (भस्मक रोग) तथा वात व्याधि का नाशक होता है।

नीप : कदम्ब का फल कृत्रिमविष विनाशक होता है।

पानी आंवला : नीप की तरह ही गुणकारी है।

तिन्तिड़ी : इसका कच्चा फल वातनाशक, पित्त व कफ को करने वाला होता है। पका हुआ फल ग्राही, उष्णवीर्य, दीपन तथा रुचिवर्धक होता है। कफ और वात को नष्ट करता है।

कोशाम्रफल : उक्त तिन्तिड़ी के फल से कम गुणों वाला होता है।

अम्लीका : इमली का पका हुआ फल गुणों में तिन्तिड़ी के फल के समान ही होता है लेकिन भेदक (दस्तावर) माना जाता है।

नारंगफल : सन्तरा अम्ल, मधुर, हृद्य, विशद, भोजन में रुचि बढ़ाने वाला, वातनाशक, दुर्जर और भारी होता है।

जम्बीर : यह नींबू फल तृषा, शूल, कफ, जी मिचलाना, वमन, श्वास, वात, कफ और मलविबन्ध को नष्ट करता है। पचने में भारी तथा पित्तजनक होता है।

ऐरावत व दन्तशठ : गोदड़ा नींबू खट्टा व रक्त-पित्तजनक माना जाता है।

इनके अतिरिक्त कषाय रसाधिक्य वाले फलों में न्यग्रोध, उदुम्बर, पीपल, पाखर और वेतस जैसे दुग्धीय वृक्षों के फल, जामुन, राजादन (खिरनी), तोदन, शीतफल, तिन्दुक, बकुल (मौलसिरी), धामन, अश्मन्तक, अश्वकर्ण, फल्गु (अंजीर), फालसा, गंगोठ (नागबला), पुष्करवर्ति, बिल्व और बिम्बी आदि की गणना की गई है। उक्त न्यग्रोधादि के फल शीतल, कफ-पित्तनाशक, ग्राही, रूक्ष, कषाय और मधुर होते हैं। क्षीरीवृक्षों के फल गुरु, विष्टम्भकारक, शीतल, कषाय, मधुर तथा अम्लीय गुण वाले होते हैं। ये वायु का अधिक प्रकोप नहीं करते हैं।

जामुन : ये फल अत्यन्त वातकारक, दाँत को बाँधने वाले और कफ और पित्त को नष्ट करते हैं।

राजादन : खिरनी नामक फल स्निग्ध, मधुर, कषाय और भारी होता है।

तोदनफल : कषाय, मधुर, रूक्ष, कफ-वातशामक, अम्ल, उष्ण, लघु, ग्राही, स्निग्ध, पित्तजनक और अग्निवर्द्धक है।

तिन्दुक फल : कच्चा फल कसैला, ग्राही तथा वातप्रकोपक होता है। पका हुआ होने पर विपाक में गुरु, मधुर, कफ व पित्तनाशक होता है।

बकुल : मौलसिरी का फल मधुर, कषाय, स्निग्ध, संग्राही, दांतों को दृढ़ करने वाला तथा विशद होता है।

धामन फल : कषाय, शीत, मधुर तथा कफ व पित्त का नाशक होता है। इसके अनुरूप ही गांगेरुक व अश्मन्तक फलों के गुण होते हैं।

फल्गु : अंजीर का फल विष्टम्भकारक, मधुर, स्निग्ध, तृप्तिकर तथा पचने में भारी होता है।

परूषक : कच्चा परूषक (फालसा) बहुत खट्टा, कुछ मीठा, अनुरस में कषाय, पचने में हल्का, वातनाशक और पित्तजनक होता है। पका हुआ फालसा मधुर, वात-पित्तनाशक विपाक में मधुर, शीतल तथा रक्त-पित्त प्रसादक होता है।

पौष्कर : तालाब में उत्पादित होने वाले सिंघाड़े या कमल के फल रस में मधुर, विष्टम्भजनक, बलवर्द्धक, कफकारक और गुरु होते हैं।

बिल्व : कच्चा बेल का फल वातनाशक, तीक्ष्ण, स्निग्ध, संग्राही, अग्दीपक, कटु, तिक्त व कषाय तथा उष्ण होता है। पका हुआ बेल अनुरस में मधुर, पचने में भारी, विदाहजनक, विष्टम्भकारक, दोषजनक तथा दुर्गन्धित वायु उत्पन्न उत्पन्न करता है।

कुन्दरु या बिम्बी तथा अश्वकर्ण : दुग्धवर्द्धक, कफ और पित्त को नष्ट करने वाले तथा तृषा, ज्वर, रक्तपित्त, कास, श्वास और क्षय का निवारण करते हैं।

ताल, नारियल, कटहल व केला : रस और विपाक में मधुर, वात-पित्तनाशक, बलदायक, स्निग्ध, बृंहण तथा शीतल होते हैं। इनमें ताल का फल मधुर रस वाला, पचने में भारी और पित्तनाशक होता है। उसका बीज विपाक में मधुर, मूत्रजनक तथा वात-पित्तनाशक है। नारियल पचने में भारी, स्निग्ध, पित्तनाशक, मधुर, शीतल, बल व मांस का वर्द्धक, हृद्य, बृंहण तथा बस्ति (मूत्राशय) का शोधक होता है। कटहल का फल कसैला, स्निग्ध, स्वादुरसयुक्त तथा पचने में भारी होता है। केवल रस में मधुर व कषाय होता है और अधिक शीतल नहीं होता तथा रक्त-पित्तशामक, वृष्य, रुचिजनक, कफकारक व भारी होता है।

द्राक्षा : दाख दस्तावर व स्वर को बढ़ाने वाली, मधुर, स्निग्ध, शीतल है और रक्त-पित्त, ज्वर, श्वास, तृष्णा, दाह तथा क्षय को नष्ट करती है।

गम्भारी फल : हृद्य, मूत्रावरोधनाशक, रक्त-पित्त व वातरोगनाशक, केशों के लिए हितकारी, रसायन तथा बुद्धिवर्द्धक होता है।

खर्जूर : छुहारा और पिण्डखजूर क्षत और क्षय का नाशक, हृद्य, शीतल, तृप्तिकारक, गुरु तथा रस व विपाक में मधुर है।

मधूकपुष्प : महुवे के फूल सूख जाने पर मुनक्का के समान हो जाते हैं। वे बलवर्द्धक होते हैं लेकिन हृदय के लिए अहितकारी व पचने में भारी होते हैं। महुवे के फल वात व पित्त के शामक हैं।

बादाम, अखरोट, अभिषुक (काजू), निचुल (चिलगोजा), पिचु, निकोचक (पिस्ता), उरुमाण (नाशपाती) आदि सूखे मेवे के वर्ग के अन्तर्गत परिगणित हैं। ये पित्त और कफ के नाशक, स्निग्ध, उष्ण, गुरु, बृंहण, वातनाशक व बलवर्द्धक तथा मधुर होते हैं।

लवलीफल : हरफा रेवड़ी के फल कषाय, कफ-पित्तनाशक, कुछ तिक्त, रुचिकर, हृद्य, सुगन्धयुक्त एवं विशद होते हैं।

वसिर (सूर्यभक्ता) के फल, शीतपाक्य (बला के फल) और अरुष्कर (भल्लातक के फल) या उसका निबन्धन (डण्ठल) विष्टम्भजनक, पचने में कठिन, रूक्ष, शीतल, वातप्रकोपक, विपाक में मधुर एवं रक्त-पित्तशामक होते हैं।

टंक : नीलकैथ के फल शीतल, कषाय, मधुर, वातवर्द्धक और भारी होते हैं।

इंगुदी : ये फल स्निग्ध, उष्ण, कटु, मधुर व वात-कफनाशक होते हैं।

शमी : यह फल भारी, मधुर, रूक्ष, उष्ण और केशनाशक होता है।

लिसौड़ा : गुंदे का फल भारी, कफकारक, मधुर और शीतल होता है।

करीर, आक्षिक, पीलु व तृणशून्य (मल्लिका) के फल : मधुर, तिक्त, कटु, उष्ण तथा कफ और वात के नाशक होते हैं। पीलु फल रस में कटु, पित्तजनक, दस्तावर, विपाक में कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, रस में कटु, स्नेहांशयुक्त तथा कफ व वात के नाशक होते हैं।

तौवरक फल : व्रणकारक, कषाय, विपाक में कटु, उष्णवीर्य तथा कृमि, ज्वर, आनाह, प्रमेह तथा उदावर्त का नाशयक होता है। करंज, ढाक व नीम के फल कृमि, प्रमेह, कुष्ठ, गुल्म, उदर व अर्श के नाशक एवं विपाक में कटु होते हैं।

वायविडंग : रूक्ष, उष्ण, विपाक में कटु, पचने में लघु, वात तथा कफशामक, कुछ तिक्त, विषज रोगों में हितकारी तथा कृमिनाशक है।

अभया : हरड़ फल व्रण में हितकारी, उष्ण, दस्तावर, मेधाहितकर, दोषनाशक, शोफ व कुष्ठ का नाशक, कषाय, अग्निदीपक, अम्ल तथा नेत्रों के लिए उत्तम है।

आक्ष : बहेड़ा के फल दस्तावर, लघु, रूक्ष, उष्ण, स्वर को विकृत करने वाला, कृमिनाशक, नेत्रहितकारी, विपाक में मधुर, कषाय एवं कफ व पित्तनाशक है।

पूग : सुपाड़ी कफ व पित्तनाशक, रूक्ष, मुख का क्लेद व मल का नाशक, रस में कषाय और कुछ मधुर व दस्तावर है।

जातिकोश (जावित्री), कर्पूर, जायफल, लता कस्तूरी के फल, कक्कोलक व लवंग : ये तिक्त, कटु, कफनाशक, पचने में लघु, तृषानाशक, मुख की क्लिन्नता तथा दुर्गन्ध को नष्ट करने वाले हैं। इनमें कर्पूर कड़वा, सुगन्धि, शीतल, लघु व लेखन गुण वाला होता है। वह तृषा, मुख की खुश्की व अरुचि में लाभदायक है। इसी प्रकार लता कस्तूरी कर्पूर के समान ही गुणकारी, शीतल व बस्तिशोधक है।

चिरौंजी : प्रियालमज्जा नामक यह फल मधुर, वृष्य और वात-पित्तनाशक है।

इसके साथ जिन फलों की मज्जा उपयोगी होती है, उनका वर्णन सुश्रुत को अभीष्ट रहा है। बिभीतक या बहेड़े के फल की मज्जा मदकारक तथा वात-कफनाशक होती है।

कोल अथवा बदरी और आंवले के फल की मज्जा कषाय, मधुर, पित्तनाशक, तृषाशामक, वमननाशक तथा वात का हरण करने वाली है। बीजपूर तथा शम्याक (अमलतास की फली) की मज्जा तथा कोशाम्र की मज्जा विपाक में मधुर, पाचकाग्नि व बल की वर्द्धक, स्निग्ध एवं पित्त व वात की नाशक कही गई है। बिल्वफल को छोड़कर अन्य सभी फलों में पके हुए फल प्रशस्त गुणयुक्त होते हैं किन्तु बिल्वफल कच्चा ही गुणयुक्त होता है। कच्चा बिल्वफल कब्ज करने वाला, उष्ण, दीपन, कषाय, कटु और तिक्त रस युक्त होता है। यह भी ज्ञेय है कि जिस-जिस फल का जैसा जैसा बल होता है, उसी के अनुरूप उसकी मज्जा होती है- यस्य-यस्य फलस्येह वीर्यं भवति यादृशम्। तस्य तस्येव वीर्येण मज्जानमपि निर्दिशेत्॥ *—(सुश्रुत. सूत्र. 46, 208)*

शाक और संस्कारित आहार

आहार में शाक का महत्वपूर्ण स्थान है। मार्कण्डेय पुराण में शाक से देवताओं की उदरपूर्ति करने वाली देवी का नाम 'शाकम्भरी' आया है। अठारह धान्यौषधियाँ ही उसकी अठारह भुजाएँ हैं- शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि। *(मार्कण्डेय पुराण, दुर्गासप्तशती 11, 49)* उसको शाक से प्राणियों का भरण-पोषण करने के कारण ही सर्वकष्ट निवारक माना गया है- शाकम्भरी महादेवी कष्टहन्त्री भवेन्नहि। *(पद्मपुराण : पुरुषोत्तम मास माहात्म्य 62-63)* यही नाम देवीपुराण में भी मिलता है। शाकम्भरी को प्राप्याप्राप्य रूप ऐसी देवी कल्पित किया गया है जो कभी मिलती है और कभी नहीं और इसी से मृत्यु और महामारी के अनेक कारण बन जाते हैं। इस अर्थ में कहा गया है कि वे कभी उच्च पर्वतशिखर तो कभी भयानक कन्दरा में निवास करती है- विविधमृत्युमारीति शाकम्भरी शैलशृङ्गेषु तुङ्गेषु नित्यां पर्वतकन्दरवासिनि भीमसङ्गे नित्यं त्वमेवोच्यसे। *(देवीपुराण 17, 34)*

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आहार में शाक और उसका विधिसम्मत उपयोग मानवीय संस्कृति से जुड़ा हुआ एक ज्ञानात्मक सोपान है। सुश्रुत ने सूत्रस्थान में शाकवर्ग के रूप में उपयोगी विविध फल सब्जियों और उनके संस्कार के लिए काम में लिए जाने योग्य उत्पादों का वर्णन किया है।

शाकवर्गीय उत्पादों में पुष्पफल (कोहड़ा), अलाबु (लौकी या तुम्बी), कालिन्द (तरबूज) को पित्तनाशक, वातकारक, किञ्चित कफकारक, मूत्र और मल उत्पन्न करने वाली तथा रस और विपाक में मधुर कहा है। इनका विशेष वर्णन ध्यान देने योग्य है-

कूष्माण्ड : कच्चा कद्दू पित्तनाशक, अधपका कूष्माण्ड कफकारक तथा पका हुआ कूष्माण्ड पचने में हलका, उष्ण, क्षारयुक्त, अग्निदीपक तथा बस्ति का शोधक (मूत्रल) होता है एवं समस्त दोषों का नाशक, हृदय के लिए हितकारी तथा चित्त के विकार (मानस रोग यथा- उन्माद, अपस्मार, सन्यास, मूर्च्छा) वालों के लिए परम पथ्य है।

कालिन्द (तरबूज) : दृष्टि और शुक्र का नाशक एवं वात व कफ का जनक है।

अलाबू (लौकी) : दस्तावर, रूक्ष, पचने में भारी तथा अतिशीतल होती है। इसी प्रकार कड़वी तुम्बी हृदय के लिए अहितकर, वमनकारी लेकिन वात और पित्त को नष्ट करती है।

अन्य फलशाक हैं- त्रपुस (खीरा), एर्वारुक (ककड़ी), कर्कारुक (ककड़ी भेद) और शीर्णवृन्त। ये फलशाक स्वादु, तिक्त (कड़वे), कफ तथा वात के जनक, मूत्र और मलोत्पादक, रक्त-पित्तनाशक होते हैं। इनमें कच्ची नीली ककड़ी पित्तनाशक होती है तथा ठीक तरह से पकी हुई श्वेत ककड़ी कफ करने वाली तथा अधिक पकी हुई जीर्ण ककड़ी खट्टी होती है और वात व कफ को नष्ट करती है। एर्वारुक व कर्कारु अधिक पकने पर कफ और वातकारक होती हैं। वे क्षारयुक्त, मधुर, रुचिवर्धक, अग्निदीपक तथा अधिक पित्तवर्द्धक नहीं होती है। शीर्णवृन्त (ककड़ी) क्षारयुक्त, मधुर, कफनाशक, दस्तावर, अग्निदीपक तथा हृद्य व अफारा तथा अष्ठीला वृद्धि को नष्ट करती है। पचने में हलकी होती है।

शाकों के संस्कार (छोंकने, बघारने) की विधियाँ भारत में सभ्यता के उषःकाल से चली आती हैं। इसके लिए जो मसाले आदि काम आते हैं, इनमें प्रमुख हैं- पिप्पली, मरिच, सोंठ, अदरक, हींग, जीरा, धनियाँ (कुस्तुम्बुरु), जम्बीरी नीबू, सुमुख (वन तुलसी), कुठेरक (तुलसी भेद), क्षवक, (नकछिंकनी), खरपुष्प (मरुबक), सहजना, लाल सहजना, फणिज्झक (मरुआ), सरसों, राई, कुलाहल, अवगुत्थ (लाल चिरमू), गण्डीर (सूरण), तिलपर्णिका (लाल चन्दन या चोरक), पुनर्नवा, चीता, मूली, लहसुन, प्याज और कलाय (मटर) ये सब शाक को बनाने को और इनमें से बहुत से (धनियाँ, जीरा, हींग आदि) द्रव्य शाकों के संस्कार के काम में आते हैं। ये पिप्पल्यादि द्रव्य रस में कटु, उष्ण प्रकृति वाले, रुचिवर्द्धक, वात व कफ को नष्ट करने वाले होते हैं। इनमें से अनेक द्रव्य का कृतान्न अर्थात् शाक अथवा अन्य अन्न के खाद्य पेय पदार्थ बनाने में संस्कार करने के लिए (मसाले के रूप में) प्रयुक्त किए जाते हैं।

पिप्पली : गीली होने पर पचने में भारी, रस में मधुर, शीतवीर्य तथा कफवर्द्धक होती है। सूखी पीपल कफ और वात को नष्ट करने वाली, वृष्य तथा पित्त की अवरोधिनी होती है।

काली मरिच : यदि गीली है तो विपाक में मधुर, गुरु, तथा कफ का स्राव कराने वाली होती है। सूखी काली मरिच कटु, उष्ण, लघु, अवृष्य तथा कफ व वात को नष्ट करती है। श्वेत मरिच (सहजन के बीज) अधिक उष्ण और शीतल नहीं होती। अन्य मरिचों की अपेक्षा अधिक गुणकारी एवं नेत्रों के लिए हितकारी होती है।

शुण्ठी (सोंठ) : कफ और वात को नष्ट करने वाली, विपाक में मधुर, कटु, वृष्य, उष्ण, रुचिकारक, हृद्य, स्निग्ध, लघु व पाचकाग्नि प्रदीपक होती है।

अदरक : कफ और वात का नाशक, स्वर के लिए हितकारी तथा विबन्ध, आफरा व उदरशूल को नष्ट करता है। यह कटु, उष्ण, रोचक, हृद्य तथा वृष्य होता है।

हींग : हल्की, उष्ण, पाचन, दीपन, कफ और वात नाशक, कटु, स्निग्ध, दस्तावर तथा तीक्ष्ण होती है। शूल व अजीर्ण व विबन्ध को नष्ट करती है।

जीरा : काला और सफेद जीरा तीक्ष्ण, उष्ण, विपाक में कटु, रुचिजनक, पित्तवर्द्धक, अग्निदीपक, कटु, वात-कफनाशक और अच्छी गन्ध से युक्त होते हैं। कारवी (छोटा जीरा), करवी (सूक्ष्म काला जीरा), उपकुंजिका (काली जीरी) या कलौंजी ये तीनों जीरे के समान ही गुणकारी हैं।

धनियाँ : हरा धनिया अनेक प्रकार के भक्ष्य, व्यंजन (शाकादि) और भोज्य (अन्न, यवागू, दाल आदि) पदार्थों में अनेक प्रकार से प्रयुक्त करने पर उनमें स्वादुता, सुगन्धिता और हृदयप्रियता उत्पन्न करता है। धनिया सूखा होने पर विपाक में मधुर तथा स्निग्ध, तृषा व दाह को नष्ट करता है। दोषनाशक, कटु, कुछ तिक्त और स्रोतसों का शोधक होता है।

जम्बीर : यह नींबूवर्गीय फल पाचक, तीक्ष्ण और कृमि, वात और कफ का नाशक, सुगन्धयुक्त, अग्निदीपक, रुचिजनक एवं मुख को साफ करता है।

सुरसा : इसको तुलसी माना गया है, यह कफ, वात, विष, श्वास, कास एवं दुर्गन्धनाशक, पित्तकारक तथा पार्श्वशूलनाशक होती है। सुमुख भी तुलसी के समान ही है लेकिन विशेषकर विषशामक है। सुरसा, अर्जक और भूस्तृण- ये कफनाशक, पचने में हल्के, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्ण, पित्तवर्द्धक और रस व विपाक में कटु होते हैं।

अन्य वनस्पति उत्पादों में कासमर्द (कसोंदी) मधुर, कफ-वातनाशक, पाचक, कण्ठशोधक, विशेषरूप से पित्तहारक तथा कटुरसयुक्त है। शोभांजन कटु, क्षारयुक्त, मधुर, तिक्त और पिच्छल होता है। लाल सहजन को दस्तावर, तिक्त, शोफनाशक, अग्निदीपक और कटु माना गया है। सरसों का शाक, गाण्डीर व वेगनाम ये विदाहकारक, मल-मूत्र के अवरोधक, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्ण और त्रिदोषजनक होते हैं। चित्रक तथा तिलपर्णी कफ व शोफ को नष्ट करते हैं। ये शाक पचने में हल्की होती है। पुनर्नवा कफ और वातनाशक है तथा शोफ, उदररोग व अर्श रोग में लाभदायक है।

शाकवर्ग में ही मूल कपोतिका (छोटी मूली) कटु, तिक्त, हृद्य, रुचिकारक, अग्निदीपक, सर्वदोषनाशक, लघु तथा कण्ठ शोधक है। अग्नि पर नहीं पकाई गई बड़ी मूली विष्टम्भकारक, तीक्ष्ण व त्रिदोषजनक होती है। उसी मूली को तैल या घृत द्वारा अग्नि पर पकाए जाने पर पित्त को नष्ट करने वाली तथा कफ व वात को नष्ट करती है। सूखी मूली त्रिदोषशामक, विषदोषहर व लघु होती है। मूली के सिवाय अन्य सब सूखे शाक विष्टम्भकारक व वातजनक होते हैं। शाकों के अथवा मूली के या किसी के भी पुष्प, पत्र

और फल ये यथोत्तर एक दूसरे से पाचन में भारी होते हैं। उनमें से पुष्प कफ तथा पित्त का निवारण करते हैं और फल कफ व वात से निजात देते हैं। राजनिघण्टु में ये सब अंग मूली के ही माने गए हैं- तत्पुष्पं कफपित्तघ्नं तत्फलं कफवातजित्।

रसोन और पलाण्डु को क्रमशः लहसुन और प्याज के रूप में पहचाना जाता है। इनमें रसोन के लिए कहा गया है- एकरसविरहितः पञ्चरसो लशुन इत्यर्थः। इसको स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण, कटु, पिच्छल, भारी, दस्तावर, रस में मधुर, बलवर्द्धक और वृष्य कहा है। रसोन मेधा, स्वर, वर्ण तथा नेत्र के लिए हितकारी व भग्न हड्डी का सन्धान करता है। यह ह्रोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, विबन्ध, गुल्म, अरुचि, कास, शोफ, अर्श, कुष्ठ, अग्निमान्द्य, कृमि, वातरोग, श्वास व कफ के रोगों को नष्ट करता है।

प्याज अधिक उष्णवीर्य नहीं होता है। वातव्याधि को नष्ट करता है और कटु, तीक्ष्ण, गुरु, अधिक कफ नहीं करने वाला, बलवर्द्धक, कुछ पित्तकारक और अग्नि को बढ़ाने वाला है। क्षीरपलाण्डु स्निग्ध, रुचिकारक, रस-रक्तादि धातुओं को दृढ़ (स्थिर) बनाने वाला, बलवर्द्धक, मेधा, कफ और शारीरिक पुष्टि प्रदायक, मधुर, गुरु, रक्त-पित्त में प्रशस्त तथा पिच्छिल होता है।

शाकों में कलायशाक (मटर की सब्जी) पित्त-कफनाशक, वातकारक, गुरु, अनुरस में कषाय व विपाक में मधुर होती है। इसी प्रकार चुच्चू, जूही, तरुणी (सेवती गुलाब), जीवन्ती, कुन्दरु, नन्दी, भल्लातक, छगलान्त्री (विधारा), वृक्षादनी (बन्दा), फंजी (भारंगी), सेमल, शेलु (लिसोड़ा) जैसी वनस्पतियों के प्रसव अर्थात् कोमल पत्र, शण, कर्बुदार (श्वेत कचनार), कोविदार (रक्त कचनार) आदि भी उत्पादन होते हैं। ये शाकें कषाय, स्वादु और तिक्त होती हैं। रक्त-पित्त को नष्ट करती हैं तथा कफनाशक मानी जाती हैं। ये वातवर्द्धक तथा दस्त को बाँधने वाली व लघु होती हैं।

इनमें भी चुच्चूशाक विपाक में लघु, कृमिनाशक, पिच्छिल, व्रणी पुरुषों के लिए लाभकारी, कषाय, मधुर, दस्त बाँधने वाली व त्रिदोषनाशक होती हैं। जीवन्ती शाक नेत्रों के लिए हितकारी तथा समस्त दोषों की नाशक होती हैं। वृक्षादनी (बाँदा) वातनाशक तथा फंजी शाक स्वल्प बलकारक होती है। पीपल, वट आदि दुग्ध वाले वृक्ष तथा कमल आदि के पत्ते रस में कसैले, शीत, संग्राही तथा रक्त-पित्त व अतिसार के रोगियों के लिए लाभदायक सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार साँठी, वरुण, अरणी, उरुबूक (एरण्ड), वत्सादनी (गिलोय) तथा बिल्वशाकादि उष्ण, मधुर, तिक्त (कड़वी) तथा वातनाशक होती हैं। इनमें पुनर्नवा (ठीकरी) का शाक विशेषकर शोथनाशन की दृष्टि से उत्तम होता है।

अन्य शाकों में पत्तियों वाली चौलाई (तण्डुलीयक), पोईशाक (उपोदिका), अश्वबला (मेथी), चिल्ली (बथुआ भेद), पालक (पालङ्क्य) और बथुआ (वास्तूक)

आदि हैं। ये मूत्र व मल की प्रवृत्ति करने वाली, क्षारयुक्त, मधुर, वात व कफ स्वल्प करने वाली तथा रक्त-पित्तनाशक मानी गई हैं।

इनमें भी चौलाई, जिसको चन्दलोई भी कहा जाता है का शाक रस और विपाक में मधुर, रक्त-पित्त व मदनाशक, रूक्ष व विषनाशक है। पोई का शाक विपाक व रस में मधुर, वृष्य, वात, पित्त व मदनाशक, दस्तावर, स्निग्ध, बलवर्द्धक, कफकारक और ठण्डा होता है। बथुआ, जिसको वथवो, मूँगवाथलो भी कहा जाता है, का शाक विपाक में कटु (चरपरी) कृमिनाशक, मेधा, अग्नि व बल को बढ़ाने वाली, क्षारयुक्त, सर्वदोषनाशक, रुचिवर्द्धक और दस्तावर होती है। चिल्ली की शाक भी गुणों में बथुआ के समान है। पालक शाक चौलाई की तरह गुणकारी है लेकिन वातजनक, विष्ठा और मूत्र को बाँधने वाली, रूक्ष तथा पित्त व कफ के रोगों में हितकारी है। मेथी की शाक रूक्ष है तथा मल-मूत्र व वायु का निरोध करती है।

प्राचीनकाल में प्रयुक्त होने वाली अन्य शाकों में मण्डूकपर्णी, सप्तला, सुनिषण्णक (चौपतिया), सुवर्चला (हुलहुल), गिलोय, गोजिह्वा (वनगोभी), मकोय, प्रपुन्नाड (पुंफाड़िया, चक्रमर्द), अवल्गुज (वाकुची), सतीन (मटर भेद), बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, पटोल, बैंगन, करेला, कुटकी, केबुक, उरुबक (रक्तैरण्ड), पित्तपापड़ा, चिरायता, ककोड़ा, नीम, तरोई, वेंत की कोपल, अडूसा, अर्कपुष्पी आदि भी थीं। सामान्यतया ये शाकें रक्त-पित्तनाशक, हृद्य तथा लघु होती हैं और कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, श्वास व अरोचक को नष्ट करती हैं।

इनमें से सुश्रुत ने मण्डूकपर्णी की शाक को कषाय, पित्तरोग में लाभकर, विपाक व रस में मधुर, शीतल और हल्की बताया है। गोजिह्वा (गाजुंआ) का शाक भी उक्त शाक के समान गुण वाला कहा है। चौपतिया का शाक दाह नहीं करने वाला, त्रिदोषनाशक तथा दस्त को बाँधने वाला है। बाकुची का शाक विपाक में कटु, रस में तिक्त तथा पित्त और कफ को नष्ट करता है। सतीन (मटर भेद) शाक कुछ तिक्त, त्रिदोषनाशक और कटु होती है। वह न अधिक उष्ण और न अधिक ठण्डी बल्कि कुष्ठनाशक होती है। मकोय का शाक भी इन्हीं गुणों के समान है। बड़ी व छोटी कटेरी के फल खाज, कुष्ठ, कृमि, कफ व वात को नष्ट करने वाले तथा कटु, तिक्त और लघु माने गए हैं। पटोल पत्र कफ-पित्तनाशक, व्रण के लिए हितकर, उष्ण, तिक्त और वात नहीं करने वाले, विपाक में कटु, वृष्य, रुचिकारक व अग्निदीपक होते हैं।

बैंगन का शाक कफ-वातनाशक, तिक्त, रोचक, कटु, लघु और अग्निदीपक होता है। जीर्ण बैंगन कुछ क्षारयुक्त तथा पित्तजनक माना जाता है। ककोड़े व करेले भी बैंगन के समान ही गुणकारी होते हैं। अडूसा, वेंत के अग्रभाग, गिलोय, पित्तपापड़ा और चिरायता- ये रस में तिक्त होते हैं और पित्त व कफ को नष्ट करते हैं। वरुण व पंवाड़ की सब्जी

कफनाशक, रूक्ष, हल्की, शीतल व वात-पित्त प्रकोपक होती है। कालशाक अग्निदीपक, गरदोषनाशक लेकिन कटु होती है। कुसुम्भशाक मधुर, रूक्ष, उष्ण, कफनाशक और लघु होती है। नाडीशाक वातजनक, पित्तनाशक तथा मधुर होती है। चांगेरी का शाक ग्रहणी तथा अर्श का नाशक, अम्ल, वात एवं कफ के लिए हितकारी, उष्ण, कषाय, मधुर और अग्निदीपक है।

इनके अतिरिक्त लोणिका, जातुक (सफेद शालपर्णी), त्रिपर्णिका (वनकार्पासी या दुग्धिका), पत्तूर, जीवक, सुवर्चला, डुडुरक, कुतुम्बक, कुठिंजर, कुन्तलिका (नील पियाबाँसा), कुरण्टिका (पीला पियाबाँसा) आदि शाकें भी अति प्राचीनकाल में आहार व्यवहार में रही हैं। ये सभी रस व विपाक में मधुर, शीतल, कफनाशक, अधिक पित्त नहीं बढ़ाने वाली, अनुरस में लवण, रूक्ष, क्षारयुक्त, वातकारक व दस्तावर होती हैं।

इनमें भी कुन्तलिका शाक के लिए कहा गया है कि वह मधुर व तिक्त है। कुरण्टिका कसैली होती है। राजक्षवक शाक दस्त को बाँधने वाली, शीतल, लघु तथा त्रिदोषनाशक होती है। इसी के समान शटीशाक है। हरिमन्थ (चने) की शाक रस व विपाक में मधुर तथा पचने में कठोर होती है। कलाय शाक दस्तावर, मधुर, रूक्ष तथा वायु को बढ़ाने वाली है। पूतिकरंज पत्र शाक दस्तावर, विपाक में कटु, लघु, वात-कफ नाशक, शोथहर तथा वीर्य में उष्ण होती है।

उक्त शाकों के अन्त में ताम्बूल (पान) के सेवन का निर्देश उल्लेखनीय माना जा सकता है। यह कहा गया है कि ताम्बूलपत्र तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, पित्त प्रकोपक, विशद, तिक्त, स्वरहितकारी, वात-कफनाशक, दस्तावर, विपाक में कटु, कषाय एवं पाचकाग्नि प्रदीपक है। यह मुख की खुजली, मल, पसीना और दौर्गन्ध्य को नष्ट करता है- ताम्बूलपत्रं तीक्ष्णोष्णं कटु पित्त प्रकोपणम्। सुगन्धि, विशदं तिक्तं स्वयं वातकफापहम्॥ स्रंसनं कटुकं पाके कषायं वह्निदीपनम्। वक्त्रकण्डूमलक्लेद दौर्गन्ध्यादि विशोधनम्॥

—(सुश्रुत. सूत्र. 46, 279-280)

पुष्पोपयोग की धारणा

प्राचीनकाल में पुष्पों का उपयोग अनेक रूप में किया जाता था। कुछ फूल आहार के लिए भी ग्रहण किए जाते रहे हैं। यह धारणा प्रचलित रही कि पुष्प, पत्र, फल, नाल और कन्द- ये शाक उत्तरोत्तर एक दूसरे से गुरु होते हैं- पुत्रं पत्रं फलं नालं कन्दाश्च गुरवः क्रमात्। सुश्रुत ने कचनार, शण और सेमल के पुष्पों को प्रथमतः गिना और कहा कि ये स्वाद में मधुर तथा विपाक में भी मधुर होते हैं। ये रक्तपित्तनाशक भी हैं। अडूसा और अगस्त्य के पुष्प तिक्त, विपाक में कटु और क्षय व कास के नाशक होते हैं। यह भी कहा है कि अगस्त्य के पुष्प ने तो अधिक उष्ण और न ही अधिक शीतल होते हैं। ये रतौंधी रोग में प्रशस्त होते हैं।

इसी प्रकार रक्तवृक्ष (वन्धूक), नीम, मोखा (मुष्कक), आक, असन तथा कुटज के पुष्प कफ-पित्तनाशक और कुष्ठघ्न होते हैं। कमल पुष्प तिक्त, मधुर, शीतल व कफ-पित्त नष्ट करते हैं। कुमुद पुष्प मधुर, पिच्छल, स्निग्ध, आह्लादजनक और ठण्डा होता है। कुवलय तथा उत्पल पुष्प कुमुद के गुणों की अपेक्षा कम होते हैं। सिन्धुवार (निर्गुण्डी) के पुष्प ठंडे तथा पित्तनाशक होते हैं। मालती (चमेली) और मल्लिका के पुष्प तिक्त होते हैं एवं सुगन्धियुक्त होने से पित्तनाशक होते हैं। मौलसिरी और पाटला के पुष्प सुगन्धयुक्त, विशद और हृद्य होते हैं। नाग (चम्पा अथवा नागकेशर) के पुष्प रक्त-पित्तनाशक, समशीतोष्ण और कफशामक होते हैं। पलाशपुष्प कफ व पित्त को नष्ट करते हैं। कुरण्टक के पुष्प भी इसी के समान गुणकारी होते हैं। लाल सहजन की कोंपले कटु होती हैं और पित्त को नष्ट करती हैं। सुश्रुत ने पुष्पवर्ग में यह स्पष्टीकरण दिया है कि जिन वृक्षों के पुष्पों के गुणों का उल्लेख नहीं किया गया, उनको उनके वृक्षों के गुणों के अनुसार ही समझना होगा तथा अन्य जो काँटे, पत्र, अवरोह आदि होते हैं, उनके गुण भी उनके वृक्षों के अनुरूप ही होंगे।

इसके अतिरिक्त क्षवक (छत्रक, मशरूम), कुलेवर तथा वंश, करीर आदि पुष्पों को कफनाशक व मल-मूत्र का प्रवर्तक माना गया है। इनमें छत्रक कृमिजनक, विपाक में मधुर, पिच्छल, कफादि का स्राव करने वाला, वातजनक तथा अधिक पित्त व कफ को नहीं करने वाला है। बाँस के अंकुर कफवर्द्धक, रस व विपाक में मधुर, विदाहजनक, वातकारक, कषाय तथा रूक्ष होते हैं- उद्भिदानि पलालेक्षुकरीषवेणुक्षितिजानि। तत्र पलालजातं मधुरं मधुरविपाकं रूक्षं दोषप्रशमनं च। इक्षुजं मधुरं कषायानुरसं कटुकं शीतलं च। तद्वदेवोष्णं कारीषं कषाय वातकोपनं च। वेणुजातं कषायं वातकोपनं च। भूमिजं गुरु नातिवातलं भूमितश्चास्यानुरसः। *(पूर्वोक्त 46, 293)*

इसी क्रम में सुश्रुत ने छत्रकों की उत्पत्ति स्थल के अनुसार मिलने वाले गुणों का अध्ययन प्रस्तुत किया है और उन्हीं अनुसार उनके नामादि निर्धारित किए हैं-

(अ.) उद्भिद क्षवकः भूमि या अन्य किसी वस्तु को फोड़कर उत्पन्न होने वाले छत्रक निम्न होते हैं।

(आ.) पलाल क्षवक : पुआल पर उत्पन्न होने वाले छत्रक। ये क्षुप रस और विपाक में मधुर, रूक्ष व दोषशामक होते हैं।

(इ.) इक्षु क्षवक : गन्ने के रस निकालने के बाद बचे छिलकों पर उत्पन्न होने वाले छत्रकादि क्षुप मधुर, अनुरस में कषाय, कटु और शीतल होते हैं।

(ई.) करीष : गोबर की खाद या सूखे हुए गोबर पर पैदा होने वाले छत्रक क्षुप उक्त इक्षु क्षवक की तरह ही होते हैं लेकिन उष्ण, कषाय और वातल होते हैं।

(उ.) बाँस क्षवक : बाँसों में या उनके ढेर में होने वाले छत्रक कषाय व वात प्रकोपक माने जाते हैं।

(ऊ.) क्षिति क्षवक : भूमि विदीर्णकर उत्पन्न होने वाले छत्रक पचने में भारी, अधिक वायु नहीं करने वाले और भूमि के अनुसार इसके अनुरस और गुण मिलते हैं।

आहार की दृष्टि से पिण्याक (सरसों, अलसी आदि की तैयार खल), तिलकल्क (तिलों की खल, कानिया, गजक), स्थूणिका (तिलकल्क से तैयार बड़े) तथा सूखी हुई शाकें समस्त दोषों को प्रकुपित करती हैं। सभी प्रकार के वड़े (वटाक) विष्टम्भजनक तथा वायु को कुपित करते हैं और पकौड़ी (सिण्डाकी) वातजनक होती है। आर्द्र या ताजा पकौड़ी वातजनक, रुचिकारक व अग्नि को दीप्त करती हैं।

सुश्रुत यह भी स्पष्टीकरण है कि समस्त प्रकार के स्वादिष्ट शाक दस्तावर, पचने में भारी, रूक्ष, प्रायः विष्टम्भकारक, दुर्जर तथा कुछ कषाय रसयुक्त माने जाते हैं- विड्भेदि गुरु रूक्षञ्च प्रायो विष्टम्भि दुर्जरम्। सकषायं च सर्वं हि स्वादु शाकमुदाहृतम्। *(पूर्वोक्त 46, 296)* ऐसी निन्दा अन्य ग्रन्थों में भी की गई है- शाकेषु सर्वेषु वसन्ति रोगाः। तथापि, शाक कुछ गुण वाली तो होती ही हैं। आधुनिक वनस्पति विज्ञानियों का मत है कि प्रायः शाकों में प्रोटीन और मेद अत्यल्प होते हैं। इनमें खनिज क्षार पाए जाते हैं जो कि शरीर में उत्पन्न अम्लों को निवीर्य कर रक्ष की क्षारीयता यथारूप रखते हैं। रक्तक्षारीयता के कम होने से अम्लरक्तता रोग हो जाता है। शाकें आन्त्रगति को बढ़ाकर मल की प्रवृत्ति करती हैं। ऐसे में शाक विबन्धकारक होती हैं। पोटेशियम के लवण होने से मूत्रल गुण होता है। इसी कारण ये अश्मरी या पथरी में भी हितकर हैं। शाकों में विटामीन सी अधिक होता है। इनमें कार्बोहाइड्रेट कम होने से मधुमेह के रोगी को भी दे सकते हैं। शाकों से अन्न की रुचि बढ़ती हैं।

कन्द : कितने लाभदायक

वनस्पति उत्पादों में कन्द का महत्व भी कम नहीं है। चरक, वाग्भट, गरुडपुराण आदि ग्रन्थों में कन्दों के विवरण उपलब्ध हैं। इनमें विदारीकन्द, शतावर, बिस (पद्मजड़), मृणाल (कमल की नाल), सिंघाड़ा (शृंगाटक), कशेरू, पिण्डालुक, मध्वालुक, हस्त्यालुक, काष्ठालुक, रक्तालुक (रतालु), इन्दीवर (नीलकमल), उत्पल (श्वेत या लाल कमल) आदि के कन्द ज्ञातव्य है। ये समस्त कन्द रक्त-पित्तनाशक, शीतल, मधुर, पचने में भारी, वीर्य को अधिक बढ़ाने वाले तथा दुग्धवृद्धिकारक माने जाते हैं। इन कन्दों के गुणादि इस प्रकार ज्ञेय है-

विदारीकन्द : यह मधुर, बृंहण, वृष्य, शीत, स्वरहितकारक, बलवर्द्धक तथा पित्त व वात का नाशक है।

शतावर : वात और पित्त की नाशक, वृष्य, मधुर व तिक्त होती है। इसमें भी बड़ी शतावर हृदय के लिए हितकारी, मेधा, पाचकाग्नि व बल को बढ़ाने वाली, संग्रहणी तथा अर्श की नाशक, वृष्य, शीतल तथा रसायन होती है। शतावर के अंकुर कफ और पित्त के नाशक तथा तिक्त होते हैं।

बिस : विदाह नहीं करने वाला, रक्त-पित्त का प्रसादक, विष्टम्भकारक, पचने में कठिन, रूक्ष, स्वारहीन तथा वातजनक होता है।

सिंघाड़े और कशेरू : पचने में भारी, विष्टम्भकारक और शीतल होते हैं।।

पिण्डालुक : कफजनक, भारी और वात-पित्त का प्रकोपक होता है।

सुरेन्द्रकन्द (जंगली सूरण) : कफनाशक, विपाक में कटु और पित्तकारक है।

बाँस के करीर : भारी तथा कफ एवं वायु के प्रकोपक होते हैं।

अन्य कन्दों में स्थूलकन्द, सूरणकन्द, माणकन्द आदि कुछ कषाय, कटु, रूक्ष, विष्टम्भकारक, पचने में भारी, कफ और वायु को बढ़ाने वाले तथा पित्तनाशक होते हैं। इनमें माणकन्द मधुर व शीतल लेकिन गुरु होता है। स्थूलकन्द ज्यादा उष्ण नहीं होता तथा सूरणकन्द अर्शनाशक होता है। वाराहकन्द कफनाशक, रस व विपाक में कटु होता है तथा प्रमेह, कुष्ठ व कृमियों का नाशक, बलवर्द्धक, वृष्य तथा रसायन माना जाता है। कुमुद, उत्पल और पद्म के कन्द वात को प्रकुपित करने वाले, रस में कषाय, पित्त के शामक, विपाक में मधुर तथा शीतल होते हैं। ताड़ नारियल तथा खर्जूर आदि वृक्षों के शीर्षों की मज्जा (गिरी) रस और विपाक में मधुर, रक्त-पित्तनाशक तथा शुक्रवर्द्धक, वातनाशक व कफवृद्धिकारक होती हैं।

सुश्रुत ने यह भी कहा है कि आहार योग्य धान्यों में साठी चावल, जौ, गेहूँ, रक्तशालि, मूँग, अरहर और मसूर श्रेष्ठ होते हैं- षष्टिका यवगोधूमा लोहिता ये च शालयः। मुद्गाढकीमसूराश्च धान्येषु प्रवराः स्मृताः॥ *(सुश्रुत. सूत्र. 46, 334)* एक साल पुराना धान्य (परिसंवत्सरं धान्यं) उचित माना जाता है।

फलवर्ग में अनार, आँवला, दाख, खजूर, फालसा, खिरणी और बिजोरा नींबू श्रेष्ठ होते हैं। शाकवर्ग में सतीन (मटर), बथुआ, चुच्चू, चिल्ली, कोमल मूली, मण्डूकपर्णी और जीवन्ती श्रेष्ठ होती है। इनमें भी अम्लीय पदार्थों में आंवला व अनार, कटु (चरपरे) पदार्थों में पीपल और सोंठ श्रेष्ठ होती है। तिक्त पदार्थों में परवल व बैंगन, कषाय द्रव्यों में सुपाड़ी व फालसे श्रेष्ठ होते हैं। मीठे द्रव्यों में गन्ने से बनी शर्करा श्रेष्ठ होती है। अपर्युषित या ताजा तथा मसाले डालकर संस्कृत किया हुआ और उचित मात्रा में सेवित तथा पथ्यकर अन्न श्रेष्ठ होता है। फलों में पके हुए फल, शाकों में हरी, तरुण और ताजी शाकें श्रेष्ठ होती हैं- अपर्युषितमन्नं तु संस्कृतं मात्रया शुभम्। फलं पर्यागतं शाकमशुष्कं तरुणं नवम्॥

—(उपर्युक्त 46, 341)

तैयार किया गया आहार

प्राकृतिक उत्पादों को संस्कारित कर तैयार किए गए आहार को कृतान्न कहा जाता है। इसको पारिभाषिक तौर पर सिद्ध और ओदन नाम से भी कहा गया है। इसके गुणों पर प्रथमतः विचार होने के मूल में धारणा यह है कि जो भी आहार ग्रहण किया जाए, वह

गुणकारी होना चाहिए। सुश्रुत से लेकर भावप्रकाश तक इसी बात पर जोर दिया गया है। नलकृत भोजनकूतुहल, पाकराजराजेश्वर, चर्याचन्द्रोदय, पाकसंग्रह, मानसोल्लास इत्याादि पाकविधिमूलक ग्रन्थों और आयुर्वेदिक संहिताओं में कृतान्न पर विचार हुआ है।

सुश्रुतादि ने (क.) मण्ड, (ख.) पेया, (ग.) विलेपी और (घ.) यवागू- चार पदार्थों पर विचार किया है। कहा गया है- अन्नं पञ्चगुणे साध्यं विलेपी तु चतुर्गुणे। मण्डश्चतुर्दशगुणे यवागूः षड्गुणेऽम्भसि॥ चरक और वाग्भट ने यवागू को मण्डादि से अलग मानकर मण्ड, पेया और विलेपी को यवागू का ही भेद स्वीकार किया है। वाग्भट ने कृतान्न के मण्ड, पेया और विलेपी भेद का ही वर्णन किया है। यवागू का नाम तक नहीं लिया और गुणों में इनको लघु कहा है- मण्डपेयाविलेपीनामोदनस्य च लाघवम्।

सुश्रुतसंहिता में इनकी परिभाषा के रूप में कहा है कि चावलों के सिक्थ (कण) से रहित पदार्थ मण्ड कहा जाता है। पेया सिक्थ (तण्डुल कण) से समन्वित होती है। विलेपी- यवागू अधिक सिक्थ से युक्त एवं अल्प द्रव (गाढ़ी) होती है- सिक्थैर्विरहितो मण्डः पेया सिक्थसमन्विता। विलेपी बहुसिक्था स्याद् यवागूर्विरलद्रवा।। *—(सूत्र. 46, 347)*

मण्डादि के लिए शार्ङ्गधर ने कहा है- चार पल प्रमाण चावल लें और चौदह पल प्रमाण पानी। उसको पकाए तो मण्ड (माण्ड) तैयार होता है जो आहार में मधुर और हलका होता है। चौदह गुण जल से अच्छी तरह सिद्ध होकर यह मण्ड तैयार होता है। इसमें लाजा अथवा चावल भप जाते हैं और तैयार कणरहित पदार्थ मण्ड कहा जाता है- जले चतुर्दशपले तण्डुलानां चतुःपलम्। विपचेत् स्रावयेन्मण्डं स भक्तो मधुरो लघुः। नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मण्डस्त्वसिक्थकः। लाजैर्वा तण्डुलैर्घृभृष्टैर्लाज मण्डः प्रकीर्तितः॥

सुश्रुत के काल में पिप्पली और सोंठ के चूर्ण को बुरकाकर बनाए गए मण्ड को लाजमण्ड कहा जाता था। यह पथ्य, पाचक, दीपक, वातानुलोमक तथा हृद्य होता है। पेया को स्वेद तथा पाचकाग्निजनक, लघु, दीपक तथा मूत्रविशोधक एवं भूख, प्यास, थकावट और मन की ग्लानि की नाशक तथा वातानुलोमक कहा गया है। विलेपी को तृप्तिजनक, हृद्य, दस्त को बाँधने वाली, बलवर्द्धक तथा पथ्य, मधुर, रसयुक्त, हलकी, अग्निदीपक तथा क्षुधा व प्यास की नाशक, बस्ति की शोधक, वृष्य तथा ज्वर व अतिसार में हितकर कहा है। शाक, मांस व फलों से युक्त उक्त मण्डादि यवागू पचने में कठिन होती है।

भावप्रकाश निघण्टु में तीन प्रकार के मण्ड बताए गए हैं- मण्डस्तु त्रिविधो ज्ञेय एकद्वित्रि परिस्रुतः। लाजैरर्भृष्टश्च तण्डुलैः परिसंस्कृतः॥ पेया के लिए कहा गया है- चतुर्दशगुणे नीरे रक्तशाल्यादिभिः कृता। द्रवाधिका स्वल्पसिक्था पेया प्रोक्ता भिषग्वरैः। विलेपी के लिए कहा है- चतुर्गुणाम्बुसंसिद्धा विलेपी घनसिक्थका। पृथग्द्रवेण रहिता ख्याता शिथिलभक्तिका॥ *—(सुश्रुतसंहिता : सम्पादक- अम्बिकादत्त शास्त्री, चौखम्बा, वाराणसी, 2018 ई. पृष्ठ 271)*

ओदन जो दुग्ध में पकाया गया हो (खीर), को विष्टम्भकारक, बलवर्द्धक, मेदा व कफ को बढ़ाने वाला तथा गुरु कहा गया है। तिल, चावल, उड़द और मूँग की बनी कृशरा (खिचड़ी) कफ व पित्तकारक, बलवर्द्धक तथा वातनाशक होती है। धोने के बाद साफ-शुद्ध सुगन्धित चावलों का ठीक पका हुआ एवं माण्ड निकाला हुआ तथा गरम व विशद (चिकनाई रहित) ओदन (भात) लघु होता है लेकिन बिना धोये हुए चावलों का भात जिसमें से मांड न निकाला हो और जिसे अच्छा न उबाला गया हो व जो ठण्डा हो गया हो, ऐसा ओदन पचने में भारी होता है। भाड में भूने हुए चावल (भृष्टतण्डुल) अथवा तुषसहित पकाके कूटकर निकाले हुए (भुजिया) चावलों का भात पचने में हलका, सुगन्धयुक्त एवं कफहर होता है। घृतादि स्नेह, मांसरस, फल, कन्द, मूँग आदि की दाल, अम्लीय पदार्थ तथा दुग्ध के साथ पकाए हुए चावल पचने में भारी, बृंहण तथा बलकर होते हैं। छिलकों से रहित तथा कुछ भूनकर और फिर उबालकर तैयार की गई दाल पचने में हलकी व हितकर होती है। पहले उबाले के बाद निचोड़कर घृतादि स्नेह व मसालों से छोंककर बनाई हुई शाक हितकारी होती है लेकिन बिना उबाली, बिना निचोड़ी हुई तथा घृतादि संस्कार-छोंक से रहित शाकें सर्वथा अहितकर होती हैं।

मसालों द्वारा संस्कृत (कृत) तथा असंस्कृत मुद्गयूष को कफनाशक, अग्दीपक तथा हृद्य माना गया है व वमन-विरेचनादि से शुद्ध हुए व्यक्ति व व्रणियों के लिए बहुत पथ्य होता है। यूष के लिए विधि भावप्रकाश में आई है जिसमें 18 गुणा पानी लिया जाता है और शिम्बीधान्य को उबाला जाता है- अष्टादशगुणे नीरे शिम्बीधान्यश्रृतो रसः। विरलान्नो घनः किञ्चित् पेयातो यूष उच्चते॥ मुद्गयूष में अनार का रस तथा पीसे हुए मुनक्का का रस या कल्क मिलाया जाए तो उसको रागषाडव कहा जाता है। यह रोचक, पाक में लघु और वातादि दोषों का परस्पर अविरोधी माना जाता है। मसूर, मूँग, गेहूँ और कुलथी का अलग-अलग तैयार लवणयुक्त यूष कफ तथा पित्त का अविरोधी और वातव्याधि में उपयोगी होता है। इन्हीं यूषों में यदि दाख का रस या कल्क तथा अनार का रस मिलाया जाए तो वात रोगों से पीड़ित रोगी के लिए हितावह होता है। यह रोचक, अग्निदीपक, हृद्य और पचने में हलका होता है। पटोल व निम्ब के यूष कफ और मेदा का शोषण करने वाले होते हैं। वे पित्तनाशक, अग्निदीपक, हृदय के लिए हितकारी एवं कृमि, कुष्ठ तथा ज्वर के नाशक हैं। मूली का यूष श्वास, कास, प्रतिश्याय (पुराना जुकाम), लालादि का स्राव, अरुचि, ज्वर, कफजन्य रोग, मेदोरोग तथा गले के रोगों का नाश करता है। कुलथी का यूष वातनाशक, श्वास व पीनस रोगहर, तूणी, प्रतितूणी (दोनों वात रोग), कास, अर्श, गुल्म तथा उदावर्त को नष्ट करता है।

इसी प्रकार अनार व आंवलों के साथ बनाया गया मुद्गादि का यूष हृद्य, दोषों का संशामक, पचने में हल्का, प्राण तथा पाचकाग्नि का जनक व मूर्च्छा, मेदोरोग, पित्तरोग व

वातरोगनाशक होता है। मूँग व आंवले का यूष दस्त को बाँधने वाला व पित्त-कफ रोग में हितावह है। जौ, कोल (बेर) तथा कुलथी का मिलाजुला या अलग-अलग बनाया हुआ यूष कण्ठ के लिए हितकारी व वातरोगों का नाशक है। अन्य सभी प्रकार के धान्यों से तैयार यूष बृंहण तथा प्राणशक्ति का वर्द्धक माना जाता है। ऐसे ही खड और काम्बिक यूष हृद्य तथा वात व कफ रोगों में हितकर है। दही का पानी तथा अन्य खटाई से सिद्ध किया हुआ यूष काम्बलिका कहलाता है। दाड़िम के रस से खट्टा किया हुआ यूष बलवर्धक व कफ-वातनाशक होता है। अग्नि को प्रदीप्त करता है। दही से खट्टा किया हुआ यूष कफकारक, बलवर्द्धक, स्निग्ध, वात का नाशक व पचने में भारी होता है। छाछ की खटाई वाला यूष पित्तजनक तथा विष व रक्त का प्रकोपक सिद्ध होता है। वैद्य के वचन से खडयूष, खडयवागू, षाडव, पानक आदि तैयार किए जाते हैं, इनको यदि स्नेह, लवण और कटुक पदार्थों के बिना बनाए जाएँ तो वे अकृत कहलाते हैं तथा लवणादि से संस्कृत कर बनाए जाएँ तो कृत कहलाते हैं।

तिल की खल से बने हुए अनेक पदार्थ, सूखे हुए शाक, अधिक अंकुरित धान्य और सिण्डाकी (पकौड़ी)- ये सब पचने में भारी और कफ-पित्त को उत्पादित करने वाले हैं। वटक या बड़े भी पकौड़ी के समान ही होते हैं लेकिन विदाहजनक और भारी होते हैं।

यह भी कहा गया है कि पूर्वोक्त रागषाडव पचने में लघु, बलजनक, वृष्य, हृद्य, रोचक, पाचकाग्नि प्रदीपक होते हैं। ये प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, वमन और थकावट को दूर करते हैं। रसाला (शिखरणी) बृंहणी, बलकरी, स्निग्ध, वृष्य व रुचिकारी होती है। गुड़ मिश्रित दही शरीर में स्नेहन करने वाला, हृद्य तथा वातनाशक होता है।

मन्थ नामक कृतान्न के लिए कहा गया है कि घृत मिलाए हुए तथा ठण्डे पानी से साने हुए, न अधिक पतले और न ही अधिक गाढ़े सत्तुओं को मन्थ नाम से जाना जाता है। यह तुरन्त बलवर्द्धक और प्यास व थकान को दूर करने वाला है। खटाई, स्नेह तथा गुड़ से युक्त मन्थ मूत्रकृच्छ्र और उदावर्त को नष्ट करता है। शर्करा, ऊख का रस तथा द्राक्षा से युक्त मन्थ पित्तविकार को नष्ट करता है। द्राक्षा तथा महुए के फूलों से युक्त मन्थ कफरोग का नाशक है। इन तीनों (अम्ल सहित स्नेह, गुड़, द्राक्षा, ईख, मधूक) से युक्त मन्थ मल व दोषों का अनुलोमन करने वाला है।

जिन पदार्थों का पान किया जाता है, वे पानक कहे जाते हैं। गुड़ से बनाया हुआ पानक खटाई से युक्त या रहित हो तो पचने में भारी और मूत्रजनक होता है। गुड़ के पानक में खण्ड (मिश्री), किसमिस, शर्करा, अम्लद्रव्य, मरिचादि तीक्ष्ण पदार्थ व कपूर आदि मिला दिए जाने पर वह दोषरहित हो जाता है। मृद्वीका (किसमिस, मुनक्का अथवा अंगूर) का पानक थकावट को दूर करता है। वह मूर्च्छा, दाह व प्यास का नाशक होता है।

फालसे और बैरों का पानक हृद्य व विष्टम्भजनक होता है। इनके उपयोग में अलग-अलग प्रकार के द्रव्यों के संयोग व संस्कारों का विचार कर पानकों की मात्रा तथा यथायोग्य गुरु व लघु का ज्ञान अवश्य रखना चाहिए।

इसी क्रम में भक्ष्यवर्ग के अन्तर्गत रस, वीर्य और विपाक की दृष्टि से बनाकर खाने योग्य पदार्थ विचारणीय हैं। यह वर्णन प्राचीन काल में व्यंजनों के निर्माण और उनके उपयोग की जानकारी भी देता है। आहार विज्ञान के अध्ययन में ये जानकारियाँ रोचक हैं। यह रोचक है कि सुश्रुत के काल में दूध या खोये से तैयार पदार्थ (भक्ष्याः क्षीरकृता) बहुत प्रचलन में थे। इनमें से घेवर (घृतपूराः), गुड़ से बने भक्ष्य (गौडिका), मधुमस्तक (मधुशीर्षक), संयाव (हलुवा), पूप (मालपुए), सट्टक (श्रीखण्ड जैसा व्यंजन), मोदक (लड्डू), विष्यन्दन, सामित (गेहूँ के आटे के बने सभी पदार्थ), फेनक (फीणी), वेसवार (मूँग आदि से परिपूर्ण पदार्थ), पलल (तिल चूर्ण वाले पदार्थ), पिष्टक (चावलों के आटे से बने पदार्थ), वैदला (दालों से बने हुए पदार्थ), कूर्चिका (दूध के फटे हुए घन भाग से बने पदार्थ), विरूढ (अंकुरित धान्यों को पीसकर बनाए पदार्थ) आदि के गुणधर्म पर प्राथमिकता से विचार किया गया है।

इनमें कुछ पुराने व्यंजनों का गुणधर्म सहित परिचय इस प्रकार है-

खोये के व्यंजन : दूध से बनाए गए पदार्थ बलवर्द्धक, वृष्य, हृद्य, सुगन्धित, दाह नहीं करने वाले, शरीर पुष्टिकर, पाचकाग्निदीपक और पित्तनाशक होते हैं।

घृतपूर : घेवर प्राणशक्ति को बढ़ाने वाले, हृद्य, कफजनक, वात-पित्तनाशक, वृष्य, पचने में भारी तथा रक्त-माँसवर्द्धक होते हैं। इस व्यंजन के लिए कहा गया है कि गेहूँ के चूर्ण को दूध, नारियल, सितादि मिलाकर अच्छी तरह मथें और फिर घी में तल लेना चाहिए। बनने वाला व्यंजन घेवर होता है- मर्दितां समितां क्षीरनारिकेरसितादिभिः। अवगाह्य घृते पक्वो घृतपूरोऽयमुच्यते। यह भी कहा गया है कि गेहूँ के बारीक और साफ आटे को घी डालकर पिण्ड बँधने जैसा बनाएँ और फिर दूध मिलाकर गूंथे। उसको खौलते घी में डालकर तलें और फिर जब वे तांबे जैसे रंग वाले हो जाएँ तब खाण्ड की चाशनी में डालकर मीठा करें- गोधूमचूर्णं सूक्ष्मं च स्वच्छं तस्मिन् घृतं क्षिपेत्। यावत्तत् पिण्डतां गच्छेत् पश्चादुग्धे विमर्दयेत्॥ फेनयित्वा द्रवीभूते ततः पात्रे घृतं न्यसेत्। सशब्दे सुघृते तप्ते तस्य धारामपासृजेत्॥ यावच्च व्याप्य तत्पात्रं प्रसरेद् घृतपूरकः। यत्किञ्चित्ताम्रतां याते खण्डपङ्केनिमज्जयेत्॥

गुड़ से तैयार (मालपुए, गुलगुले आदि) पदार्थ : ये बृंहण, पचने में भारी, वातनाशक, अविदाही, पित्तनाशक तथा शुक्र व कफवर्द्धक होते हैं।

मधुशीर्षक : ये दो प्रकार से बनाए जाते हैं। प्रथम प्रकार है- समिता वेष्टिता मध्ये मधु दत्त्वा श्रृता घृते। मधुमस्तकमुद्दिष्टम्। यह भी कहा गया है- मधुतैलघृतैर्मध्ये वेष्टिताः

समिताश्च याः। मधुमस्तकमुद्दिष्टं तस्याख्या परिमार्जनम्।। मधुमस्तक और मधुशीर्षक दोनों को डल्हण ने एक ही कहा है- मधुमस्तका एवं मधुशीर्षका उच्यन्ते इति डल्हण।

नल ने पाकशास्त्र में खाण्ड के संयाव के बारे में कहा है कि गेहूँ के चूर्ण को गुड़ की चाशनी मिलाकर मथे। उसको घी में तलें और केसरवर्ण होने तक पकाएँ। बाद में सुगन्ध में रखें- विमर्द्य समिताचूर्णं मृदुपाकं गुडान्वितम्। घृतावगाहे गुडिकां वृत्तां पक्वां सकेशराम्। सौगन्धिकाधिवासां च कुर्यात् पूपलिकां बुधः। स एव खण्डसंयावः। यदि उसको श्वेत-ताम्र रूप में तल दिया जाए तो मधुशीर्षक होगा- सिताम्रातमपूरितः। भातुङ्गत्वचा चैव वेष्टितो मधुशीर्षकः॥

संयाव : इस व्यंजन के लिए कहा है- संयावस्तु घृतक्षीरगुडगोधूमपाकजः। समितां घृतदुग्धेन मोदयित्वा सुशोभनम्॥ पचेद् घृतोत्तरे खण्डे क्षिपेद् भाण्डे नवे ततः। संयावोऽसौ युतश्चूर्णैः खण्डैलामरिचार्द्रकैः॥ संयाव तथा मालपुए विशेषरूप से पचने में भारी तथा बृंहण होते हैं। मोदक (बेसन, आटे, मूँग के लड्डू) पचने में कठिन होते हैं।

सट्टक : श्रीखण्ड के समान बनने वाले इस पदार्थ के लिए कहा गया है कि यह रोचक, दीपक, स्वरवर्द्धक, पित्तशामक, वातनाशक, पचने में भारी, अत्यन्त मीठा और प्राणशक्ति का वर्द्धक होता है। सट्टक के लक्षण हैं- लवङ्गव्योषखण्डेस्तु दधि निर्मथ्य गालितम्। पक्वं दाडिमसंयुक्तं चन्द्रचूर्णावचूर्णितम्। सट्टकं पाचका आहुः।

विष्यन्दन : आम और गेहूँ के आटे में घी, दूध और गुड़ मिलाएँ, उसको न तो अधिक गाढ़ा और न ही अधिक घना बनाएँ तो उसका नाम विष्यन्दन होगा- आमगोधूम चूर्णञ्च सर्पिःक्षीरगुडान्वितम्। नातिसान्द्रो नातिघनो विष्यन्दो नाम नामतः॥ यह व्यंजन हृद्य, सुगन्धित, मधुर, स्निग्ध, कफजनक, पचने में भारी, वातनाशक, तृप्तिकारक तथा बलवर्द्धक होता है।

सामिता (गेहूँ के आटे के बने पदार्थ) शरीर के लिए पुष्टिकर, वात-पित्तनाशक, बलवर्द्धक, हृद्य तथा अतीव पथ्यकारक होते हैं। उनमें फेनक (फीणी) आदि पदार्थ अधिक हल्के होते हैं। फेनक के लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं- विमर्द्य विमलां शुक्लां समितां नातिशर्कराम्। संवेष्टनाय गर्भार्थं खरपाकं घृते पचेत्। फेनकं फेनसङ्काशं सम्पूर्णशशिसन्निभम्॥

मुद्गादि सेव : मुद्गादि की वेसवार वाले पदार्थ को विष्टम्भजनक कहा गया है।

पलला : तिल चूर्ण से बने हुए पदार्थ पलल कफजनक होते हैं। शष्कुली (पूड़ियाँ) कफ और पित्त उत्पन्न करती हैं। पिष्टक (चावल के आटे) से बने हुए पदार्थ (पैष्टिक) उष्णवीर्य, कफ-पित्तप्रकोपक, विदाहकारक, अधिक बल नहीं देने वाले तथा विशेषकर पचने में भारी होते हैं। इसी प्रकार दालों के भक्ष्य पदार्थ पचने में हल्के, रस में कषाय, वातजनक, विष्टम्भकारक, पित्त को समान रखने वाले, कफनाशक तथा मल का

भेदन करने वाले होते हैं। उड़द के बनाए हुए मोगर आदि भक्ष्य बलवर्द्धक, वृष्य और पचने में भारी होते हैं।

कूर्चिकाविकृत भक्ष्य : दूध के फटे हुए घनभाग से तैयार पदार्थ पचने में भारी तथा अधिक पित्तजनक नहीं होते हैं। विरूढ़ या अंकुरित धान्यों को पीसकर उनसे तैयार भक्ष्य पदार्थ पचने में भारी, वात-पित्तवर्द्धक, विदाह व उत्क्लेश पैदा करने वाले, रूक्ष तथा दृष्टिदूषक होते हैं। घी में बनाए हुए भक्ष्य हृद्य, सुगन्धित, पचने में हल्के, वात-पित्तनाशक, बलवर्द्धक तथा शरीर के रंग और दृष्टि के प्रसादक माने जाते हैं। तेलों से तैयार भक्ष्य पदार्थ विदाहजनक, पचने में भारी, विपाक में कटु तथा गरम प्रकृति के होते हैं। वे वायुनाशक तथा दृष्टिदूषक, पित्तजनक तथा त्वचा के दूषक माने गए हैं।

यह भी ज्ञातव्य है कि फलवर्ग, माँस, इक्षुविकार तथा तिल, उड़द आदि डालकर बनाए गए भक्ष्य पदार्थ बलजनक, पचने में भारी, शरीर पुष्टिकर तथा हृदय को प्रिय लगने वाले होते हैं। तवे पर बनाए हुए पदार्थ पचने लघु तथा वायुप्रकोपक होते हैं। यदि ये ही पदार्थ पर्याप्त रूप से पके तथा पतले हों तो पचने में अत्यन्त हल्के होते हैं।

किलाट भक्ष्य : बिगड़े हुए दूध को यदि ओटाते-ओटाते गाढ़ा करके पिण्डाकार बना लिया जाए तो उसको उसको किलाटक (खरेटा या गिजिरी) कहा जाता है- नष्टदुग्धस्य पक्वस्य पिण्डः प्रोक्तः किलाटकः। (भावप्रकाश : दुग्धवर्ग 29) ऐसे किलाट के बने पदार्थ पचने में भारी तथा कफवर्द्धक होते हैं।

कुल्माष भक्ष्य : आधे गेहूँ और आधे चना आदि को मिलाकर बनाया गया मिश्रण कुल्माष होता है। इसके पदार्थ वायुकारक, रूक्ष, गुरु तथा मल के प्रवर्तक सिद्ध होते हैं।

वाट्य भक्ष्य : भूने हुए जौ आदि से बनाए हुए पदार्थ वाट्य कहे जाते हैं। ये कास, उदावर्त, पीनस तथा प्रमेह को नष्ट करते हैं। धान (भुने हुए जौ) तथा उलुम्ब (होरा, भुने हुए हरे चने) पचने में हल्के तथा कफ व मेदोवृद्धि का शोषण करते हैं।

सत्तू के भक्ष्य : जल में एक दिन भिगोकर और फिर सूखाकर ओखली में खाण्डकर भाड़ में भूने हुए जौ, गेहूँ या चने को चक्की में पीसकर बनाए गए सत्तू शरीर के लिए पुष्टिकारक और वृष्य होते हैं तथा प्यास, पित्त व कफ को नष्ट करते हैं। इन्हें पानी में घोलकर लवण-मरिच मिलाकर या शर्करा डालकर पीने से तुरन्त बल को बढ़ाया जा सकता है। कुछ दस्तावर भी होते हैं तथा वायु को नष्ट करते हैं। सक्तु की बहुत कठिन पिण्डी पचने में भारी तथा मुलायम पिण्डी लघु होती है। सक्तु का अवलेह मुलायम होने से जल्द पच जाता है।

खील : धान की खीलें वमन तथा अतिसार को नियन्त्रित करती हैं। पाचकाग्नि को प्रदीप्त करती हैं। कफ को नष्ट करती हैं तथा बल बढ़ाती हैं। रस में कषाय तथा मधुर होती हैं। पचने में हल्की तथा तृषाशामक व मलनाशक होती हैं। लाजों का सत्तू तृषा, वमन,

दाह तथा धूप की अर्ति (लू लगना आदि) को नष्ट करता है तथा रक्त-पित्त, दाह व ज्वरनाशक होता है।

पृथुका : चिउड़े पचने में भारी, स्निग्ध, बृंहण, कफवर्द्धक तथा बलदायक होते हैं। उनको दूध में भिगोकर शर्करा मिलाकर खाने से वे वात को नष्ट करते हैं और दस्तावर सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार कच्चे चावलों का चूर्ण भग्न सन्धानकर तथा कृमि व प्रमेह को नष्ट करता है। नवीन चावल पचने में कठोर, रस में मधुर होते हैं और पुराने चावल बृंहण, भग्नसन्धानकारक और प्रमेहनाशक होते हैं।

इन भक्ष्य पदार्थों के प्रयोग में पूरी सावधानी रखनी चाहिए। महर्षि सुश्रुत का मत है कि द्रव्यों के संयोग, घी, तैल और मसालों से संस्कार तथा अनेक रूप में बनाए गए विकार (खाद्य पेयादि पदार्थ) के उपयोग में व्यक्ति को अवस्था, रोग, प्रकोप, दोषादि को दृष्टिगत रखना चाहिए। इसी प्रकार भोक्ता की इच्छा का भी ध्यान रखना अपेक्षित होता है- द्रव्यसंयोगसंस्कारविकारान् समवेक्ष्य तु। यथा कारणमासाद्य भोक्तृणां छन्दतोऽपि वा। भक्ष्यादयः प्रकल्प्याः स्युस्तदा सुनिपुणो भिषक्॥ द्रव्यसंयोगसंस्कार विकारान् समवेक्ष्य तु। अनेकद्रव्ययोनित्वाच्छास्त्रतस्तान् विनिर्दिशेत्॥ —*(सुश्रुत. सूत्रस्थान 46, 423)*

सुश्रुतादि में व्यंजनादि भोजन के बाद अनुपानों का वर्णन हुआ है। इसमें अनेक प्रकार के पेय और जलादि का वर्णन है जो वनस्पतियों से भी तैयार किया जाता है और आज तक लोकांचल में व्यवहार में है। कब-कब किस प्रकार के स्वाद वाले अनुपान का प्रयोग करना चाहिए, इसके लिए कहा गया है-

अधिक खट्टे पदार्थों के सेवन से उकताए हुए लोगों को मधुर पदार्थों का सेवन करवाया जाए तो वे प्रसन्न हो जाते हैं। अधिक मीठे पदार्थ खाकर घबराए लोगों को अम्लीय अनुपान करवाने पर वे प्रसन्न हो जाते हैं। फिर, जैसी इच्छा हो, वैसे रसों का पथ्यरूप में प्रयोग करना चाहिए- अम्लेन केचिद्विहता मनुष्यामाधुर्ययोगे प्रणयीभवन्ति। तथाऽम्लयोगे मधुरेण तृप्तास्तेषां यथेष्टं प्रवदन्ति पथ्यम्॥ शीतल जल, गरम जल, आसव, मद्य, यूष, फलाम्ल, धान्याम्ल (काँजी), दूध आदि में से जिसके लिए जो अनुपान उपयुक्त हो, उसको वही यथाप्रमाण दिया जाना चाहिए।

अनुपानों में आकाशीय (आन्तरिक्ष) जल श्रेष्ठ अनुपान माना गया है। प्रायः जन्म से लेकर मरणपर्यन्त इस आन्तरिक जल को प्रशस्त अनुपान समझा जाता है। भल्लातक तथा तुवरक तेल को छोड़कर अन्य सभी प्रकार के स्नेहों के सेवन के बाद उष्ण जल का अनुपान प्रशस्त होता है। कुछ विद्वानों के मत में तेलों के सेवन में पूय तथा अम्ल काँजी का अनुपान उचित होता है। शहद तथा पिष्टान्न खाने के बाद शीतल जल का अनुपान करना चाहिए। दही और दुग्ध से बने पदार्थों के सेवन के बाद और मद्य सेवन, विषाहार तथा पिष्ट निर्मित पदार्थों के सेवन के बाद सुखोदक (कुछ गरम जल) पीना चाहिए।

शालि तथा मुद्गादि खाने वालों के लिए तथा युद्ध लड़ने और मार्ग में चलने वालों तथा धूप, अग्निसन्ताप, विष व मद्य से पीड़ित लोगों को दुग्ध का अनुपान अमृत के समान सिद्ध होता है।

उड़दी आदि गरिष्ठ पदार्थों के खाने पर काँजी अथवा दही के ऊपर के पानी (मस्तु) का अनुपान उचित होता है। दुर्बलों के लिए सुरा व स्थूलों के लिए शहद मिले जल का अनुपान श्रेष्ठ होता है। स्वस्थ लोगों को भोजन के बीच में स्निग्धरूक्षोष्ण मधुरादि अनेकविध अनुपान करवाएँ। वात रोग में स्निग्ध व उष्ण अनुपान, कफ रोगों में रूक्ष तथा उष्ण अनुपान एवं पित्त रोगियों को मधुर तथा शीतल अनुपान प्रशस्त होता है। रक्त-पित्त के रोगियों के लिए दुग्ध तथा गन्ने के रस का अनुपान तथा विषाहार होने पर आक, शेलु (लिसोड़ा) और सिरस के आसवों का अनुपान करवाया जा सकता है।

सर्वदा एक ही प्रकार के रस के सेवन में आसक्त नहीं होना चाहिए। अधिक शाक, कुत्सित अन्न और अम्ल पदार्थ अधिक मात्रा में नहीं खाने चाहिए। एक-एक अथवा समस्त रसों को भी अधिक प्रमाण में हमेशा सेवन नहीं करना चाहिए- न चैकरससेवायां प्रसज्येत कदाचन। शाकावरान्नभूयिष्ठमम्लं च न समाचरेत्।। एकैकशः समस्तान् वा नाध्यश्नीयाद्रसान् सदा॥ *(सुश्रुत. सूत्र. 46, 497)*

आहार विषयक अनेक निर्देश आयुर्वेदिक ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। आहार ग्रहण करने, थाल लगाने, खाद्यान्न परोसने, प्रथम ग्रासादि की विधियों सहित आहार की गति के निश्चय भी महर्षियों ने प्रतिपादित किए हैं।

❖❖❖

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	पृष्ठांक
बीजोत्पत्तिकाण्डे बीजोत्पत्तिसूत्रीयनाम प्रथमोऽध्यायः ॥1॥	
अथाद्यमङ्गलमाह	1
तत्राद्य काले वृक्षविरुधोत्पत्तिप्रसङ्गमाह	1
विश्वलाभार्थे वनस्पतिविषयकसङ्गत्यामाह	1
इत्योपरान्त वृक्षपर्यायमाह	3
बीजोत्पत्तिकाण्डे भूमिवर्गसूत्रीयनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥2॥	
जाङ्गलदेशस्य लक्षणमाह	6
जाङ्गलदेशोत्पन्नवृक्षनामाह	6
तत्र प्रकृत्यादीनां	7
अनूपदेशस्य लक्षणमाह	7
तत्र प्रकृत्यादीनां	8
मिश्रदेशस्य लक्षणमाह	8
तत्र प्रकृत्यादीनां	8
भवन्ति चात्र	8
बीजोत्पत्तिकाण्डे वनवर्गसूत्रीयनाम तृतीयोऽध्यायः ॥3॥	
वनपर्यायाः पराशरोवाच	10
वनस्यलक्षणमाह	10
वननामान्याह	10
चैत्ररथादि वनस्य स्थानमाह	12
बीजोत्पत्तिकाण्डे वृक्षाङ्गसूत्रीयनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥4॥	
वृक्षाङ्गनामाह	14
पञ्चतत्त्वस्य वृक्षस्य जीवनोपरिप्रभावमाह	14
पर्णस्य पर्यायादीनां	15
पर्णस्य विविधाङ्गानि	15
पत्रबन्धनमाह	15
पत्रपक्षमाह	16
वृन्तमाह	16
वृन्तबन्धनमाह	16
सङ्कुलबन्धनमाह	16
पङ्क्तिबन्धनमाह	16
पक्षपङ्क्तिबन्धनमाह	17
व्यत्यासपक्षपङ्क्तिबन्धनमाह	17
पुञ्जबन्धनामाह	17
अराबन्धनमाह	17
कुर्चबन्धनमाह	17
काण्डाक्रान्तपत्रमाह	17
पत्रसिरामाह	18
सिरानिवेशमाह	18
तत्र प्रकृत्यानुसारेण पत्रपक्षमाह	18
रसकोषमाह	19
माढिलक्षयति	19
विस्तारवितानञ्चाह	19
पट्टिकमाह	20
शुङ्गमाह	20
उपपक्षमाह	20
पत्रपक्षरूपभेदाह	20
इत्योपरान्त पत्रगणसङ्ग्रह नामानि	21
ततश्च स्वरूपतः लक्षयति	21
अर्घ्यपत्रः लक्षयति	22
जुहूपत्रः लक्षयति	22
स्रुवपत्रः लक्षयति	22
वृत्तबर्हः लक्षयति	22
मण्डलाग्रपत्रः लक्षयति	22
दीर्घदलः लक्षयति	22

अध्याय	पृष्ठांक
वीरपत्रः लक्षयति	23
बाणबर्हः लक्षयति	23
शङ्कुबर्हः लक्षयति	23
सूचिपर्णीलक्षयति	23
इलिपर्णीलक्षयति	23
कर्णिकाछदः लक्षयति	23
त्रिपर्णः लक्षयति	23
क्रकचछदः लक्षयति	24
वृजिनपत्रः लक्षयति	24
गुच्छपत्रः लक्षयति	24
श्रीपर्णगणीयपत्रः लक्षयति	24
सिम्बिपर्णः लक्षयति	24
युग्मपत्रः लक्षयति	24
बालपत्रः लक्षयति	25
नखपत्रः लक्षयति	25
करछदः लक्षयति	25
मञ्जुबर्हः लक्षयति	25
चीरिपत्रः लक्षयति	25
कारवीदलाः लक्षयति	25
कचपत्रः लक्षयति	26
सूर्पपर्णः लक्षयति	26
विषमपक्षः लक्षयति	26
बलिपर्णः लक्षयति	26
चित्रपर्णः लक्षयति	26
पृश्निपर्णः लक्षयति	26
मण्डुकपर्णीः लक्षयति	26
शुक्तिपर्णः लक्षयति	27
कमठपर्णः लक्षयति	27
गोधापदीपत्रः लक्षयति	27
गोकर्णपत्रः लक्षयति	27
अश्वकर्णीः लक्षयति	27
हस्तिकर्णः लक्षयति	27
हस्तिपर्णिनीः लक्षयति	27
हंसपदीः लक्षयति	27
पारावतपदीः लक्षयति	28
लोमशपत्रः लक्षयति	28
कण्टपत्रः लक्षयति	28
नाडीपत्रः लक्षयति	28
पीवरपत्रः लक्षयति	28
मौञ्जपत्रः लक्षयति	28
अन्यदप्याह	28
उपसंहारमाह	29
बीजोत्पत्तिकाण्डे पुष्पाङ्गसूत्रीयनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥5॥	
पुष्पपर्यायादीनां	30
पुष्पपत्रमाह	30
कुट्मलाह	30
पुष्पाङ्गः लक्षयति	30
पुष्पाणां साधारणलक्षणमाह	30
वल्लरि लक्षयति	31
तत्र पलाशवल्लरि लक्षयति	31
पंक्तिमञ्जरिकाः लक्षयति	31
अरकवल्लरिः लक्षयति	32
छत्राः लक्षयति	32
गुच्छवल्लरिः लक्षयति	32
सङ्कुलायाः लक्षयति	32
ओतुपुच्छिकाः लक्षयति	32
अक्षमञ्जरिकाः लक्षयति	32
द्विविध वल्लरिभेदाह	32
पुष्पमण्डलम्	33
जालकलक्षण कथ्यते	33
पुनश्च द्विविधं जालकमाह	34

अध्याय	पृष्ठांक
उपजालकमाह	35
मोचिकमाह	35
पुष्पदल लक्षयति	35
पुष्पदलस्य रूपमाह	36
केशरास्तु लक्षयति	36
केशररूपामाह	37
बीजाधार: लक्षयति	38
बीजाधार वर्तक: लक्षयति	38
वराटक: लक्षयति	38
बीजमावर्तन: प्रक्रियामाह	39
स्थालक: लक्षयति	39
पुष्पगणविभागमाह	40
तत्राधिष्ठानभेद: लक्षयति	40
तत्राद्य कुक्षिपुष्पा:	40
द्वितीय: काण्डपुष्पा:	40
इत्योपरान्त वल्लरिपुष्पा:	40
कूर्चपुष्पा: लक्षयति	40
सफलनिष्फलश्च पुष्पा:	41
पुष्पगणानां बीजाधारभेदमाह	41
प्रत्यक् पुष्पा:	41
पुनश्च व्यक्ताव्यक्तकेशरभेदात् पुष्पा:	42
तत्र चन्द्रकान्तरविकान्तश्च पुष्पभेदा:	42
तत्र ऋतुपुष्पसदापुष्पश्च भेदा:	42
पुनश्च व्यक्ताव्यक्तभेदा:	42
पुनरपि दलभेदात् पुष्पा:	43
संस्पृष्टसंस्फुटाभ्यां पुष्पा:	43
अङ्गभेदानुसार पुष्पा:	43
पुनश्च हीनाङ्गस्य भेदा:	44
बीजाधारव्यञ्जनेन पुष्पमण्डलमाह	44
तत्र तुन्दमण्डलगणा:	44
कुम्भमण्डलगणा:	45
तुङ्गमण्डलगणा:	45
इत्योपरान्ते वाटयमण्डलगणा:	45
अकृतित: समविषमञ्चगणा:	45
तत्र वञ्जुल: लक्षयति	46
स्तबकपुष्पा:	46
वर्णानुसारेण पुष्पभेदा:	46
चूतगणीयम्	47
समगणीयम्	47
पुप्लिकगणीयम्	48
स्वस्तिकगणीयम्	48
त्रिपुषगणीयम्	49
अवाक्पुष्पगणीयम्	49
अक्षपुष्पगणीयम्	50
कुहपुष्पगणीयम्	50
ओड्रपुष्पगणीयम्	51
मल्लिकागणीयम्	52
वज्रपुष्पगणीयम्	52
भृङ्गपुष्पगणीयम्	53
कोटरपुष्पगणीयम्	53
भद्रपुष्पगणीयम्	54
तत्र समाहार:	55
भवति चात्र	56
बीजोत्पत्तिकाण्डे फलाङ्गसूत्रीयनाम षष्ठोऽध्याय: ॥6॥	
फलसंरचनार्थे पर्यायमाह	57
तत्राद्य गणविभागमाह	57
पुष्पत: त्रिविधं बीजाधार: फलञ्चाह	57
तत्र पुष्पक्रान्तगणा:	57
पुष्पशीर्षकगणा:	58
इत्योपरान्ते संवृतगणा:	58
वृन्तादीनां फलाङ्गानि	58
फलवल्कलमाह	58

अध्याय	पृष्ठांक
एतद् उदाहरणमाह	59
वर्तकन्तु	60
पञ्चविधं बीजबन्धनमाह	61
अभ्रबीजफलमाह	61
फलानां चतुर्विधगणविभागमाह	61
तत्र तुन्दिकगणीय फलमाह	62
बीजकगणीय फलमाह	62
कुर्चगणीय फलमाह	62
आस्फोटकगणीय फलमाह	63
अकृत्यानुसारेण फलस्य वर्गमाह	63
भवन्ति चात्र	64
रसतश्च फलगण विभाजनमाह	66
बीजोत्पत्तिकाण्डे अष्टाङ्गसूत्रीयनाम सप्तमोऽध्यायः ॥7॥	
वृक्षाणां अष्टाङ्गमाह	67
तत्र मूलस्य लक्षयति	67
चतुर्विधं मूलः लक्षयति	68
अकृत्यानुसारेण मूलः लक्षयति	69
वर्णानुसारेण मूलमाह	69
त्वग्गणसूत्रीयः	69
वल्कलस्य वर्णानुसारेण वर्गमाह	70
प्रकृत्यानुसारेण वल्कलः लक्षयति	70
काण्डगणसूत्रीयः	72
द्विविधः काण्डमाह	72
तत्र पत्रप्रभवकाण्डभेदाः	72
शाखाङ्गाः लक्षयति	73
भवति चात्र	73
सारगणसूत्रीयः	74
रसगणसूत्रीयः	74
निर्यासगणसूत्रीयः	77
स्नेहगणसूत्रीयः	77
कण्टकगणसूत्रीयः	78

अध्याय	पृष्ठांक
बीजोत्पत्तिकाण्डे द्विगणीयो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥8॥	
बीजस्य स्वभावमाह	79
चतुर्विधं बीजाङ्गानि	79
तत्र कीखोसं लक्षयति	79
बीजमातृकाः लक्षयति	80
बीजपत्रः लक्षयति	80
मातृकाच्छः लक्षयति	80
द्विविधं बीजं लक्षयति	80
वर्णतः बीजः लक्षयति	80
अकृत्यानुसारेण बीजः लक्षयति	81
प्ररोहगणीयम्	82
प्ररोहस्याङ्गानि	82
पादपनिर्माणप्रक्रियामाह	83
मातृकाभेदेन प्ररोहभेदाह	83
त्रिविध प्ररोहः	84
नामतः प्ररोहः भेदाह	84
अङ्गानुसारेण गणमाह	85
बीजानां प्ररोहे हेतवः	85
प्ररोहस्याङ्गानिमाह	85
अन्यदप्याह	86
भवन्ति चात्र	86
तत्र श्लोकाः	87
अथ द्वितीयभागः वनस्पतिकाण्डः वनस्पतिनिर्वर्णनाऽध्यायः ॥1॥	
वनस्पतिनां सामान्यलक्षणमाह	88
यज्ञाङ्गस्य लक्षयति	88
तत्र प्रकृत्यानुसारेण फल्गुद्रुमस्य भेदाह	89
सोदाहरण लक्षयति	89
अन्यदप्याह	90

अध्याय	पृष्ठांक
श्रीपर्णफल्गुद्रुमाह	90
उदुम्बरः लक्षयति	91
पनसामाह	91
वनस्पतिकाण्डः	
वृक्षगणसङ्ग्रहाऽध्यायः ।।2 ।।	
पर्णभेदानुसारेण द्वौ गणाः	93
तत्र क्षीराधारेण भेदाः	93
पुष्पाधारेण भेदाः	93
केशरानुसारेण भेदाः	93
सफलनिष्फलादीनां द्वौ गणाः	94
फलभेदात् द्वौ गणाः	94
बीजभेदात् द्वौ गणाः	94
वर्तकभेदेन द्वौ गणाः	94
मातृकाभेदेन द्वौ गणाः	94
इत्योपरान्ते प्ररोहभेदेन द्वौ गणाः	94
गणान् दृष्टान्तपूर्वकेण लक्षयति	95
क्षीरगणाः	95
अव्यक्तश्च व्यक्तपुष्पाणि	95
समविषमपुष्पमाह	95
तत्र समिपुष्पाणामाह	96
सफलनिष्फलञ्चाह	96
कुड्यफलं विदरफलञ्चाह	96
एकबीजबहुबीजफलञ्चाह	96
एकवर्तकबहुवर्तकफलञ्चाह	96
एकमातृकद्विमातृकगणीयास्तुमाह	96
तत्र प्ररोहानुसारेणैकपत्रद्विपञ्चाह	97
वनस्पतिकाण्डः	
तृणवर्गाऽध्यायः ।।3 ।।	
तत्र त्रिविधभेदाह	98
कुक्षिमंजरिकश्च भेदाः	98
शीर्षग्रन्थौ	99
तत्र बीजरुहाः मूलपर्वरुहाः काण्डरुहाश्च	99
कन्दवल्वजाः	100
कन्दप्ररोहिकमाह	100
कुक्ष्याङ्कुरिकमाह	101
वानस्पत्यकाण्डः	
वानस्पत्यविचरणाऽध्यायः ।।1 ।।	
अम्रादिवर्गमाह	102
मातुलुङ्गादिवर्गमाह	103
जम्बूकादिवर्गाः	104
हरितक्यादि वर्गाः	106
कोलादिवर्गाः	107
वानस्पत्यकाण्डः	
सप्तपर्णादिवर्गाऽध्यायः ।।2 ।।	
तत्र कुटजः लक्षयति	108
तत् पुष्पलक्षणमाह	108
सप्तपर्णस्य पर्यायादीनां	109
कुटजस्य समानार्थकमाह	109
वानस्पत्यकाण्डः	
समिवर्गाऽध्यायः ।।3 ।।	
समिवृक्षः लक्षयति	110
तत्र वक्रपुष्पस्य लक्षणमाह	110
विकर्णपुष्पस्य लक्षणमाह	111
शूकपुष्पस्य लक्षणमाह	111
उर्ध्वे समिजातयः लक्षयति	111
तत्राद्ये पलाशः लक्षयति	112
अगस्त्यद्रुमाह	112
जयन्त्येत्याह	112
करञ्जद्रुमाह	112
शिंशिपाः	112
पारिभद्राह	113
विकर्णिकवर्गाः तत्रारग्वधस्य नामादीनां	113

अध्याय	पृष्ठांक
कोविदारस्य लक्षयति	113
काञ्चनारो तत्पुष्पस्य लक्षणाह	113
अश्मन्तकाः	114
शूकपुष्पञ्चाह तत्र शिरीषस्य लक्षणमाह	114
खदिरः तस्यनामानि	114
अन्य खदिरश्च जात्यां कदरः लक्षयति	114
शमी तस्या नामादीनां	115
अरि लक्षयति	115
तत्रान्य ज्ञातव्यमाह	115
अशोकः लक्षयति	115
श्योनाकः तस्य नामानि इत्याह	116
तिन्तिडीकाह	116

गुल्मक्षुपकाण्डः

दल्वजवर्गाऽध्याय ॥1 ॥

तत्र दल्वजा संज्ञाकारणमाह	117
तस्या कण्डुला नामानि	117
अन्यदप्याह	118
तस्य पञ्चविध प्रकृत्याह	118
त्रिविध मानकवर्गाः	118
ग्रन्थिलावर्गाः	118
खण्डकर्णाह	119
वर्तुलकन्दकानां	119
सिंहपुष्पमाह	120
तत्र केशरादीनां	120
तत्रैकपर्ण वर्गाः	120
बहुसन्धितकाण्डमाह	121
तत्र प्रक्षिप्तांश	121

आयुर्वेदविभागः

नाम प्रक्षिप्तांशे चिकित्साऽध्यायः ॥1 ॥

तस्य ध्यानमाह	123
तस्य माहात्म्यः	123
तत्र सर्वज्ञातव्यमाह	124
आहारविधिमाह	124
द्विविधाहारभेदमाह	125
तस्य चतुर्विधोपयोगमाह	125
तस्य षड्रसाः	125
विंशति गुणाहार	125
हिततमानामप्युदेक्ष्यामः तद्यथा	126
अहिततमानामप्युपदेक्ष्यामः	126
उषधानां प्राधान्यतः द्रव्याणि	127
अन्यदप्याह	127
अहारमात्रादीनां विचारमाह	131
अन्यदप्याह	131
रसः लक्षयति	132
अरोग्य हेतुसाधनं प्रशंसामाह	132

आयुर्वेदविभागः

नाम प्रक्षिप्तांशे भूमिप्रविभागीयाऽध्यायः ॥2 ॥

औषधोपयोगीभूमिलक्षणमाह	133
तत्रोपयोगी ओषधयः	133
विशेषतस्तु तत्र भूमिः लक्षयति	134
अत्र केचिदाहुराचार्य्याः	134
विरेचक द्रव्याणि ग्रहणकाले	
भूमिविचारमाह	135
तत्र विशेषमाह	135
तथा चाह	136
अन्यदप्याह	136
उषधीय संग्रहकाले ज्ञातव्यमाह	137
संग्रहस्थानमाह	137

आयुर्वेदविभागः

नाम प्रक्षिप्तांशे पादपचिकित्साऽध्यायः ॥3 ॥

वृक्षायुर्वेदः	138
प्राच्येतिहासमाह	138
वृक्षारोपणयोग्यं स्थानमाह	139

अध्याय	पृष्ठांक
तत्र काण्डादीनां रोपणमाह	140
वृक्षादीनां रोपणकालविचारमाह	140
वाटिकायां क्षेत्राणां रोपणनियमाह	140
उत्तममध्यमाधमं रोपणप्रकारमाह	140
तत्र व्याधिनामोपचारमाह	141
वृक्षवृद्ध्यर्थे विधिमाह	141
अग्राह्य धान्यमाह	142
त्याज्यफलमाह	142
वर्जितपत्रशाकमाह	142
वर्जितकन्दमाह	143
अन्यदप्याह	143
वृक्षरोपणनक्षत्रा:	144
पूर्तादिकर्त्तव्ये वृक्षारोपणनिर्देशमाह	144
परिशिष्ट	
द्रव्यज्ञानार्थ निघण्टुसंग्रह	145
सन्दर्भ ग्रन्थ	148

महर्षिपराशरविरचितः चाणक्यस्मृतः

गुल्मवृक्षायुर्वेदः

(पुरातनवृक्षविद्याशास्त्रः)

अथ बीजोत्पत्तिकाण्डे बीजोत्पत्तिसूत्रीयनाम प्रथमोऽध्यायः ॥1॥

अथाद्यमङ्गलमाह –

[प्रजापत्याद्यं नमामि च वृक्षविद्याविवेचनम्।
सर्ववर्गं हितार्थाय यदाह ऋषिपराशरः ॥]

सर्वप्रथम प्रजापति को प्रणाम करके ऋषि पराशर समस्त वर्गों के हितचिन्तन की दृष्टि से वृक्षविद्या का विवेचन करते हैं।

अथातो बीजोत्पत्तिसूत्रीयमध्यायं
व्याख्यास्याम इति ह स्माह पराशरः ॥1॥

महर्षि पराशर बोले– अब मैं बीजों की उत्पत्ति के सूत्र वाले अध्याय का व्याख्यान करूँगा।

तत्राद्य काले वृक्षविरुधोत्पत्तिप्रसङ्गमाह –

ब्रह्मास्वयम्भुर्भगवान सिसृक्षु विविध प्रजाः।
अग्रे ससर्ज स्थावरात्मानो वृक्षवीरुधः ॥2॥

(पूर्वकाल में) स्वयंभू भगवान् ब्रह्मा ने विविध प्रकारेण प्रजा की रचना की इच्छा की थी। इस क्रम में सबसे पहले उन्होंने स्थावर आत्म रूप में (अविचल रूप) वृक्ष और वीरुध (झाड़ियों) की सर्जना की।

अथ विश्वलाभार्थे वनस्पतिविषयकसङ्गत्यामाह –

एते क्षितिरुहाः सर्वे जगतो हितकारकाः।
वने चैत्ररथे रम्ये समेताः पुण्यकर्मणः।
भरद्वाजादयः सर्वे ये चान्ये मुनिसत्तमाः।
ज्ञातुमिच्छन्ताः पप्रच्छुः पराशरं महर्षयः ॥3॥

इनमें से पृथ्वी के केशरूप वृक्ष समस्त जगत के लिए हितकारक माने गए हैं।

अतएव चैत्ररथ नामक (हिमालय के) रमणीय वन में पुण्यकर्मा भरद्वाज आदि अन्य समस्त मुनिवरों[1] ने एकत्रित होकर इन वृक्षों के सम्बन्ध में ज्ञान की इच्छा से महर्षि पराशर से प्रश्न किए।

अथ पराशरोवाच-

पृष्टेन मुनिभिः सर्वैः पराशरोऽब्रवीत्ततः।
अथर्वाङ्गं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वृक्षवैद्यकम्॥4॥

जब उक्त समस्त मुनियों ने प्रश्न किया, तब महर्षि पराशर बोले- मैं आपको अथर्ववेद के अंगीभूत और पितामह ब्रह्मा द्वारा कथित वृक्षवैद्य (वृक्षायुर्वेद) के विषय में कहता हूँ।

उत्पत्तिं प्रकृतिभेदमाकृतिं भूमिभेदतः।
वृक्षाणाञ्च चिकित्सितं यथाह चतुराननः॥

1. प्रकृतिभेद, 2. आकृतिभेद और3. भूमिभेद के अनुसार उत्पन्न होने वाले वृक्षों की चिकित्सा के लिए जैसा चतुरानन ब्रह्माजी ने मुझे कहा (वह कहता हूँ)।

वृक्षावल्लयस्तथा गुल्मा विविधतृणजातय।
ऋतुपुष्पफलान्ता वै ओषध्यो जज्ञिरे त्विह॥5॥

वृक्ष और वल्ली तथा वैसे ही गुल्म विविध तृण जातियाँ होती हैं, ऋतु के अनुरूप जब उनके पुष्प और फल आते हैं, तब तक औषधि-उपाय करने होते हैं।

---

1. चरक ने आयुर्वेद के विषय में कहा है कि ऋषि भरद्वाज ने दीर्घजीवन की खोज में तत्पर होकर इन्द्र के समीप जाना निश्चित किया। ब्रह्मा, दक्ष प्रजापति, अश्विनीकुमार और इन्द्र ये चार आचार्य आयुर्वेदशास्त्र के देव उपदेशक माने गए हैं- ब्रह्मणा हि यथाप्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः। जग्राह निखिलेनादावश्विनौ तु पुनस्ततः॥ अश्विभ्यां भगवाञ्छक्रः प्रतिपेदे ह केवलम्। ऋषिप्रोक्तो भरद्वाजस्तस्माच्छक्रमुपागमत्॥ (चरक. सूत्र. 1, 4-5) यह भी कहा गया है कि जब शरीरधारियों के तप, उपवास, अध्ययन, ब्रह्मचर्य, व्रत और जीवन में विघ्न डालने वाले रोग उत्पन्न हो गए तो प्राणियों पर दयाभाव को महत्व देकर पुण्यकार्य करने में संलग्न महर्षिगण हिमालय के पार्श्व में एकत्रित हुए। इनकी सूची इस प्रकार है- अङ्गिरा जगदग्निश्च वसिष्ठः कश्यपो भृगुः। आत्रेयो गौतमः साङ्ख्यः पुलस्त्यो नारदोऽसितः॥ अगस्त्यो वामदेवश्च मार्कण्डेयाश्वलायनौ। पारीक्षिर्भिक्षुरात्रेयो भरद्वाजः कपिञ्जलः॥ विश्वामित्राश्मरथ्यौ च भार्गवश्च्यवनोऽभिजित्। गार्ग्गः शाण्डिल्यकौण्डिन्यौ वार्क्षिदेवलगालवौ॥ साङ्कृत्यो वैजवापिश्च कुशिको बादरायणः। बडिश शरलोमा च काप्यकात्यायनावुभौ॥ काङ्कायनः कैकशेयो धौम्यौ मारीचकाश्यपौ। शर्कराक्षो हिरण्याक्षो लोकाक्षः पैङ्गिरेव च॥ शौनकः शाकुनेयश्च मैत्रेयो मैमतायनिः। वैखानसा बालखिल्यास्तथा चान्ये महर्षयः॥ ब्रह्मज्ञानस्य निधयो दमस्य नियमस्य च। तपसस्तेजसा दीप्ता हूयमाना इवाग्नयः॥ (उपर्युक्त 1, 8-14)

तत्रादौ बीजमुत्पत्तिं शृणु मे दुर्लभं वचः।
आपो हि कललं भूत्वा यत् पिण्डस्थाणुकं भवेत्।
तदेवं व्युह्यमानत्वात् बीजत्वमधिगच्छति॥
तत्रा सिक्ता जलैर्भूमिरन्तरुष्माविपाचितम्।
वसुना व्युह्यामानात्तु बीजत्वं प्रतिपाद्यते॥6॥

इस क्रम में आरम्भ में बीजों की उत्पत्ति के विषय में दुर्लभ (मूल्यवान) वचनों को सुनिए। आप (जल) समय पाकर कलल होता है और फिर पिण्ड के बाद स्थाणु होता है। इस क्रम से आकार लेता हुआ कोई बीज बनता है। जब भूमि की सिंचाई की जाती है, तब उसमें विद्यमान आन्तरिक उष्मा से कोई बीज पाचित होता है और वसु के आकारवान होने पर बीज प्रतिपादित किया जाता है।[1]

तथा व्यक्तानि बीजानि संसिक्तान्यम्भसा पुनः।
उच्छृजत्वं मृदुत्वं च मूलभावं प्रयाति च॥7॥

इसी प्रकार जब व्यक्त बीज को पुनः जल से सिंचित किया जाता है, तब वह आर्द्र होने पर फूलकर मुलायम होता है और मूल (जड़ के) भाव को प्राप्त करता है।

तन्मूलादङ्कुरोत्पत्तिरङ्कुरात् पर्णसम्भवः।
पर्णात्मकं ततः काण्डः काण्डाच्च प्रसरं पुनः॥
अथ कालप्रकर्षेण पुष्पं फलं समन्वितम्।
बीजस्तु कालपर्यायाद् उद्भित्त्वा पृथिवीं नयेत्॥8॥

इसके बाद, उस मूल से अंकुर उत्पन्न होता है। अंकुर से पत्ते उत्पन्न होते हैं। उन पर्णों-पत्तों से काण्ड होता है। इसके बाद काण्ड से उसका प्रसारण होता है। काल के खींचाव से वह पुष्प और फिर फलों से युक्त होता है। कालान्तर में पृथ्वी बीज को अंकुरित करती है।

इत्योपरान्त वृक्षपर्यायमाह -

वृक्षः संज्ञो भवेदन्तः सुखदुःखसमन्वितः।
उद्भिज्जमाहुरुद्भेदात् वृक्षस्तु द्विजसत्तमाः॥9॥
द्रुमः क्षितिरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः।
अनोकहः कुठः शालः पर्यायैर्वृक्ष उच्यते॥10॥

---

1. यहाँ जैविक जगत की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है। जब जल फसल से द्रव्य कलल रूप में बदला तो उसमें एक घनीभूत जैविक मात्रा पिण्डस्थाणुक बनी। निश्चित प्रक्रियाधीन इसने जैव कोशिका का रूप लिया। तत्पश्चात् इसने जल सम्पर्क और मृदा उत्सर्जित ऊष्मा के प्रभाव से अपापचियिक परिवर्तन हुए। उपलब्ध ऊर्जाओं के अधीन यह द्रव्य आदिबीज में परिवर्तित हुआ।

इस प्रकार अन्त में वृक्ष की संज्ञा होती है जो सुख और दुःख से युक्त होता है। हे द्विजसत्तमो! उद्भिज्ज आदि भेदों से वृक्ष होता है। यह ज्ञातव्य है कि 1. द्रुम, 2. क्षितिरुह, 3. शाखी, 4. विटपी, 5. पादप, 6. तरु, 7. अनोकह, 8. कुठ और 9. शाल- ये वृक्ष के नौ पर्याय कहे जाते हैं।[1]

वनस्पतिर्वानस्पत्यो वल्ली गुल्मश्चतुर्विधः।
तेषान्तु फलपाकान्ता त्वोषधिः प्रोच्यते बुधैः ॥11॥

वनस्पति, वानस्पति, वल्ली और गुल्म- ये चार प्रकार हैं जिनके फलों के पकने पर ज्ञानियों ने उनको औषधि कहा है।

अपुष्पवन्तपुष्पेण ते वनस्पतयः स्मृताः।
पुष्पिनः फलिनश्चैव वानस्पत्या उदाहृताः॥

वनस्पति में 1. अपुष्पवन्त और 2. पुष्पेण दो भेद जाने। वानस्पति के अन्तर्गत 1. पुष्पिन और 2. फलिन ये दो भेद कहे गए हैं।

वीरुद्वल्ली प्रताना स्यात् गुल्मास्तु तद्विवर्जितः।
ह्रस्वशाखशिफः क्षुपो गुल्मस्तु परिकीर्तितः ॥12॥

वीरुद-वल्ली में प्रतान होते हैं, गुल्म में वह नहीं होते। जो छोटी शाखाओं और बिना विस्तृत जड़ वाले होते हैं, उनको क्षुप अथवा गुल्म कहा जाता है।

एतेषां क्षितिरुहाणां केचिद् बीजे प्ररोहति।
काण्डे च सम्भवेत् केचित् तथैव पत्रकन्दयोः ॥13॥

इस प्रकार इन वृक्षों में कोई बीज से उत्पन्न होते हैं। कोई काण्ड से उत्पन्न होते हैं तो कोई पत्र और कोई कन्द से पैदा होते हैं।

पत्रं पुष्पं फलं मूलं त्वक् काण्डः सारस्वरसौ।
निर्यास-स्नेह-कण्टक-बीजप्ररोहा एव च।
इत्युक्तैर्गणसङ्ग्रहैः प्रकृतिश्चादिशेत्तरोः ॥14॥

---

1. स्थावरयोनिविशेषः। तत्पर्याय- महीरुहः, शाखी, विटपी, पादपः, तरुः, अनोकहः, कुटः सालः, पलाशी, द्रुः, द्रुम, आगमः इत्यमर। अगच्छः, विष्टरः, महीरुट्, कुचिः, स्थिरः, कारस्करः, नगः, अगः, कुटारः इति शब्द रत्नावली। विटपः, कुजः, वनस्पतिः, अद्रिः, शिखरी, कुठः इति जटाधर। कुञ्जः, क्षितिरुहः, अङ्घ्रिपः, भूरुहः, भूजः, महीजः, धरणीरुहः, क्षितिजः, शालः इति राजनिर्घण्टः। तस्य षड्जातिर्यथा- कुरण्ट्याद्या अग्रबीजा मूलजास्तूत्पलादयः। पर्व्वयोनय इक्ष्वाद्याः स्कन्धजाः सल्लकीमुखाः।। शाल्यादयो बीजरुहाः सम्मूर्च्छ- जास्तृणादयः। स्युर्व्वनस्पतिकायस्य षडेते मूलजातयः। इति हेमचन्द्रः। संस्वेदजापि विज्ञेया वृक्षगोपशुजन्तवः। इत्यग्निपुराणम्। (शब्दकल्पद्रुम भाग चतुर्थ, पृष्ठ 475)

गण के अधार पर पेड़ों में पत्र (पत्तियाँ), पुष्प (फूल), फल, मूल (जड़ें), छाल (त्वक्), काण्ड, सार व उसका रस (दूध), गोंद, स्नेह (तेल), काँटे, बीज और प्ररोह (चलित)- ये गण संग्रह कहे गए हैं जो प्रकृति आदि से बताए गए हैं।

वनस्पतिस्तथा काण्डः वानस्पत्यस्तथापरौ।
वीरुद्वल्ली गुल्मक्षुपौ स्वे स्वे काण्डे प्रवक्षते॥

आगे वनस्पति, काण्ड, वानस्पत्य और वीरुद, वल्ली, गुल्म, क्षुप के विषय में उनके अलग-अलग काण्डों में कहा जाएगा।

रोगलिङ्गं समुद्दिष्टं वृक्षाणां सात्म्यभेषजम्।
सहव्यापदकारणं सर्वमेतच्चिकित्सिते॥15॥

इसी प्रकार एक अलग चिकित्सा काण्ड में वृक्षों के रोग, उनके लक्षणों तथा उनके कारणों सहित उनकी समस्त चिकित्सा के विषय में कहा जाएगा।

अत्रैव परिकीर्तितं वृक्षायुर्वेदसम्मतम्।
इति सूत्रं बीजोत्पत्तेर्ब्रह्माणा परिकल्पितम्॥16॥

इस प्रकार यहाँ वृक्षायुर्वेद सम्मत बीजोत्पत्ति के सूत्र को कहा गया है, जैसा कि पितामह ब्रह्मा ने कहा है।

इति पराशरकृते वृक्षायुर्वेदे बीजोत्पत्तिकाण्डे बीजोत्पत्तिसूत्रीयोनाम प्रथमोऽध्यायः॥1॥

इस प्रकार महर्षि पराशरकृत वृक्षार्युवेद के अन्तर्गत बीजोत्पत्तिकाण्ड में बीजोत्पत्ति सूत्र नामक पहला अध्याय पूरा हुआ।

अथ बीजोत्पत्तिकाण्डे भूमिवर्गसूत्रीयनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥2॥

अथातो भूमिवर्गसूत्रीयमध्यायं
व्याख्यास्याम इत्याह पराशरः ॥1॥

महर्षि पराशर ने कहा कि (बीजोत्पत्ति काण्ड में) अब आगे भूमि के वर्ग सूत्र नाम अध्याय की व्याख्या करता हूँ।

अथ पराशरोवाच-

भूर्भूमिर्मृत्स्ना मृत्तिका क्षितिः क्षौणी वसुन्धराः।
धरा धरित्री धरणिर्वसुधा चेति कीर्तिता ॥2॥

1. भू, 2. भूमिका, 3. मृत्स्ना, 4. मृत्तिका, 5. क्षिति, 6. क्षोणी, 7. वसुन्धरा, 8. धरा, 9. धरित्री, 10. धरणि और 11. वसुधा- इन पर्याय-नामों से भूमि को कहा है।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भूमिवर्गं स्वलक्षणम्।
त्रिविधा प्रोच्यते भूमिर्जाङ्गलानुपमिश्रकैः ॥3॥

इसके आगे, मैं भूमि के वर्गों को उनके लक्षणों के अनुसार कहूँगा। तीन प्रकार की भूमि कही गई है- 1. जांगल भूमि, 2. अनूप भूमि और 3. मिश्र भूमि।

अथ जाङ्गलदेशस्य लक्षणमाह -

स्वल्पद्रुमो जाङ्गलश्च स्वल्पोदकमरुप्रायः।
ऊषवन्तं शर्करिलः सिकतिलस्तथैव च ॥4॥
वृक्षा ये जायन्ते तत्र तेषां नाम विवक्षति।

जांगल देश (राजस्थान के बीकानेर क्षेत्र का नाम और मरुप्रदेश)[1] वह है जहाँ बहुत कम ही पेड़ होते हैं और जहाँ अल्प प्रमाण जल मिलता है लेकिन अधिकांश रेत मिलती है। जहाँ भूमि ऊषर हो, पथरीली और रेतीली होती है, वहाँ जो वृक्ष पाए जाते हैं, उनके नाम कहता हूँ-

अथ जाङ्गलदेशोत्पन्नवृक्षनामाह -

कदर-खदिरा-शनो-ऽश्वकर्ण-धव-तिनिसाः ॥
सल्लकी-साल-बदराः सोमवल्कश्च किंशुकः।
आमलक-वटा-श्वत्थ समी-ककुभ-शिंशपाः ॥5॥
यव-गोधूम-वज्जिर-समी-धान्यादयश्च हि।
एतास्तु जाङ्गलजाता ओषध्यः परिकीर्तिताः ॥6॥

कदर, खदिर, अशन, अश्वकर्ण, धव, तिनिस, सल्लकी, साल, बदरी, सोमवल्क, पलाश, आँवला, बरगद, अश्वत्थ, शमी, ककुभ और शिंशपा जैसे वृक्ष और जौ, गेहूँ, बाजरा, समी जैसे धान्यादि- ये जांगल भूमि पर उत्पन्न होने वाले हैं और औषध्य कहे जाते हैं।

तत्र प्रकृत्यादीनां –

एवमेषां तुल्यप्रकृतीनां ये च वृक्षवल्लीक्षुपास्तेऽपि जायन्ते ॥7॥
भूमेर्विरसभावत्वादग्निपवनपृथिव्यात्मकत्वाच्च
जाङ्गले नैसर्गिकरुक्षत्वाच्च प्रायशः कषाय
कटु-तिक्त-रुक्षरसान्विता वृक्षा उद्भवन्ति ॥8॥

इस प्रकार वहाँ की प्रकृति के अनुसार ही वहाँ वृक्ष, वल्ली, क्षुप आदि की पैदावार होती है। वहाँ की भूमि विरस भाव वाली, अग्नि, पवन और पृथिव्यात्मक होती है। जांगल भूमि नैसर्गिक रूप से सूखी होती है और वहाँ प्रायः कषाय, कड़वे, तिक्त और रुक्ष रस वाले वृक्ष उत्पन्न होते हैं।[1]

अथानूपदेशस्य लक्षणमाह –

अथानूपः[2] पुनः सरः सरित् समुद्रपर्यन्त प्रायः।
स्वाद्वलनड्वलकुमुवेतस्वान् दल्वपङ्किलभूमिभागः।
सिक्ताम्बुधूम्रसङ्काश-प्रवातबहुलो हिन्ताल-तमाल-
कदली-नारिकेल-वेत्र-वेणु-वल्वज-वानीर-
वेतसोपशोभित तटतरङ्गिणीभिः।
अनेक द्रुम-वल्ली-प्रताना-तरुणविटप-पुष्पितवनभूमिभागः ॥9॥

वह भूमि अनूपदेश[1] की कही जाती है जहाँ पर सरोवर और निर्झर-नदियाँ मिलती हैं और जो प्रायः सागरपर्यन्त होती है। वहाँ हरीभरी घास पाई जाती है और नड्वल, कुमुद, वेतस् मिलते हैं। मिट्टी मुलायम होती है और भूमिभाग दलदल वाला होता है। जल से सिंचित रहने वाली, धुएँ जैसी भूमि पर प्रायः हवाओं का संचरण होता है। वहाँ पर हिन्ताल, तमाल, केला, नारियल, वेत्र, वेणु, वल्वज, वानीर, वेतस् आदि की पैदावार के कारण सुन्दरता नदियों के किनारे पर पाई जाती है। अनेक पेड़, वल्ली, प्रतान और युवा पेड़ों के कारण फूलों वाला वन जैसा भूमिभाग होता है।

---

1. मरुदेशे यच्चिह्नं न जाङ्गले तैर्जलं विनिर्देश्यम्। जम्बूवेतसपूर्वैर्ये पुरुषास्ते मरौ द्विगुणाः।। (बृहत्संहिता 54, 86)
2. आनूपाः जलप्रायप्रदेशः।

तत्र प्रकृत्यादीनां –

तस्मादानूपेभूमेः स्वरसभावत्वात् सलिलपृथिव्यात्मकत्वाच्च
मधुराम्लप्रायोऽरुक्ष प्रकृतिवृक्षवल्लयोषधिगुल्मा
उद्भवन्ति सलिलस्य नैसर्गिकसौम्यत्वाच्च ॥10॥

अनूपदेश की ऐसी भूमि अपने ही रस के भाव से भरीपूरी होती है और जलीय पृथ्वी के गुण वाली होती है। वहाँ मधुर, अम्लीय, प्रायः अरुक्ष प्रकृति होने से वैसे ही गुणधर्म वाले वृक्ष, वल्ली जैसी औषधियाँ और गुल्म उत्पन्न होते हैं। जलजन्य नैसर्गिक सौम्यता मिलती है।

अथ मिश्रदेशस्य लक्षणमाह –

अथ मिश्रदेशो जाङ्गलानूपयोर्द्वयोर्देशयोर्भूमिलक्षणैश्च
वृक्षवल्लीगुल्मादिभिमिश्रदेशो व्यवस्येत् साधारणो वा ॥11॥

जो मिश्रदेश होता है, वहाँ पर जांगल और अनूप दोनों ही देशों के गुणों वाली भूमि के मिले-जुले लक्षण पाए जाते हैं। मिले-जुले ही वृक्ष, वल्ली और गुल्म साधारणतया उत्पन्न होते हैं।

तत्र प्रकृत्यादीनां –

तत्र मृत्स्ना पाण्डु-रक्त-कृष्णा वा नातिशुष्का
नातिस्वरसा नातिसिकताशर्करान्विता भवति।
तस्मात् मृत्स्ना साधारणत्वेन उर्वरा च
सर्ववृक्षवल्लीगुल्मशस्याढयां भवति ॥12॥

वहाँ की मिट्टी पाण्डु, लाल, काली होती है और न तो अधिक सूखी होती है और न ही अत्यन्त रसमयी। वहाँ पर ज्यादा कंकड़-रेत भी नहीं मिलते हैं। इसी कारण वहाँ की मिट्टी सामान्यतया उपजाऊ होती है और सभी प्रकार के वृक्ष, वल्ली, गुल्म और हरियाली पाई जाती है।

भवन्ति चात्र –

ऊषवान् क्षारमृत्तिका शर्करिलस्तथा शृणु।
त्रिविधा शर्करा विद्यात् लोहग्रावैका सम्मता ॥13॥
द्वितीया सुधाशर्करा तृतीया प्रस्तरा मता।
एताभिः संवृतदेशाः शर्करिल उदाहृतः ॥14॥

उपसंहारतः कहा जा सकता है कि जो भूमि ऊषवान् होती है, उसके बारे में सुनिए- वहाँ की मिट्टी क्षारीय, शर्करिल होती है। वहाँ पर तीन प्रकार की शर्करामयी

चट्टानें मिलती हैं- 1. लोहग्रावैका (लौह मिश्रित), 2. सुधाशर्करा (चूने या कंकड़ वाली) और 3. दृढ़ पाषाण वाली। ऐसी तीन प्रकार की चट्टानों से आच्छादित रहने वाली भूमि शर्करिल कही जाती है।

सिकतिलश्च सैकतो मरुभूरुच्यते बुधैः।
शद्वलो हरितशष्पैर्नड्वलो नडसंङ्कुलैः ॥15॥
कुमुद्वान् कुमुदप्रायैर्वेतस्वान् बहुवेतसैः ॥16॥

जो कंकड़ वाली और रेतीली भूमि होती है, उसको ज्ञानियों ने मरुभूमि कहा है। घास के कारण हरियाली से आच्छादित रहने वाली भूमि शद्वल और नड-संकुलों वाली भूमि नड्वल होती है। जहाँ पर प्रायः कुमुद और वेत्र होते हों, वह कुमुद्वान् भूमि होती है, बहुवेतस् से वैतस्वान् होती है।

चिरक्लिन्नश्च भूमीनां दल्वश्च परिकीर्तितम्।
पङ्किलः कर्दमयुक्तैर्भूमिलक्षणमुच्यते ॥17॥

जो भूमि लम्बे समय तक भीगी हुई रहती है, उसको दल्व कहा जाता है। इसी प्रकार जो भूमि दलदल वाली हो, उसको पंकिल कहा जाता है- ये भूमि के लक्षण कहे गए हैं।

इति पराशरकृते वृक्षायुर्वेदे बीजोत्पत्तिकाण्डे भूमिवर्गसूत्रीय-
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥2॥

इस प्रकार महर्षि पराशर कृत वृक्षायुर्वेद के बीजोत्पत्ति काण्ड में भूमिवर्ग सूत्रीय नामक द्वितीय अध्याय पूरा हुआ।

अथ बीजोत्पत्तिकाण्डे वनवर्गसूत्रीयनाम तृतीयोऽध्यायः ॥3॥

अथातो वनवर्गसूत्रीयमध्यायं
व्याख्यास्याम इत्याह पराशरः ॥1॥

अब (बीजोत्पत्ति काण्ड के) वनवर्ग के सूत्र वाले (तीसरा) अध्याय की व्याख्या की जाती है, जैसा कि महर्षि पराशर ने कहा था।

अथ वनपर्यायाः पराशरोवाच –

अटवी विपिनं चैव गहनं काननं वनम्।
महारण्यमरण्यानी पर्यायैर्वनमुच्यते ॥2॥

1. अटवी, 2. विपिन, 3. गहन, 4. कानन, 5. महारण्य और 6. अरण्यानि आदि वन के पर्याय कहे गए हैं।[1]

अथ वनस्यलक्षणमाह –

वनानि सम्प्रवक्ष्यन्ते श्रूयतां द्विजसत्तम।
निसर्गाद यत्र जायन्ते वृक्षवल्लीतृणादयः ॥3॥
यस्मिन् जनपदाश्रिते यद् वनं परिकीर्तितम्।
प्रख्याते भारतखण्डे त्विह तदनुवक्ष्यते ॥4॥

हे द्विजसत्तमो! अब वनों के विषय में कहता हूँ, सुनिये। जहाँ पर प्राकृतिक रूप से वृक्ष, वल्ली और तृणादि उत्पन्न होते हैं और जिस किसी जनपद के अन्तर्गत ऐसा क्षेत्र होता है, उसको वन कहा जाता है। भारतखण्ड में प्रसिद्ध ऐसे जो वन क्षेत्र हैं, उनके बारे में कहता हूँ।

अथ वननामान्याह –

वनं चैत्ररथं रम्यं देवगन्धर्वसेवितम्।
कालकं किरातञ्चैव महारण्यं प्रकीर्तितम् ॥5॥

जो चैत्ररथ नामक वन है, वह बहुत रमणीय है और वह देवताओं और गन्धर्वगणों से सेवित है। कालक और किरात नामक वन को महारण्य के रूप में जाना जाता है।

---

1. बहुवृक्षयुक्तस्थानम्। यथा मनु- परस्त्रियं योऽभिवदेत्तीर्थऽरण्ये वनेऽपि वा। नदीनां वापि सम्भेदे ससंग्रहणमाप्नुयात्।। (मनु. 8, 356) तत्पर्याय- अटवी, अरण्यम्, विपिनम्, गहनम्, काननम्- इत्यमरभरतौ। दावः दवः, अटवि, भीरुकम्, झाटम्, गुहिनम्- इति शब्दरत्नावली। शत्रम्, समजम्, प्रान्तरम्, विक्तम्- इति जटाधर। कान्तारम् इति राजनिर्घण्टः। (शब्दकल्पद्रुम खण्ड 4, पृष्ठ 261)

वनं पाञ्चनदं प्राच्यं चेदिकारुषकं ततः।
आङ्गिरेयं कालिङ्गेयं दाशार्णकं महाटवी ॥6॥
अपरान्तं सौराष्ट्रञ्च वनमित्यभिधीयते ॥7॥

अन्य वनों में पांचनद, प्राच्य, चेदिकारुषक (वेदिकारुषक ?), आंगिरेय, कालिंगेय, दाशार्णक महाटवी के रूप में हैं। इसी प्रकार अपरान्त और सौराष्ट्र के क्षेत्र वन के नाम से जाने जाते हैं।

ग्रन्थान्तर में इनका विस्तृत विवरण इस प्रकार भी ज्ञेय है-

1. पाञ्चनद : कुरुक्षेत्रस्य प्रतीच्यां हिमालयस्य दक्षिणस्यां सिन्धोरुदीच्यां कालेयवनस्य प्राच्यां च यत् स्थलं द्विशताधिकयोजनविस्तीर्णं निर्दिष्टम् तत् पाञ्चनद वनमित्युच्यते।

2. प्राच्यवन : हिमवन्मध्यभागस्य दक्षिणपार्श्वे परमेश्वरपदकमल विन्यासधन्यः कैलासो नाम पर्वतो भासते। तद्दक्षिणत एव गङ्गायमुनाख्ययोः प्रसिद्ध नद्योरुत्पत्तिः। तस्मात् तादृशकैलासपर्वतासानुतट्यारभ्य तयोर्गङ्गायमुनयोः सङ्गमस्थानाख्य प्रयागक्षेत्रपर्यन्तं स्थलस्य तस्योदीच्यां दिशि लौहित्यानदीतटपर्यन्तं द्विशतयोजनविस्तीर्णं स्थलं प्राच्य-वनमिति पूर्वमहर्षिभिर्निर्दिष्टम्।

3. चेदिकारुषक : मेखलानद्याः प्राच्यां दिशि त्रिपुरस्थलस्य दक्षिणस्यां दशार्णदेशस्य प्रतीच्यामुन्मत्तगङ्गाख्यसरितः उदीच्यां च दिशि यत्स्थलमतिविशालं निर्दिष्टं एतेषां मध्यभागे स्थितिमतस्तस्यैव स्थलस्य चेदिकरूषकवनमिति नामान्तरम्।

4. आंगिरेय : रेवानद्याः दक्षिणे भागे विदिशादेशस्य प्राच्यां दिशि च पारियात्र भूधरब्रह्मवतीनद्योश्च यत् मध्यस्थलं, तदेव आङ्गरेयवनमित्युच्यते।

5. कालिंगेय : सह्यपर्वतस्य उत्तरस्यां दिशि विन्ध्यपर्वतस्य दक्षिणस्यां महोदधि नामकसमुद्रस्य पश्चिमस्यां दिशि च यत् स्थलं शतयोजनविस्तीर्णं तदेव कालिङ्ग-वनमित्युच्यते।

6. दाशार्णक : वेत्रवतीनद्याः प्राच्यां दिशि श्रीपर्वतस्य दक्षिणस्यां दशार्णदेशस्य प्रतीच्यां बलपर्वतस्योत्तरस्यां च यत्स्थलं, एतन्मध्यवर्ति तदेव भूतलं दशार्णवननामभाक्।

7. अपरान्तिक : अस्तमयपर्वतस्य प्राच्यां दिशि रेवानद्याः दक्षिणस्यां नीलगिरेश्च दक्षिणस्यां पूर्वोक्तमहोदध्याख्यस्य समुद्रस्यादिदूरे प्रतीच्यां चापरान्तवन निर्दिष्टम्।

8. सौराष्ट्रक : द्वारवत्याः प्राच्यां दिशि रेवायाः दक्षिणस्यामवन्तिदेशभूमेः प्रमदपुर भूमेश्च दक्षिणस्यां अर्बुदपर्वतस्य प्रतीच्यां च दिशि यत् स्थलं पञ्चाशद्योजनविस्तीर्णं तत् सौराष्ट्रवनमित्युच्यते।[1]

---

1. वनों की यह सूची बहुत प्राचीन है। महर्षि पालकाप्य ने गजवन के नाम से यह सूची दी है और हाथियों के विहार के रूप में भारतीय वनों का वर्णन इन्हीं नामों से किया है। यथा- 1. प्राच्यवन, 2. चेदिकरूषक, 3. दाशार्णकवन, 4. आंगरेयिकवन, 5. कलिंगवन, 6. अपराजित

अथ चैत्ररथादि वनस्य स्थानमाह-

वनं चैत्ररथं रम्यं मानससरः शोभितम् ॥8 ॥
ततश्च प्रतीचीदेशे कालकं वनमुच्यते ॥9 ॥

वनों में चैत्ररथ नामक वन रमणीय और मानस सरोवर से शोभायमान है। उसके बाद, प्रतीची देश (पश्चिम) में कालक वन कहा जाता है।

प्राग्देशे किरातश्चैव ह्लादिनीप्लाविते स्थितम् ॥10 ॥
त्रयमेतद् महारण्यं हिमाद्रिशिखराश्रितम् ॥11 ॥

पूर्व देश में किरात वन है जो ह्लादिनी (ब्रह्मपुत्र) के ढलान में अवस्थित है। उक्त तीनों ही महारण्य हिमालय पर्वत की ऊँचाई के आश्रय में है।

सिन्धुसागरसङ्गमात् हिमालयकृतावधि।
कालञ्जरे कुरुक्षेत्रे वनं पाञ्चनदं स्मृतम् ॥12 ॥

सिन्धु नदी और सागर के संगम से लेकर हिमालय पर्वत तक के क्षेत्र में कालंजर और कुरुक्षेत्र तक जो वन विस्तार है, वह पांचनद के रूप में स्मरणीय है।

गङ्गासङ्गमप्रयागहिमाद्रीणाञ्च मध्यतः।
वनं प्राच्यमिति ज्ञेयं मध्यमं परिकीर्तितम् ॥13 ॥

इसी प्रकार गंगा-यमुना के संगम प्रयाग और हिमालय पर्वत के मध्यवर्ती क्षेत्र में जो वन है, उसको प्राच्य वन कहा जाता है, वह मध्यम कहा गया है।

त्रिपुरकौसलादौ च चेदिकारुषकं वनम् ॥14 ॥
उत्कले वङ्गे चाङ्गिरेयं वनं स्मृतम्।
[उपलावृतमारण्यं जम्बूमार्गोऽथ पुष्करम्] ॥15 ॥

त्रिपुर-कौशलादि क्षेत्र में चेदिकारुषक नामक वन है। उत्कल और वंग क्षेत्र से लगा हुआ आंगिरेय वन जानना चाहिए। इसी प्रकार उपलावृत आरण्य और जम्बूमार्ग में पुष्कर नामक वन है।[1]

विन्ध्याद्रिचित्रकूटादि कलिङ्गद्राविडाश्रितम्।
वनं कालिङ्गकं ज्ञेयं समुद्रावधि कीर्त्यते ॥16 ॥

(अपरान्तिक) वन, 7. सौराष्टकवन और 8. पांचनदवन- पूर्वं नागवनं प्राच्यं ततश्चैदिकरूषकम्। दशार्णकं ततो विद्यात् ततः स्यादाङ्गरेयिकम्॥ कालिङ्गकं पञ्चमं स्यात् षष्ठं स्यादपराजितम्। सौराष्ट्रकं सप्तमं स्यात् ततः पाञ्चनदं पुनः॥ (गजशास्त्रम् : पालकाप्य, गजवन निरूपण, चतुर्थ प्रकरण पृष्ठ 176) वनों की ऐसी ही सूची विष्णुधर्मोत्तरपुराण में मिलती है जिसको वीरमित्रोदयकार ने लक्षणप्रकाश में उद्धृत किया है। (लक्षणप्रकाश पृष्ठ 354-355)

1. देवीपुराणे अरण्योषरप्रशंसा। (शब्दकल्पद्रुम चतुर्थभाग, पृष्ठ 261)

कालिंग नामक वन विन्ध्य पर्वतमाला और चित्रकूट पर्वतमाला के अन्तर्गत है जो द्राविड देशाश्रित है। उसको कालिंगाक वन के रूप में समुद्र तक प्रसारित जानना चाहिए।

श्रीशैले वेदशैले च मलयाद्रौ तथैव च।
गन्धसारो भवेद् यत्र दाशार्णकं तदुच्यते ॥17॥

जो वन श्रीशैल, वेदशैल और मलय पर्वत के बीच विस्तीर्ण है, उसको दाशार्णक कहा जाता है, वहाँ पर गन्धसार (चन्दन) पाया जाता है।

सह्याद्रिभृगुकच्छान्तमपरान्तं वनं स्मृतम् ॥18॥
अवन्त्यां द्वारवत्यां च सौराष्ट्रवनमुच्यते ॥19॥

इसी प्रकार अपरान्त वन को सह्याद्रि पर्वतमाला और भृगुकच्छ (भडौंच, गुजरात) तक जानना चाहिए। अवन्ति (उज्जैन, मालवा) और द्वारवती (द्वारका) के बीच जो वन है, उसको सौराष्ट्र वन कहा जाता है।

एवमुक्तानि वनानि प्रकृत्या स्थानभेदतः।
एतैर्भूम्यनुभवैस्तु वृक्षाणां प्रकृतिर्भवेत्।
यथर्तुकालवैगुण्यात्तदेव चान्यथा स्मृताः ॥20॥

ऊपर जिन वनों का वर्णन आया है, वे प्रकृति से और स्थान भेद के आधार पर है। इनकी भूमि के अनुसार ही वहाँ के वृक्षों की प्रकृति होती है। जैसी ऋतु और काल होता है, वैसे ही वहाँ के वृक्षों के गुण होते हैं, अन्यथा नहीं।

इति पराशरकृते वृक्षायुर्वेदे बीजोत्पत्तिकाण्डे वनवर्गसूत्रीयनाम तृतीयोऽध्यायः ॥3॥

इस प्रकार महर्षि पराशर कृत वृक्षायुर्वेद के बीजोत्पत्ति काण्ड में वन सूत्रीय नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ।

❖❖❖

अथ बीजोत्पत्तिकाण्डे वृक्षाङ्गसूत्रीयनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥4॥

अथ पराशरोवाच –

अथातो वृक्षाङ्गसूत्रीयमध्यायं
व्याख्यास्याम इत्याह पराशरः ॥1॥

महर्षि पराशर बोले– अब मैं (बीजोत्पत्ति काण्ड के) वृक्षांग (पेड़ों के अंग) सूत्र नामक अध्याय की व्याख्या[1] करता हूँ।

इह खलु सर्वेषां वृक्षवल्लीगुल्मानामङ्गप्रत्यङ्गैश्च
गणसङ्ग्रहो यथोद्देशमभिनिर्देक्ष्यामः ॥2॥

इस क्रम में मैं सभी पेड़ों, वल्लरियों और झाड़ियों का वर्गीकरण (गणसंग्रह रूप में) उनके विभिन्न अंगों के आधार पर करूँगा।

अथ वृक्षाङ्गनामाह –

तत्र वृक्षवल्लीगुल्मानां पत्रपुष्पफलमूलत्वक् काण्डसार
स्वरसनिर्यासस्नेहकण्टकबीजप्ररोहश्चेत्यङ्गानि भवन्ति ॥3॥

इसमें यह ज्ञातव्य है कि वृक्ष, वल्ली और झाड़ियों के पत्र, पुष्प, फल, मूल (जड़), त्वक् (छाल), काण्ड (तना), सार, स्वरस, निर्यास, स्नेह (तैलीय पदार्थ), कण्टक, बीज, प्ररोह– ये अंग–भाग होते हैं।

अङ्गैश्चैतैश्च वृक्षवल्लीगुल्मानां साधर्म्यं वैधर्म्यं तुल्यातुल्य-
प्रकृतिमभिसमीक्ष्य गणविभागमुपदेक्ष्यामः ॥4॥

अब इन पेड़ों, झाड़ियों और लताओं के विभिन्न अंगों में समानता और असमानता के आधार पर तुल्यातुल्य प्रकृति के अनुसार भी एक वर्गीकरण करूँगा।

अथ पञ्चतत्त्वस्य वृक्षस्य जीवनोपरिप्रभावमाह –

पुनश्चक्षित्यप्तेजोवाय्वाकाशत्मकानि यानि
सूक्ष्माणि शरीराणि तान्युत्तरकालमुपदेक्ष्यते ॥5॥

पराशर ने आगे कहा– अब आगे पाँच महाभूत 1. पृथ्वी, 2. जल, 3. अग्नि, 4. वायु और 5. आकाश के पौधों पर होने वाले प्रभाव विचारित किए जाएँगे।

---

1. यहाँ से आगे जो विवरण है, वह वनस्पति के प्राकृत स्वरूप और उसके अंगों के भेद और उपभेद तथा संरचनात्मक दृष्टि से पारिभाषिक रूप में है और बहुत ही वैज्ञानिक वर्गीकरण के साथ–साथ अनेक शब्दों की स्थापना करता है। इनका आशय संस्कृत निर्घण्टुओं और कोशों के साथ ही वनस्पतिशास्त्र की मान्यताओं के अनुसार करने का प्रयास किया गया है। (सं.)

अथ पर्णस्य पर्यायादीनां –

तत्रादौ पत्रमधिकृत्य गणाधिकारः।

यथा पत्रं पर्णं पक्षं दलं पलाशं छदो बर्हमित्यनर्थान्तरम् ॥6॥

नवपत्रन्तु पुनः प्रवालः किश(स!)लय इत्युच्यते ॥7॥

अब पत्तियों के पर्याय कहे जाते हैं– पत्र, पर्ण, पक्ष, दल, पलाश, छद और बर्ह– ये पत्तियों के समानार्थक हैं। पुनः यह ज्ञातव्य है कि जो नवीन पत्तियाँ होती हैं, वे प्रवाल अथवा किसलय कही जाती हैं।

पत्राणि तु वातातपरञ्जका न्यभिगृहणन्ति ॥8॥

पत्तियाँ प्रायः वायु, तेज (ऊर्जा) और रंजक पदार्थ ग्रहण करती हैं।

शिशिरे ये च पादपा जीर्णपत्रवर्जितास्तेषां

माधवे पुनः प्रवालपल्लवानि समुद्भवन्ति॥

माधवे सञ्जातत्वादमधुपर्णमित्यभिधियते ॥9॥

वृक्ष प्रायः शिशिर ऋतुकाल में अपनी जीर्ण पत्तियों को गिरा देते हैं और वसन्त ऋतुकाल के प्रारम्भ होने पर नवीन पल्लव उत्पन्न हो जाते हैं। इन नवीन पत्तियों को मधुपर्ण कहते हैं क्योंकि ये मधुमास के दौरान पेड़ों पर आती हैं।

अथ पर्णस्य विविधाङ्गानि –

अथ खलु पत्रपक्षं वृन्तं पत्रसिरा रसकोषश्च मढिः

च विस्तारश्च पट्टिकश्चेति पत्राङ्गानि भवन्ति ॥10॥

पत्रपक्ष, वृन्त, पत्रसिरा, रसकोष (कोशिका), मढ़ि, विस्तार और पट्टिक– ये सब पत्तियों के विभिन्न अंग हैं।

अथ पत्रबन्धनमाह –

अथ पत्रबन्धनन्तु सिरानां संसक्तेन वृन्ते यत् पत्रसंयोगम्।

तच्च द्विविधं पृष्ठग्रन्थिकं प्रान्तग्रन्थिकञ्च ॥11॥

पृष्ठग्रन्थिकबन्धनन्तु पत्रपृष्ठे यद् वृन्तसंयोगम्।

प्रान्तग्रन्थिकबन्धनमेव पत्रपर्यन्ते यद् वृत्तसंयोगम् ॥12॥

वृन्त का पत्रपक्ष और पत्रशिराओं से जो जुड़ाव होता है, उसको पत्रबन्धन कहा जाता है। यह बन्धन दो प्रकार का होता है– 1. पृष्ठग्रन्थिका और 2. प्रान्तग्रन्थिका। पूर्ववर्ती प्रकार में प्रथम (पृष्ठग्रन्थिका) में वृन्त पत्रपक्ष के पृष्ठ सतह के भाग से जुड़ा होता है और परवर्ती (प्रान्तग्रन्थिक) प्रकार में यह पत्रपक्ष के आधार से जुड़ा होता है।

पत्रपक्षमाह –

पत्रपक्षन्तु वृन्तादूर्ध्वमुभयतो यदङ्गम् ॥13 ॥

पत्रपक्ष से अर्थ पत्ती की दोनों सतहों से हैं जो वृन्त से ऊपर होते हैं।

वृन्तमाह –

ततो वृन्तं पत्रस्य धारकं पुष्पफलयोरपि।
कस्यचित् पत्रवृन्तमुभयतः पक्षसङ्काशमङ्ग
दृश्यते तदेव वृन्तपक्षमाचक्षते ॥14 ॥

इस प्रकार वृन्त वह अंग है जो पत्ती, पुष्प और फल को थामे रहता है। कुछ पत्तियों में वृन्त पार्श्व में फैलकर दोनों ओर जुड़ा होता है। ऐसे दिखाई देने वाले फैलाव वृन्तपक्ष, अथवा उपपक्ष कहे जाते हैं।

अथ वृन्तबन्धनमाह –

वृक्षवल्लीगुल्मानां शाखामाढिविस्तारेषु
खलु सप्तविधं वृन्तबन्धनं विद्यात्।
यथा सङ्कुलपङ्क्ति पक्षपङ्क्ति
व्यात्यासपक्षपङ्क्ति पुङ्खारा कुर्चबन्धनञ्चेति ॥15 ॥

शाखाओं के साथ और माढ़ि के साथ वृन्त के जुड़ाव–विन्यास को वृन्तबन्धन कहा जाता है। इसको वृक्षों, लताओं और झाड़ियों में सात प्रकार के विन्यास में देखा जा सकता है। यथा– 1. संकुलबन्धन 2. पंक्तिबन्धन, 3. पक्षपंक्ति, 4. व्यात्यासपक्षपंक्ति, 5. पुंखबन्धन, 6. अराबन्धन और 7. कुर्चबन्धन।

सङ्कुलबन्धनमाह –

तत्र सङ्कुलबन्धनन्तु वृक्षाणां शाखासु वैषम्येण
यद् वृत्तसंयोगम्। एवञ्च माढिणा ॥16 ॥

संकुलबन्धन तब होता है जब वृक्षों में वृन्त और सभी माढ़ियाँ अनियमित प्रकार (विषमता) से शाखाओं से विन्यसित होती है।

पङ्क्तिबन्धनमाह –

उभयपार्श्वगे शाखाविस्तारवल्ल्यादीनां वृन्तेन
श्रेण्या यद् वृन्तबन्धनं तदेव पङ्क्तिबन्धनम् ॥17 ॥

जब वल्लरियों आदि में शाखाओं के विस्तार में तने के दोनों पार्श्व में वृन्त श्रेणियों में इनसे जुड़े हुए होते हैं, तब पंक्तिबन्धन होता है।

पक्षपङ्क्तिबन्धनमाह –

पक्षपङ्क्तिकत्तूभयपार्श्वगे शाखाविस्तार
वल्लयादीनां समपक्षवृन्ताभ्यां श्रेण्या यद् बन्धनम् ॥18॥

वृन्तयुग्मक पेड़ या लताओं की शाखा पर दोनों ओर एक के बाद एक पंक्ति में विन्यसित होते हैं तब पक्षपङ्क्तिबन्धन होता है।

व्यत्यासपक्षपङ्क्तिबन्धनमाह –

व्यत्यासपक्षपङ्क्तिकञ्च समपक्षवृन्ताभ्यां
श्रेण्या व्यत्यासेन यदुपर्युपरि बन्धनम् ॥19॥

व्यत्यासपक्षपंक्ति बन्धन तब होगा जबकि वृन्त के युग्म एक के ऊपर एक क्रम से विपरीत दिशाओं में निकले हुए होते हैं।

पुङ्खबन्धनामाह –

इषु पुङ्खाकारेण समपक्षपङ्क्तिकेन माढिनि
यद् वृन्तबन्धनं तदेव पुङ्खबन्धनम् ॥20॥

माढिनी पर वृन्त के युग्म पंक्तियों में किसी बाण की पूँछ के आकार की तरह जब व्यवस्थित होते हैं, तब उसको पुंखबन्धन कहा जाता है।

अराबन्धनमाह –

अराबन्धनन्तु चक्रस्यारका इव शाखासु
वृत्तमण्डलेन चक्राकारेण यदेव वृन्तसंयोगम् ॥21॥

अराबन्धन में शाखाओं के अन्तर्गत वृन्त पहिये के अरा की तरह तने पर वृत्तमण्डल में चक्राकार रूप में जुड़े हुए होते हैं।

कुर्चबन्धनमाह –

कुर्चबन्धनञ्च कुर्च इव संस्थानं वृक्षशीर्षे यद् बन्धनम्।
यथा तालनारिकेलक्रमुकखर्जुरेषु तृणजातिषु वृक्षेषु एव दृश्यते।
इति सप्तविधं वृन्तबन्धनम् ॥22॥

कुर्चबन्धन में कुर्चिका (तूलिका) वृक्ष के शीर्ष की तरह सभी पंक्तियाँ तने पर जुड़ी होती हैं। सामान्यतया ऐसा विन्यास नारियल, सुपाड़ी, खर्जूर और ताड़ इत्यादि वृक्षों और कुछ तृणजातियों में दिखाई देता है। इस प्रकार से सात प्रकार का वृन्तबन्धन होता है।

अथ काण्डाक्रान्तपत्रमाह –

कस्मिंश्चिद् वृक्षे वृन्तहीनं पत्रं दृश्यते तच्च काण्डे संवीतं भवति।
एवदेव काण्डाक्रान्तपत्रमाचक्षते ॥23॥

कुछ वृक्षों में पत्तियों के वृन्त नहीं होता है और उनका आधार तने से खोल बनाकर जुड़ा रहता है, उसको काण्डाक्रान्त पत्र कहा जाता है।

पत्रसिरामाह –

पत्रसिरा तु पत्रे रेखाङ्कितेन दृष्टवती रसवहा च ॥24॥

पत्रपक्ष के तल पर महीन जाल (रेखांकित) सी फैली हुई संरचना को पत्रसिरा कहा जाता है। इनमें रस की आवाजाही रहती है।

अथ सिरानिवेशमाह –

पत्रे सिराणां सन्निवेशो द्विविधो भवति।

पत्रपक्ष में सिरा सन्निवेश दो प्रकार का होता है–

प्रगुणं वेल्लितञ्च तत्र प्रगुणमृजुक्रमेण यत् संस्थानम्।
वेल्लितन्तु वक्रेण वा सङ्कुलेन जालवद् यत् संस्थानम्।
प्रगुणेन मौञ्जपत्रं वेल्लितेन तु जालिकपत्रं संज्ञायते ॥25॥

यह सन्निवेश 1. प्रगुण और 2. वेल्लित होता है। प्रथम प्रगुण प्रकार के सिरान्यास में शिराएँ ऋजुक्रम में समानान्तर-सीधी स्थित होती हैं। वेल्लित विन्यास में शिराएँ जाल की तरह फैली हुई स्थित होती हैं। समानान्तर सिरा विन्यास वाली पत्तियाँ मौंजपर्ण और जालवत सिरा विन्यास वाली पत्तियाँ जालिकापर्ण कहलाती हैं।

तत्र प्रकृत्यानुसारेण पत्रपक्षमाह –

प्रकृत्या पत्रपक्षं चतुर्विधं भवति।
समपक्षञ्च विषमपक्षञ्च
समकर्णिकञ्च विषमकर्णिकञ्चेति।

प्रकृति से पत्रपक्ष चार प्रकार का होता है– 1. समपक्ष, 2. विषमपक्ष, 3. समकर्णिक और 4. विषमकर्णिक। ये प्रकार कहे गए हैं।

तत्र समपक्षं खलु यदुभयपक्षं साम्यं भवति।
विषमपक्षन्तु यद् वैषम्येण विद्यते।
समकर्णिकञ्च यत् पत्रपक्षं कर्णेन साम्यं भवति।
विषमकर्णिकन्तु यत् पक्षं विषमकर्णेन विद्यते ॥26॥

इसमें समपक्ष में पत्र के दोनों भाग सममित (समान) और विषमपक्ष में पत्ती के दोनों ही पक्ष असममित (विषम) प्रकार के होते हैं। समकर्णिक प्रकार में पत्ती के फलक पर कटाव समान नियमित होते हैं जबकि विषमकर्णिक प्रकार में ये अनियमित या विषम होते हैं।

अथ रसकोषमाह –

पत्रे रसकोषस्तु रसस्याश्रय आधारश्च ॥27॥

पत्तियों में जो रसकोष (कोशिकाएँ) होते हैं, वे रस की आश्रय (भण्डार) और आधार होती हैं।

खलु वृक्षपत्रे रसकोषास्तूपरिसङ्ख्येयाः सन्ति।
ते कलावेष्टितेन पाञ्चभौतिकगुणसमन्वितस्य रसस्याशयश्च।
एते रञ्जकयुक्तमणवश्च। कला तु सूक्ष्माच्छपत्रका या
भूतोष्मापाचिता कललादुपजायते। आशय आधारश्चेति ॥28॥

सभी वृक्षों की पत्तियों में कोशिकाओं को आशय भी कहते हैं जिसका अर्थ है धारक। पत्ती असंख्य कोशिकाओं से मिलकर बनी होती हैं और प्रत्येक कोष कला (झिल्ली) से घिरा हुआ होता है। इसमें पंच महाभौतिक गुण वाले तत्त्वों से बना हुआ तरल होता है। कोष अति सूक्ष्म होते हैं जिनमें रंजक पदार्थ होता है। कला बहुत पतली व पारदर्शी होती है। यह कलल से बनती है जो भूतोष्मा के प्रभाव से उपापचय क्रिया के परिणाम स्वरूप होता है।

अथ माढिलक्षयति –

ततोमाढि यदेव गुच्छपर्णाणां समिपर्णानाञ्च धारकं
यच्च जीर्णपत्रेण सह प्रपतितं भवति। एतदेव द्विविधम्।
एकसन्धिकं बहुसन्धिकञ्च।

इसके बाद माढ़ि के विषय में कहा जाता है। यह संयुक्तपर्ण में अक्ष होता है जिससे वृन्त जुड़े होते हैं जैसा कि समिपर्णा (सिम्बीपर्णी) में पाया जाता है। पत्तियों के जीर्ण होने पर यह उनके साथ ही गिर जाता है। यह दो प्रकार हो सकता है– 1. एकसन्धिक और 2. बहुसन्धिक।

तत्रैकसन्धिकमेकेन सन्धिना सन्धितम्।
बहुसन्धिकञ्च बहुभिः सन्धिभिश्चैव॥

एकसन्धिक प्रकार में सभी पर्णपत्र एक ही बिन्दु पर उगे हुए होते हैं। बहुसन्धिक प्रकार में पर्णपत्र युग्म के रूप में एक के बाद एक क्रम में माढ़ि के दोनों ओर होते हैं।

अथ विस्तारवितानञ्चाह –

कतिविधानां वल्लीजातिनां माढिसदृशमधिकमङ्गं दृश्यते यच्च
शाखेव चिरेण काण्डे संसक्तं भवति तच्च विस्तारमाचक्षते।

कतिपय विधाओं में कुछ वल्ली जातियों के पौधों में एक अतिरिक्त अंग माढ़ि जैसा होता है। यह शाखा की तरह ही तने से जुड़ा हुआ होता है। इसको विस्तार कहा जाता है।

एव कस्यचित् शीर्षपत्रयुग्मौ तन्तुसङ्काशौ भवतः।
केषाञ्चिद् वल्लीनां पत्रवृन्तमूलात् सूत्राकारमङ्गं
दृश्यते तच्च वितानमाचक्षते।
आश्रयादौ तेन वितानेन तास्तु प्रताना भवन्ति॥29॥

इस प्रकार कुछ पौधों में अन्तिम शीर्ष पत्रों का युग्म धागे जैसा दिखाई देता है। कुछ लताओं में पत्र के वृन्त के आधार से सूत्राकार अंग संरचना निकल आती है। इसको वितान कहा जाता है। यह आरम्भ में आश्रय होता है और फिर वितान का प्रतान होता है।

अथ पट्टिकमाह –

सर्वेषु तृणवृक्षेषु पट्टिकं दृश्यते। एतेन पट्टिकेन सह
तृणवल्वजानां पत्रं संसक्तं भवति।
तच्च काण्डे काण्डाग्रे च संविशते।
एव जीर्णपत्रेण सह प्रायशः प्रपतितं भवति।
एतदेव खोल्लकं विज्ञायते॥30॥

समस्त प्रकार की घास के पौधों में पट्टिक दिखाई देता है– पट्टिक या पर्णाधार फैलकर ढकने का कार्य करते हैं। यह तृण, वल्वजों में पत्ती से जुड़ा होता है। यह तने को पर्वसन्धि से लेकर सिरे तक ढक लेता है। यह पत्ती के जीर्ण होने पर उसके साथ ही झड़ भी जाता है। इसको खोल्लक के रूप में भी जाना जाता है।

अथ शुङ्गमाह –

केषाञ्चिद् वृक्षाणां नवपल्लवकोरकाच्छदकमधिकमङ्गं दृश्यते।
तदेव शुङ्ग इत्याचक्षते॥31॥

कतिपय वृक्षों में शुंग नामक अवयव मिलता है जो अधिकतर नवीन पल्लवों को और पुष्प कलिका (कोरक) को ढके रहता है।

अथोपपक्षमाह –

केषाञ्चिद् वृक्षाणां पत्रवृन्तमुभयत उपपक्षं सञ्जायते॥32॥

कुछ वृक्षों में पत्र-वृन्त के प्रत्येक ओर उगी हुई संरचना पाई जाती है। इसको उपपक्ष कहा जाता है।

अथ पत्रपक्षरूपभेदाह –

खलु पत्रन्तु सामान्येन द्विविधं भवति।
समपर्ण विषमपर्णं चेति।
तत्र समपर्ण यदखण्डेन पत्रपक्षं साम्यं भवति।
विषमपत्रन्तु यत् कर्णेण वैषम्यं भवति॥33॥

सभी वनस्पतियों में पत्र सामान्यतः दो प्रकार के मिलते हैं- 1. समपर्ण और 2. विषमपर्ण। एक ही पत्ती हो और वह समपर्ण तब होती है जबकि उसके दोनों सिरे समानरूप वाले हों। विषमपत्र होंगे तो कर्णों में विषमता पाई जाएँगी।

इत्योपरान्त पत्रगणसङ्ग्रह नामानि -

अत ऊर्ध्वं वृक्षपत्रानां नामतो गणसङ्ग्रहमुपदेक्ष्यते ॥34॥

इसके बाद, वृक्षों में पत्रों के नामानुसार गणसंग्रह (वर्गीकरण) कहा जाता है।

तद् यथा- अर्घ्यपत्रञ्च जुहूपत्रञ्च स्रुवपत्रञ्च वृत्तबर्हञ्च मण्डलाग्रञ्च दीर्घदलञ्च वीरपत्रञ्च वाणबर्हञ्च शङ्कुबर्हञ्च सूचिपत्रञ्च इलिपर्णी च कर्णिकाछदश्च त्रिपर्णञ्च क्रकचछदश्च वृजिनपत्रञ्च गुच्छपत्रञ्च श्रीपर्णी च सिम्बिपर्णी च युग्मपत्रञ्च नखपत्रञ्च बालपत्रञ्च करच्छदश्च मञ्जुबर्हञ्च चीरिपत्रञ्च कारवीदला च कचपत्रञ्च सूर्पपर्णञ्च विषमपक्षपर्णञ्च बलिपत्रञ्च चित्रपर्णी च पृश्निपर्णी च मण्डूकपर्णी च शुक्तिपर्णी च कमठच्छदश्च गोधापदी च गोकर्णी च अश्वकर्णी च हस्तिकर्णी च हस्तिपर्णिनी च हंसपदी च पारावतपदी च लोमशपर्णी च कण्टपर्णी च नाडीदला च पीवरीदला च मौञ्जपत्रञ्चेति ॥35॥

वे इस प्रकार होते हैं- अर्घ्यपत्र, जुहूपत्र, स्रुवपत्र, वृत्तबर्ह, मण्डलाग्र, दीर्घदल, वीरपत्र, वाणबर्ह, शङ्कुबर्ह, सूचिपत्र, इलिपर्णी, कर्णिकाछद, त्रिपर्ण, क्रकचछद, वृजिनपत्र, गुच्छपत्र, श्रीपर्णी, सिम्बिपर्णी, युग्मपत्र, नखपत्र, बालपत्र, करच्छद, मंजुबर्ह, चीरिपत्र, कारवीदला, कचपत्र, सूर्पपर्ण, विषमपक्षपर्ण, बलिपत्र, चित्रपर्णी, पृश्निपर्णी, मण्डूकपर्णी, शुक्तिपर्णी, कमठच्छद, गोधापदी, गोकर्णी, अश्वकर्णी, हस्तिकर्णी, हस्तिपर्णिनी, हंसपदी, पारावतपदी, लोमशपर्णी, कण्टपर्णी, नाडीदला, पीवरीदला और मौंजपत्र।[1]

ततश्च स्वरूपतः लक्षयति -

ततः पत्रगणसूत्रीये नामतः समुद्दिष्टानि एते पत्रेगणाः स्वरूपतश्च यथोद्देशमभिनिर्दिश्यन्ते ॥36॥

इस प्रकार पत्तियों के गणसूत्रीय नाम से जो कहा गया, अब उनके स्वरूप के अनुसार लक्षणों को बताया जाएगा।

---

1. पत्रों का उक्त नामकरण विभिन्न उपकरणों, प्राणियों के पाँव आदि की रचनाओं अथवा विशिष्ट पक्षगत संरचनाओं के आधार पर किया गया है। कोई स्थायी और मानक रूप ही नामकरण में आधार माना जाता है, यहाँ पर यही विचार है जो पत्तियों के स्वरूप के लिए एक वर्गीकरण का आधार है। (सं.)

अथार्घ्यपत्रः लक्षयति –

येषां द्रुमवल्लीगुल्मानां पत्रमर्घ्यपात्राकारं
पृष्ठग्रन्थिकञ्च तदर्घ्यपत्रगणीयम् ॥37॥

कतिपय पेड़ों, झाड़ियों और लताओं में पत्ती का आकार अर्घ्य देने वाले पात्र जैसा होता है। यहाँ वृन्त का पत्र फलक के साथ जुड़ाव पृष्ठग्रन्थिक जैसा होता है।

जुहूपत्रः लक्षयति –

येषां द्रुमवल्लीगुल्मानां पत्रं जुहूपात्राकारं प्रान्तग्रन्थिकञ्च
दर्वीसंस्थानं वा तच्च जुहूपत्रगणीयम् ॥38॥

अनेक वृक्षों, झाड़ियों व वल्लरियों में पत्तियाँ जुहूपात्र के आकार की होती हैं। दर्वी (कड़छी) जैसा आकार जो कि यज्ञानुष्ठान में होम के लिए काम आती है। इनमें वृन्त पत्रफलक के आधार (प्रान्तवर्ती ग्रन्थी) से जुड़ा रहता है।

स्रुवपत्रः लक्षयति –

यच्च स्रुवपात्रसंस्थानं प्रान्तग्रन्थिकं
तदेव स्रुवपत्रगणीयम् ॥39॥

जब पत्तियाँ यज्ञ के उपकरण स्रुवा के आकार की होती हैं और वृन्त पत्रफलक के आधार प्रान्तवर्ती ग्रन्थी से जुड़ा होता है, स्रुवपत्र कही जाती हैं।

वृत्तबर्हः लक्षयति –

वृत्तबर्हन्तु वृत्तमण्डलाकारं
पृष्ठग्रन्थिकञ्चेति वृत्तबर्हगणीयम् ॥40॥

ऐसी पत्तियाँ जो वृत्त-मण्डल के आकार की हों और वृन्त पत्ती के मध्य में जुड़ा होता है तो वे वृत्तबर्ह कोटि की होती हैं।

मण्डलाग्रपत्रः लक्षयति –

मण्डलाग्रपत्रञ्च वृत्तमण्डलप्रायः पत्रशीर्षञ्च
प्रान्तग्रन्थिकमिति मण्डलाग्रगणीयम् ॥41॥

ऐसी पत्ती जिसके आगे का भाग या पत्रशीर्ष प्रायः वृत्तमण्डल जैसा हो, वृन्त पत्र फलक के आधार से जुड़ा हुआ हो तो मण्डलाग्र कोटि की होगी।

दीर्घदलः लक्षयति –

दीर्घेण च प्रान्तग्रन्थिकेन दीर्घदलगणीयम् ॥42॥

जिस पत्ती का पत्रफलक लम्बाकार हो और वृन्त आधार में धँसा हुआ होता है, वह दीर्घदल कोटि की होंगी।

वीरपत्रः लक्षयति –

वीरपत्रमसिवच्च प्रान्तग्रन्थिकञ्चेति वीरपत्रगणीयम् ।।43 ।।

पत्ती की रचना जब असि (खड्ग, तलवार) जैसी हो, पत्रफलक अपने आधार पर नीचे के गोले से जुड़ा हो तो वीरपत्र वर्ग की होंगी।

बाणबर्हः लक्षयति –

बाणबर्हञ्च त्रिकर्णिकं वाणफलकमिव
प्रान्तग्रन्थिकञ्चेति बाणबर्हगणीयम् ।।44 ।।

तीन कोनों वाली ऐसी पत्ती जो बाण के फलक की तरह रचना लिए हो तो ऐसी प्रान्तग्रन्थिक पत्ती बाणबर्ह वर्ग की होगी।

शङ्कुबर्हः लक्षयति –

शङ्कुबर्हञ्च शङ्कुनिभं प्रान्तग्रन्थिकञ्चेति शङ्कुबर्हगणीयम् ।।45 ।।

अब शंकुबर्ह को कहते हैं, शंकु जैसी संरचना वाली प्रान्तग्रन्थिक पत्तियाँ शंकुबर्ह कोटि की होती हैं।

सूचिपर्णीलक्षयति –

सूचीपर्णीगणीयं सूचिसदृशं भवति ।।46 ।।

सूचीपर्णी वर्ग में आने वाली पत्तियाँ सुई के समान संरचना वाली होंगी।

इलिपर्णीलक्षयति –

इलिपर्णी तु करपालिकासदृशा चेति ।।47 ।।

करपालिका (कटार) जैसी दिखाई देने वाली पत्तियाँ इलिपर्णी कही जाती हैं।

कर्णिकाछदः लक्षयति –

बहुभिः कर्णयुक्तैश्च कर्णिकाछदगणीयम् ।

जिस पत्ती में बहुत से कोण निकले हुए हों, वह कर्णिकाछद वर्गीय होंगी।

त्रिपर्णः लक्षयति –

त्रिपर्णन्तु त्रिभिः पत्रैश्च प्रान्तग्रन्थिकमेवञ्च येषां पत्राणां
पार्श्वसिराः पार्श्वाभितोऽभिसर्पितास्तदेव त्रिपर्णगणीयम् ।
केचिद् गुच्छपर्णमाह ।।48 ।।

ऐसी संयुक्त पत्ती जिसमें तीन पत्रिकापर्ण वृन्त से जुड़े हुए होते हैं, त्रिपर्ण कहलाती हैं। पत्रिकापर्ण के पार्श्व में कोशिकाएँ आड़ी फैली होती हैं। त्रिपर्ण को कदाचित् गुच्छपर्ण भी कहा जाता है।

क्रकचछदः लक्षयति –

करपत्रमिव क्रकचछदगणीयम् ।।49 ।।

जब पत्तियो का किनारा क्रकच (आरी) के समरूप बँटा हुआ हो तो वे क्रकचछद वर्गीय होती हैं।

वृजिनपत्रः लक्षयति –

ऊर्मिवत् कुञ्चितं वृजिनपत्रगणीयम् ।।50 ।।

जब पत्तियाँ उर्मीवत् (लहरदार या घुंघराली) दृष्टिगत हों, तो वे वृजिनपत्र कोटि वाली होती हैं।

गुच्छपत्रः लक्षयति –

पक्षैर्बहुभिर्युक्तैः प्रान्तग्रन्थिकमिति गुच्छपत्रगणीयम् ।।51 ।।

एक संयुक्त पत्ती जिसमें कई पत्रफलक हों, गुच्छपत्र कोटि की होती हैं।

श्रीपर्णगणीयपत्रः लक्षयति –

सूक्ष्माग्रं त्र्यश्रि तु वृन्तमभितो वृत्तमण्डलप्राय
इति पत्र श्रीपर्णगणीयम् ।।52 ।।

ऐसी पत्ती जो लगभग त्रिभुजाकार (त्र्यस्री) हों जिसमें आगे का भाग नुकीला हो और आधार पर गोलाई लिए हुए हों, वह श्रीपर्ण वर्ग की होती है।

सिम्बिपर्णः लक्षयति –

सिम्बिपर्णन्तु सुपर्णसङ्काशं त्रिभिः पत्रैस्तेषामेकपर्ण मध्यतः
श्रीपर्णसङ्काशं द्वौ पर्णौ माढिमुभयतः पक्षिपक्षसन्निभौ
विषमपक्षौ तौ न्युब्जवृन्ताभ्यां सन्निबद्धौ।
क्वचित् सिम्बिपर्णं बहुभिः समपक्षपत्रैस्तु माढिणि दृश्यते ।।53 ।।

एक संयुक्त पत्ती जिसमें सुपर्ण की तरह तीन पत्रफलक हों और पंख फैलाए पक्षी जैसी दिखाई देती हों और जिसमें मध्यफलक श्रीपर्ण प्रकार का हों, सिम्बिपर्ण वर्ग की कहलाती हैं। इसमें पार्श्व के पर्ण पंख जैसे दिखाई देते हैं। वृन्त आंशिक रूप से झुका हुआ होता है और माढि के साथ अनेक पत्रयुग्मक अवस्थित होते हैं।

युग्मपत्रः लक्षयति –

युग्मपत्रञ्च द्विखगणिताग्रं वृन्तमभितोऽपि
युगलपत्रमिव प्रान्तग्रन्थिकञ्चेति युग्मपत्रगणीयम् ।।54 ।।

उस पत्ती को युग्मपत्र वर्गीय कहा जाता है जब उसका पत्रफलक आधार और सिरे से दो भागों में गहराई के साथ विभाजित हो और ऐसा प्रतीत हों कि दो पत्तियों को पार्श्व से समाहित कर दिया हो। वृन्त कटाव के आधार पर वहाँ से जुड़ा होता है।

बालपत्रः लक्षयति –

बालपत्रञ्चातिक्षुद्रमायतञ्च शीर्षवृन्तमभितो
वृत्तमण्डलप्राय इति बालपत्रगणीयम् ॥55॥

ऐसी पत्तियाँ जो आकार में बहुत छोटी होती हों, आधार और अग्रभाग वृत्ताकार होता हैं, उनको बालपत्र कहा जाता है।

नखपत्रः लक्षयति –

नखपत्रञ्च नखसन्निभमिति नखपत्रगणीयम् ॥56॥

जो पत्तियाँ नाखून के आकार वाली दिखाई देती हों, वे नखपत्र वर्गीय होंगी।

करछदः लक्षयति –

हस्ततलसङ्काशं करछदश्चेति करछदगणीयम् ॥57॥

जिन पत्तियों का आकार हथेली जैसा हों, वे करछद वर्ग की होती हैं।

मञ्जुबर्हः लक्षयति –

मञ्जुबर्हञ्च नेत्राकृतिश्चेति मञ्जुबर्हगणीयम्।
एतानि पत्राणि प्रान्तग्रन्थिकानि भवन्ति ॥58॥

जिन पत्तियों का आकार आँख जैसी संरचना वाला हो, वे मंजुबर्ह कोटि की होती हैं। उनमें वृन्त पत्रफलक के आधार से जुड़ा होता हैं।

चीरिपत्रः लक्षयति –

चीरिपत्रञ्च झिल्लिकाया सदृशं विषमकर्णितं
विभक्तं व प्रान्तग्रन्थिकमिति चीरिपत्रगणीयम् ॥59॥

ऐसी पत्तियाँ जो जालिका (झिल्लिका) के सदृश हों और फलक विषमकर्णिक हों, चीरिपत्र वर्ग में कही जाती हैं।

कारवीदलाः लक्षयति –

कारवीदला च केशराकारा विभक्तदलेति
कारवीरदलगणीयम् ॥60॥

जिस पत्ती का पत्रफलक गहराई तक कटा हुआ हो और पुष्प के पुंकेशर के समान लगता हो, उसको कारवीदल वर्ग में गिना जाएगा।

कचपत्रः लक्षयति –

कचपत्रन्तु केशसदृशमिति कचपत्रगणीयम् ॥61॥

केशों के गुच्छे के समान दिखाई देने वाली पत्तियाँ कचपत्र कोटि की होंगी।

सूर्पपर्णः लक्षयति –

सूर्पपर्णन्तु बृहत्पत्रं सूर्पाकारञ्चेति सूर्पपर्णगणीयम् ॥62 ॥

सूर्प (सूप या सूपड़े) जैसी बड़े आकार के पत्रफलक वाली पत्तियाँ सूर्पपर्ण कोटि के अन्तर्गत होती हैं।

विषमपक्षः लक्षयति –

विषमपक्षन्तु यस्य पर्णस्य पक्षं विषमं
भवति तदेव विषमपक्षगणीयम् ॥63 ॥

जिन पत्तियों का पत्रफलक विषम या असम्मित होता हैं, उनको विषमपक्ष कोटि का गिना जाता है।

बलिपर्णः लक्षयति –

बलिपर्णञ्च गजचर्मनिभञ्च वा
खरपत्रञ्चेति बलिपर्णगणीयम् ॥64 ॥

जिस पत्ती का तल हाथी के चमड़े की तरह खुरदरा हो, वह बलिपर्ण कोटि की होती हैं, उसको खरपत्र वर्ग का भी कहा जाता है।

चित्रपर्णः लक्षयति –

चित्रपर्णञ्च विचित्ररेखाङ्कितञ्चेति चित्रपर्णगणीयम् ॥65 ॥

विचित्र रेखाओं (रंगीन धब्बों व रेखाओं) से जिस पत्ती का तल मण्डित हो, वह चित्रपर्ण वर्ग की होती है।

पृश्निपर्णः लक्षयति –

स्वल्पायतं खरं तनुपत्रञ्च प्रान्तग्रन्थिकमिति पृश्निपर्णगणीयम् ॥66 ॥

एक छोटी वृत्ताकार पत्ती जिसका तल खुरदरा और पतला हो पृश्निपर्ण कोटि की कही जाती है।

मण्डुकपर्णीः लक्षयति –

मण्डुकपर्णीतु मण्डुकसङ्काशमिति मण्डुकपर्णीगणीयम् ॥67 ॥

जो पत्ती मेंढ़क के समान संरचना वाली दिखाई देती हो, वह मण्डुकपर्णी वर्ग की होती है।

शुक्तिपर्णः लक्षयति –

शुक्तिपर्णञ्च शुक्तिसङ्काशमिति शुक्तिपर्णगणीयम् ॥68 ॥

जिस पत्ती का पत्रफलक सीप जैसा दीर्घवृत्त वाला लगे, उसको शुक्तिपर्ण वर्ग का कहा जाता है।

कमठपर्णः लक्षयति –

कमठपर्णञ्च कमठाकारञ्चेति कमठपर्णगणीयम् ॥69॥

जिस पत्ती का आकार कछुए जैसा लगता हो, उसको कमठपर्ण वर्ग का कहा जाता है।

गोधापदीपत्रः लक्षयति –

गोधापदीतु गोधापदाकारञ्चेति गोधापदीपत्रगणीयम् ॥70॥

गोह (गोरपड़) के पाँव से मिलता-जुलता जिस पत्ती का विन्यास हो, वह पत्ती गोधापदीपत्र के वर्ग वाली होगी।

गोकर्णपत्रः लक्षयति –

गोकर्णी तु गोकर्णसङ्काशमिति गोकर्णपत्रगणीयम् ॥71॥

यदि गाय के कान के आकार के समान दिखाई देने वाली पत्ती हो, वह गोकर्णी होगी और गोकर्णपत्र के वर्ग में गिनी जाएगी।

अश्वकर्णीः लक्षयति –

अश्वकर्णी तु अश्वकर्णसङ्काशञ्चेति अश्वकर्णगणीयम् ॥72॥

अश्वकर्णी पत्ती घोड़े के कान के समान होती है। वह अश्वकर्ण वर्ग की होगी।

हस्तिकर्णः लक्षयति –

हस्तिकर्णञ्च हस्तिकर्णसङ्काशमिति हस्तिकर्णगणीयम् ॥73॥

दीर्घपर्ण जिनका आकार हाथी के कान के समान लगता हो, वे पत्तियाँ हस्तिकर्ण वर्ग के अन्तर्गत मानी जाती हैं।

हस्तिपर्णिनीः लक्षयति –

हस्तिपर्णिनी तु करिकरकुम्भसङ्काशमिति
हस्तिपर्णगणीयम् पीलुपर्णी वा ॥74॥

जिस पत्ती का आकार हाथी के मस्तक और लटकती हुई सूण्ड जैसा हो, वह हस्तिपर्ण वर्ग की कही जाती है। इसको पीलूपर्णी भी कहा जाता है।

हंसपदीः लक्षयति –

हंसपदी तु हंसपदाकारञ्चेति हंसपदीपत्रगणीयम् ॥75॥

हंस पक्षी के पैरों के आकार जैसी पंत्तियाँ हंसपदी पत्र वर्गीय होती हैं।

पारावतपदीः लक्षयति –

पारावतपदी च पारावतपदसदृशमिति
पारावतपदीपत्रगणीयम् ॥76॥

पारावतपदी वे पत्तियाँ होती हैं जो कबूतर के पाँव जैसी संरचना लिए होती हैं। वे पारावतपदी पत्र वर्गीय होंगी।

लोमशपत्रः लक्षयति –

लोमशपर्णञ्च लोमचितमिति लोमशपत्रगणीयम्॥77॥

जिन पत्तियों का पत्रफलक रोमों से आच्छादित हो, वे लोमशपत्र वर्ग की होंगी।

कण्टपत्रः लक्षयति –

कण्टपत्रं च दुस्पर्शं कण्टकाचितमिति कण्टपत्रगणीयम्॥78॥

कण्टपत्र वे पत्तियाँ होती हैं जिनका फलक काँटेदार होता है और जिनको छूना कठिन हों, वे कण्टपत्र कोटि की होंगी।

नाडीपत्रः लक्षयति –

नाडीपर्णञ्च नाडीसन्निभं सुषिरमिति नाडीपत्रगणीयम्॥79॥

नाडीपर्ण वे पत्तियाँ होती हैं जो नली की तरह सुषिर (अन्दर से खोखली) होती हों। उनको नाडीपत्र वर्ग में रखा जाता है।

पीवरपत्रः लक्षयति –

पीवरछदश्च स्थूल-पृथुल-सान्द्ररसान्वितमिति
पीवरपत्रगणीयम्॥80॥

जब पत्ती मोटी, माँसल और रसभरी (गाढ़ी) हो तो उसको पीवरछद कहा जाता है। ऐसी पत्तियाँ पीवरपत्र वर्गीय होती हैं।

मौञ्जपत्रः लक्षयति –

मौञ्जपत्रञ्च तृणवल्वजानां पत्रं येषां सिराणां
सन्निवेशमधस्तादूर्ध्वमृजुव्यञ्जनमिति मौञ्जपत्रगणीयम्॥81॥

मौंजपत्र ऐसी घास वर्गीय पत्तियाँ होती हैं जिनमें शिराएँ होती हैं, वे नीचे और ऊपर सीधी और मुड़ी हुई होती है, उनको मौंजपत्र वर्ग में रखा जाता है।

अन्यदप्याह –

पुष्पपत्रञ्च पुष्पाणामभिव्यञ्जकम्॥82॥

इसके अतिरिक्त, विशेष प्रकार की वे पत्तियाँ जो पौधों पर फूल आने से तत्काल पहले तक दिखाई देती हैं, पुष्पपत्र कही जाती हैं।

अथोपसंहारमाह –

असङ्ख्येयानां वृक्ष-वल्ली-गुल्मानां पात्रानामाकृति-
नामाविष्कृततमा व्याख्याताः।

अनेन विधिना चानुक्तेषु तदवयवं लक्षणञ्च व्यवस्येत् ॥83॥

इस प्रकार अनेक वृक्षों, लताओं और झाड़ियों में से जो अभी तक खोजे-पहचाने जा सके हैं, उनके पत्रादि के नाम और आकृतियों का विवरण यहाँ दिया गया है। और, जिनका उल्लेख नहीं किया गया है, उनको भी इसी प्रकार अवयवों का आकार तथा लक्षणों को देखकर वर्गीकृत किया जा सकता है।

इति पराशरकृते वृक्षायुर्वेदे बीजोत्पत्तिकाण्डे वृक्षाङ्गसूत्रीय-
नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥4॥

इस प्रकार महर्षि पराशर कृत वृक्षायुर्वेद में बीजोत्पत्ति काण्ड का वृक्षांग सूत्रीय नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ।

❖❖❖

अथ बीजोत्पत्तिकाण्डे पुष्पाङ्गसूत्रीयनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥5॥

अथ पराशरोवाच –

अथातः पुष्पाङ्गसूत्रीयमध्यायं
व्याख्यास्याम इत्याह पराशरः ॥1॥

महर्षि पराशर बोले- अब मैं (बीजोत्पत्ति काण्ड के) पुष्पांग सूत्र नामक अध्याय की व्याख्या करूँगा। इस अध्याय में पुष्प (फूल) व उसके अंगों का वर्णन है।

अथ पुष्पपर्यायादीनां –

खलु पुष्पन्तु फलव्यञ्जनं कुसुमं
सुमनः प्रसूनमित्यनर्थान्तरम् ॥2॥

यह ज्ञातव्य है कि सभी पुष्प फलों के पूर्वगामी होते हैं। कुसुम, सुमन और प्रसून- ये सभी पुष्प के अर्थान्तर अर्थात् पर्यायवाची हैं।

पुष्पपत्रमाह –

पुष्पाणामभिव्यञ्जनं पुष्पपत्रं खलु
प्राक्पुष्पमेव खुड्डुकपञ्चेति ॥3॥

जैसा कि कहा गया है कि पुष्पपत्र फूल के ही पूर्वगामी होते हैं। इनको प्राक्पुष्प भी कहा जाता है जिसका आशय है कि फूल से पहले आने वाली पत्तियाँ। ये आकार में छोटी होती हैं- इस प्रकार खुड्डुकपंच कहा गया है।

कुट्मलाह –

अथ कुट्मलः पुष्पकलिका कोरकश्चेति ॥4॥

पुष्प कलिका को कुट्मल, कलिका अथवा कोरक कहा जाता है।

पुष्पाङ्गः लक्षयति –

इह खलु वल्लरिवृन्तजालकदलकेशरपरागकिञ्जल्कपरिमलमकरन्द
बीजाधारवराटकस्थालकानीति पुष्पाङ्गानि भवन्ति ॥5॥

किसी पुष्प के सामान्यतः निम्नभाग होंगे- वल्लरिका, वृन्त, जालक, दल, केशर, पराग, किंजल्क, परिमल, मकरन्द, बीजाधार, वराटक और स्थलक।

पुष्पाणां साधारणलक्षणमाह –

अथ पुष्पाणां सामान्यलक्षणमुपदेक्ष्यते ॥6॥

अब मैं पुष्प के सामान्य लक्षणों को कहता हूँ।

तत्र कोरकस्यावरणं जालकम्। तदभ्यन्तरतः पुष्पदलम्।
ततः केशरश्च। ततो बीजाधारस्तत्रोपरि
केशरवेष्टितैर्वराटकश्च तत्र बीजाधानं भवति।
परागस्तु रजश्च केशराणाम्। किञ्जलकं परागाधार एव
केशराणां शीर्षे सन्धितम्। तदेव प्रकृत्या द्विविधम्।
प्रान्तसन्धितं पृष्ठसन्धितञ्च। परिमलः पुष्पगन्धः स्नेहश्च।
पुष्पमधु मकरन्दश्च तस्याधारः पुष्पोदरञ्च ॥7॥

सबसे पहले बाहरी सतह जो पुष्पकलिका को ढँकती हैं, उस आवरण को जालक कहा जाता है। इसमें पुष्पदल बंद रहते हैं। पुष्पदल में केशर बन्द रहते हैं। इसमें बीजाधार होता है। इसके शिराग्र पर वराटक (कौड़ी जैसा खोल) होता है जो केशरदलों से घिरा होता है। वराटक में बीज निर्माण की प्रक्रिया सम्पन्न होती हैं। केशर के सिराग्र पर किंजल्क होते हैं जिनमें परागकण होते हैं। वे किंजल्क केशर में दो तरह से घुसे हुए होते हैं। यथा- प्रान्तसन्धि के रूप में और पृष्ठसन्धि के रूप में। पूर्ववर्ती (प्रान्तसन्धि) रूप में किंजल्क केशर के एक सिरे से जुड़े होते हैं। परवर्ती (पृष्ठसन्धि) में केशर किंजल्क के पृष्ठभाग से जुड़ा होता है। फूल में गन्ध तैलीय होती हैं जिसको परिमल कहा जाता है। पुष्प का मधु मकरंद के नाम से कहा जाता है, यह पुष्प के अन्दर विद्यमान होता है।

अथ वल्लरि लक्षयति –

अथ खलु वल्लरिस्तु शाखाग्रे वा वर्तिता पुष्पवृन्तानामभिवाहिका
मञ्जरिश्च। अष्टविधा वल्लरिर्भवति स्वरूपतश्चतद् यथा
पलाश वल्लरिपङ्क्तिकारकाछत्रागुच्छवल्लरिसङ्कुलौतु
पुच्छिकाक्षमञ्जरिकाश्चेति ॥8॥

अक्ष या शाखा जो आगे के भाग पर प्रस्फुटित होती है अथवा पत्ती के आधार मूल पर लगी होती हैं और जिस पर पुष्प अवस्थित होते हैं, उसको वल्लरि कहा जाता है। इसको मंजरी के नाम से भी जाना जाता है। स्वरूपानुसार वल्लरियाँ या मंजरियाँ आठ भेद वाली होती हैं। यथा- 1. पलाशवल्लरि, 2. पंक्तिवल्लरि, 3. अरकवल्लरि, 4. छत्रावल्लरि, 5. गुच्छवल्लरि, 6. संकुला, 7. ओतुपुच्छिका और 8. अक्षमंजरी।

तत्र पलाशवल्लरि लक्षयति –

तत्र पलाशवल्लरिस्तु पुष्पपत्रेणयुक्ता भवति ॥9॥

यहाँ यह जानना चाहिए कि पलाशवल्लरि प्रायः पुष्पपत्र के साथ होती हैं।

पंक्तिमञ्जरिकाः लक्षयति –

पङ्क्तिमञ्जरिकायां पङ्क्तिक्रमेण पुष्पबन्धनं विद्यात् ॥10॥

द्वितीय, पंक्तिमंजरी को पंक्तियों के क्रम में पुष्पबन्धन रूप में जानना चाहिए।

अरकवल्लरिः लक्षयति –

अरा इव चक्रनाभौ यथा संहतास्तथभूता
पुष्पबन्धनादरकवल्लरिः इति संज्ञायते ॥11॥

यदि किसी चक्र की नाभि में विद्यमान अरों की तरह पुष्पबन्धन केन्द्रस्थ हो तो उसको अरकवल्लरि जानना चाहिए।

छत्राः लक्षयति –

छत्रा तु छत्रस्य कारवसंस्थानैश्च कारविका विज्ञायते ॥12॥

जब अक्ष पर पुष्प छतरी की फैली हुई ताड़ियों की तरह लगे हों तो छत्रा वल्लरि होती है। इसको कारविका भी कहते हैं।

गुच्छवल्लरिः लक्षयति –

गुच्छवल्लरिस्तु गुच्छेन विद्यात् ॥13॥

यदि एक ही अक्ष पर बहुत से पुष्प गुच्छों के रूप में लगे हों तो गुच्छवल्लरि के रूप में जानना चाहिए।

सङ्कुलायाः लक्षयति –

सङ्कुलायां मिश्रेण वैषम्येण वा पुष्पबन्धनं विद्यात् ॥14॥

संकुल नामक वल्लरि में पुष्प बिना किसी क्रम के अर्थात् अपने अक्ष पर अव्यस्थित रूप में जुड़े हुए होते हैं।

ओतुपुच्छिकाः लक्षयति –

ओतुपुच्छिकातु मार्ज्जारपुच्छसंस्थाना ॥15॥

जब कभी पुष्प बिलाव की पूँछ की तरह संस्थागत हो तो वे ओतुपुच्छिका कहे जाएँगे।

अक्षमञ्जरिकाः लक्षयति –

अक्षमञ्जरिका त्वक्षकाण्डमाचक्षते
तद्व्यासतः काण्डगणीये वक्ष्यते ॥16॥

अक्षमंजरिका पत्ती के अक्षमूल पर उगती है। अक्ष काण्डीय होने से इसको तने वाले अध्याय में विस्तारपूर्वक वर्णित किया जाएगा।

अथ द्विविध वल्लरिभेदाह –

पुनश्च वल्लरिर्द्विविधं भवति सशाखाशास्वाभ्याम्।
तत्र सशाखवल्लरिस्तु शाखया विद्यते।
अशाखवल्लर्यां न च शाखा दृश्यते ॥17॥

वल्लरि विभाजन अन्य रूप में दो प्रकारों से भी किया जा सकता है। यथा- 1. सशाख और 2. अशाख। इनमें वल्लरि को सशाख जब कहा जाएगा जब यह शाखाओं में विभक्त हो और अशाख तब कहेंगे जबकि उसमें शाखाएँ दिखाई नहीं दें।

वृन्तं पूर्वमुद्दिष्टं ॥18॥

वृन्त को पूर्व में (पत्ती के अध्याय में) समझाया जा चुका है।

अथ पुष्पमण्डलम् -

पुष्पवृन्ते जालकदलकेशराणां सन्निवेशमण्डलं त्रिविधं भवति।
यथा वृत्तमण्डलं पृथग्मण्डलं मिश्रमण्डलञ्चेति।
तत्र वृत्तेन यद्दलकेशर बन्धनं तद्वृत्तमण्डलम्।
पङ्क्त्या यत् सन्निवेशं तत् पृथग्मण्डलम्।
मिश्रेण मिश्रमण्डलम् ॥19॥

अब पुष्पमण्डल के बारे में कहा जाता है- जालक, पुष्पदल, केशर आदि के वृन्त पर अवस्थित स्वरूप तीन प्रकार का होता है। यथा- 1. वृत्तमण्डल, 2. पृथक् मण्डल और 3. मिश्रमण्डल। उसमें पहले वृत्तमण्डल में पुष्पदल और केशर चकरी के रूप में व्यवस्थित होते हैं। पृथक् मण्डल में पुष्पदल पंक्तियों में विद्यमान होते हैं। अन्तिम मिश्रमण्डल में यह मिश्रित प्रकार से पाया जाता है।

पुष्पाणां जालकदलकेशराश्च प्रायशो वृत्तमण्डलेन
वृन्ते सन्निविष्टं भवति कदाचित् वैषम्येण विद्यात् ॥20॥

अधिकांश पुष्पों में जालक, पुष्पदल और केशर चकरी प्रकार (वृत्ताकार) से व्यस्थित होते हैं। बहुत ही कम अन्य प्रकार से पाए जाते हैं।

अथ जालकलक्षण कथ्यते -

इह खलु जालकं क्षारकं वप्रमित्यनर्थान्तरम् ॥21॥

उपर्युक्त जो जालक होते हैं, उनके दो अन्य पर्याय हैं- 1. क्षारक और 2. वप्र।

प्रकृत्या जालकं हि द्विविधं भवति।
पुष्पान्तजालकं स्थिरजालकञ्च।
तत्र पुष्पान्त जालकं फलाभिव्यक्ते शुष्कं प्रपतितं भवति।
स्थिरजालकन्तु शुष्कं न जायते फलाभिव्यक्तेऽपि।
कस्यचित् स्थिरजालकं वृन्तेन सह संहतं तच्च
वृंत्ताकजालकमाचक्षते एतदेव यद् यद् पुष्पफले
दृश्यते तद् तद् पुष्पफलं वृन्ताकमाचक्षते ॥22॥

प्राकृत रूप से जालक के दो भेद होते हैं- 1. पुष्पान्तक जालक और 2. स्थिर जालक। इनमें पहले पुष्पान्तक प्रकार में वह फल के बनने पर सूखकर गिर जाता है। दूसरे स्थिर रूप में वह जालक फल बनने के बाद सूखकर भी अलग होकर गिरता नहीं है। कभी-कभी स्थिर जालक वृन्त से मजबूत से जुड़ा हुआ रहता है। ऐसे जालक वाले फल या फूल वृन्ताक (जैसे बैंगन के) कहलाते हैं। ऐसे जब-जब पुष्पफल दिखाई देते हैं, तब-तब पुष्पफल वृन्ताक रूप में कहे जाते हैं।

कस्यचित् स्थिरजालकं स्थालकेन सह संहतञ्च।
तत्र जालकं स्वातन्त्रयेण न विद्यते।
एतदेव पिण्डपुष्पेषु दृश्यते॥23॥

कदाचित् स्थिर जालक स्थालक से पूर्णतः जुड़कर विलुप्त हो जाता है जिसे बाद में अलग से, स्वतन्त्र रूप से पहचाना नहीं जा सकता। इस तरह से जालक पिण्डपुष्प में पाए जाते हैं।

पुनश्च द्विविधं जालकमाह -

जालकं पुनर्द्विविधं। युक्तजालकं मुक्तजालकं।
तत्र युक्तजालकं कर्णेन परस्परं युक्तं भवति।
मुक्तजालकन्तु विपर्ययेण विद्यात्॥24॥

पुनः जालक दो प्रकार के हो सकते हैं। यथा 1. युक्तजालक और 2. मुक्तजालक। इनमें से युक्तजालक में कोने परस्पर संयुक्त होते हैं और जब वे स्वतन्त्र रूप में होते हैं तो मुक्तजालक कहे जाते हैं।

आकृतितो जालकं पुष्पदलेन सह प्रायशः साम्यं भवति।
कदाचित् विशेषेण विद्यात्।
तत्र कस्यचित् पुष्पगणस्य जालकं समदलं समकर्णितं भवति।
कस्यचित् गणस्य विषमदलं विकर्णितञ्च वा।
कस्यचिज्जालकमजिनवत् पुष्पस्य छादकं
भवत्येवमजिनजालकमाचक्षते।
कस्यचित् गणस्य जालकं जृम्भितं तच्च जृम्भजालकमाचक्षते।
कस्यचिज्जालकं युक्तं कर्णं वा भवति॥25॥

आकृति (आकार) में जालक प्रायः पुष्पदल जैसे दिखाई देते हैं और कदाचित् भिन्न विशेष स्वरूप भी प्रदर्शित करते हैं। कुछ पुष्पों में जालक के भाग आकार में समान होते हैं जबकि अन्य में ये असमान हो सकते हैं। बहुधा जालक दिखने में त्वचा (छाल) जैसा होता है जिससे पुष्प की रक्षा होती है। ऐसे जालक को अजिन जालक कहा जाता

है। कुछ पुष्पों में जालक बहुत खुले हुए मुँह जैसा स्वरूप ग्रहण कर लेता है, उसको जृम्भजालक कहते हैं। कभी-कभी पंखुड़ियाँ एक-दूसरे से पूरी तरह जुड़ जाती हैं।

अथोपजालकमाह –

कस्मिंश्चिद् गणे वृन्ते वा जालकस्य निम्ने
क्षुल्लकपत्रसङ्काशमुपजालकं दृश्यते ॥26॥

कुछ पुष्पों के वर्ग में जालक के नीचे वृन्त पर छोटी-छोटी पत्तियाँ (क्षुल्लक पत्र जैसी) दिखाई देती हैं, उनको उपजालक कहा जाता है।

मोचिकमाह –

तृणवल्वजानामेव कण्डूलानामक्षमञ्जरिकायां
पुष्पकोरकानामाच्छादनमेककर्णं पट्टिकसङ्काशमधिकमङ्गं
दृश्यते तच्च मोचिकमाचक्षते ॥27॥

तृण परिवार के पौधों में, वल्वज और कण्डुल एक ढँकने वाली पत्ती होती हैं, यह अक्षमंजरी की रक्षा करती हैं, उसको मोचिक कहा जाता है। यह पुष्पकोरक नामक छादन में एक कर्ण और पट्टिक के समान अधिक अंग होगा।

पुष्पदल लक्षयति –

यथा जालकं पुष्पकोरकस्य छादकं भवति तथा
पुष्पदलञ्च केशरवराटका नामाच्छादकञ्च ॥28॥
प्रकृत्या चतुर्विधं हि दलं भवति।
तद् यथा मुक्तदलञ्च युक्तदलञ्च केशराङ्कश्च स्वैरञ्चेति ॥29॥

जिस तरह जालक नन्हीं कलिका (पुष्पकोरक) की सुरक्षा करता है, उसी प्रकार पुष्पदल केशर और वराटक की सुरक्षा करता है। प्रकृति से पुष्पदल चार प्रकार का हो सकता है- 1. मुक्तदल, 2. युक्तदल, 3. केशरांक और 4. स्वैरदल।

तत्र मुक्तदलं विभक्तमसंहतदलेन विद्यात्।
युक्तदलन्तु सङ्घातेने विद्यादेवं कर्णेन युक्तं भवति ॥30॥

यदि पंखुड़ियाँ मुक्त या स्वतन्त्र रहती हैं तो उसको मुक्तदल कहा जाता है। जब पंखुड़ियाँ जुड़ी हुई होती हैं तो उनको युक्तदल कहा जाता है।

केशराङ्कश्च केशरेण सह संहतं भवति।
स्वैरदलञ्च स्वातन्त्र्येण विद्यात्॥
एतदेवं तुङ्गपुष्पमण्डले जालककर्णान्तरे संविशति ॥31॥

केशरांक में केशर पुष्पदल से चिपके हुए होते हैं। स्वैरदल में केशर पंखुड़ियों से

चिपके हुए नहीं होते बल्कि दो अंखुड़ियों के मध्य स्वतन्त्र होता है जैसा कि तुंगपुष्प मण्डल में जालक कोनों के अन्तर में निवेशित होते हैं।

कस्यचिद् गणस्य पुष्पं समदलं समकर्णञ्च भवति।
कस्यचिद् विषमदलं विकर्णञ्च वा॥32॥

कुछ पुष्पों में पंखुड़ियाँ या पुष्पदल थैले के आकार में समान होते हैं। उनको प्रायः समदल कहा जाता है। कुछ अन्य पुष्पों में ये असमान रूप में होते हैं, उनको विषमदल कहते हैं।

अथ पुष्पदलस्य रूपमाह –

आकृतितो मुक्तपुष्पदलं प्रायशः पर्णसङ्काशं भवति।
कस्यचिद् पुष्पस्य दलानि केशलोमशूकसदृशनिभवन्ति।
तदेव लोमशपुष्पं शूकपुष्पं वा प्रचक्षते॥33॥

आकार के अनुसार मुक्तपुष्पदल प्रायः पत्ती के समान होते हैं। कुछ पुष्पों में पंखुड़ियाँ बाल जैसी संरचनाओं में परिवर्तित हो जाती हैं, उनको लोमश पुष्प अथवा शुकपुष्प कहा जाता है।

कस्यचिद युक्तदलं घण्टासंस्थानम्।
कस्यचिद् घटसङ्काशम्।
कस्यचिद् नलकाकारमेव शीर्षकर्णितम्।
कस्यचित् सिंहमुखेन सदृशं जृम्भितञ्च।
कस्यचित् कपोतवक्त्रसङ्काशम्।
कस्यचिद् नासापुटसङ्काशं युक्तदलञ्च भवति।
युक्तदलपुष्पस्य यदङ्गं नलकाकारं तच्च
कुण्डसंज्ञकमेव कुण्डमण्डलं विज्ञायते॥34॥

कुछ युक्तदल पुष्पों में पुष्पदल घण्टा की रचना जैसे होते हैं। कुछ में ये घट आकार में हो जाते हैं। कुछ में ऊपरी ओर से नलिकाओं जैसे हो जाते हैं। कभी ये सिंह के अति खुले (जृम्भित) मुँह जैसे दिखते हैं। कभी-कभार ये कबूतर के मुँह जैसे होते हैं। ये नासापुट के समान अर्थात् उससे मिलते-जुलते भी होते हैं। युक्तदल वाले पुष्पदल के नलीदार भाग को कुण्ड संज्ञक और कुण्ड-मण्डल जानना चाहिए।

अथ केशरास्तु लक्षयति –

केशरास्तु किञ्जल्काधाराः। तेषामधिष्ठानभेदेन त्रिधा भिद्यते।
यथा दलोत्सङ्गश्च स्थालकीश्च वराटोत्सङ्गश्चेति।

किंजल्क के आधार अर्थात् वह अंग जिस पर किंजल्क लगे होते हैं, केशर कहा जाता है। केशर अधिष्ठान भेद से तीन प्रकार के होते हैं। यथा- 1. दलोत्संग, 2. स्थालकी और 3. वराटोत्संग।

तत्र दलोत्सङ्गकेशरस्तु दलेन सह संसक्तं भवति।
स्थालकीस्तु स्थालकात् सञ्जायते एव मुक्तकेशर इत्याचक्षते।
वराटोन्सङ्गश्च वराटे नलकसदृशेन सङ्घातेन संवीतं भवति।

जब केशर पंखुड़ियों से चिपके हुए रहते हैं तो उनको दलोत्संग कहा जाता है। जब केशर सीधे स्थालक से उगे हुए होते हैं और स्वतन्त्र होते हैं तो उनको स्थालकी कहा जाता है। इसी प्रकार जब केशर आपस में युक्त होकर वराटक के चारों ओर नालिका सी बना देते हैं, तो उन्हें वराटोत्सग कहा जाता है।

एव संहतकेशरश्च आयामभेदेन पुनर्द्विविधः
समकेशरो विषम केशरश्च।
तत्र समकेशरो दैर्घ्येण समो भवति विषमस्तु वैष्यमेण विद्यते।।35।।

संहत केशर के पुनः आयाम भेद से दो प्रकार होते हैं। यथा- 1. समकेशर और 2. विषमकेशर। यदि वे समान लम्बाई के होते हैं तो समकेशर और विभिन्न लम्बाइयों वाले होते हैं तो विषमकेशर जानना चाहिए।

अथ केशररूपामाह -

आकृतितो नामतश्च केशराः पुनः पञ्चविधा भवति
तद् यथा तुङ्गश्च मञ्जुश्च पन्नगीश्च वाजीक्रान्तश्च उर्मिकेशरश्चेति।

किंजल्क की आकृति के अनुसार केशर पुनः पाँच प्रकार के होते हैं। यथा- 1. तुंगकेशर, 2. मंजुकेशर, 3. पन्नगीकेशर, 4. वाजीक्रान्त और 5. उर्मिकेशर।

तत्र तुङ्गस्तु तुङ्गशीर्षेण किञ्जल्केन विद्यात्।
मञ्जुश्च मञ्जुलेन किञ्जल्केन विद्यात्।
पन्नगीश्च पन्नगफण इव किञ्जल्केन विद्यात्।
वाजीक्रान्तस्य वाजीपदलाञ्छनं किञ्जलकं भवति।
उर्मिकेशस्तुर्मिवत् वराटकाच्छादकश्चैव
कर्णसंस्थानेन परस्परेण संहतश्च।।36।।

इनमें तुंगकेशर में किंजल्क तन्तु के सिर पर लगा होता है। मंजुकेशर कोटि में किंजल्क सुन्दर रूप से जुड़ा हुआ होता है। पन्नगीकेशर में किंजल्क नाग के फण सरीखे दिखाई देते हैं। वाजीक्रान्त में केशर में किंजल्क घोड़े के खुर के समान होते हैं। इसी

प्रकार उर्मिकेशर में केशर आपस में सिरों से जुड़कर वराटक को आच्छादित कर देते हैं और एक लहर (तरंग, उर्मि) के समान दिखाई देते हैं।

अथ बीजाधारः लक्षयति –

अथ बीजाधारः फलसंज्ञकश्च खलु बीजानामाधार आशयश्च।
सतु सन्धितासन्धिताभ्यां द्विविधो भवति।
तत्र सन्धितबीजाधारस्तु विदरसंज्ञकं भवति।
असन्धितस्तु कुड्यसंज्ञकमाचक्षते ॥37॥

बीज बीजाधार में ही बनते हैं जिसका (बीज का) सन्दर्भ फल से भी है। सन्धित और असन्धित रूप में यह दो प्रकार का होता है। यथा– 1. विदर और 2. कुड्य। जब बीजाधार सन्धित होता है, विदर होता है और असन्धित हो तो कुड्य संज्ञक कहा जाता है।

अथ बीजाधार वर्तकः लक्षयति –

ततो बीजाधारश्च खलु प्रकृत्या कश्चिदेकवर्तको
बहुवर्तको वा कश्चिद् भवति।
वर्तकस्तु पुप्लिकेन च पुषेण वा विभक्त आशयः पुटकश्च।
पुनरेव बीजाधारस्त्रिविधं भवति पुष्पभेदेन यथा पुष्पक्रान्तश्च
संवृतश्च पुष्पशीर्षकश्चेति।

जो बीजाधार होता है, वह प्रकृति से 1. एकवर्तक और 2. बहुवर्तक हो सकता है। बीजाधार पुप्लिक और पुषा से वर्तकों (कोष्ठों) में विभाजित होता है। पुष्पों की प्रकृति के अनुसार बीजाधार को पुनः तीन प्रकार से नामित किया जा सकता है। यथा–1. पुष्पक्रान्त, 2. संवृत और 3. पुष्पशीर्षक।

तत्र पुष्पक्रान्त बीजाधारः पुष्पगर्भे सन्निविष्टं भवति।
संवृत्तबीजाधारस्तु यस्मिन्नुलुखलनिभदलकेशर-
सङ्घाताङ्गेन संवृत्तं भवति।
पुष्पशीर्षकबीजाधारश्च बीजाधारशीर्षे पुष्पं सन्निविष्टं भवति ॥38॥

उक्त प्रथम पुष्पक्रान्त प्रकार में बीजाधार पुष्पप्रकोष्ठ के गर्भ में विद्यमान होता है। संवृत्त प्रकार में बीजाधार पुष्पदल और केशर के संयुक्त होकर बने नलिका अंग के उखुल के समान अन्दर बन्द होता है। अन्तिम पुष्पशीर्षक प्रकार में बीजाधार नीचे होता है और उस पर अन्य कतारें आ जाती हैं।

अथ वराटकः लक्षयति –

पुष्पगर्भे केशरवेष्टिते बीजाधारशीर्षे यस्मिन्नङ्गे
बीजाधानं भवति स तु वराटकः।

स च पुष्पगणविशेषेण ह्येकशीर्षं द्विशीर्षं बहुशीर्षञ्च भवति।
एव युक्तशीर्षं वा मुक्तशीर्षञ्च।

बीजाधार के ऊपरी सिरे जो केशरों से घिरे होते हैं और जिसमें बीज उत्पन्न होते हैं, उसको वराटक कहा जाता है। इसमें एक, दो अथवा अनेक शीर्ष (वर्तिकाग्र) पुष्प के अनुसार हो सकते हैं। वर्तिकाग्र अलग-अलग या संयुक्त हो सकते हैं।

कस्यचिद् गणस्य वराटको दीर्घं नलकाकारञ्च
क्वचिद् खर्वं कश्चिद् वर्तुलं वा भवति।
ततश्च वराटबीजाधारयोः सन्धिर्वराटसङ्गमश्च॥39॥

कदाचित् कोटियों में वराटक लम्बा नलीदार, खर्व (छोटा) अथवा वर्तुलाकार हो सकते हैं। बीजाधार और वराटक को जोड़ने वाला भाग वराटसंगम कहलाता है।

अथ बीजमावर्तनः प्रक्रियामाह –

यदा वराटके परागो मकरन्देन सह सम्प्रयोगं भवति
तदा बीजकोषे बीजमावर्तते कालप्रकर्षाच्च॥40॥

जब मकरन्द के साथ परागकण वराटक के सम्पर्क में आते हैं, तब बीजकोष में समयोचित रूप से बीज बन जाते हैं।

अथ स्थालकः लक्षयति –

अथ खलु पुष्पाधारस्तु स्थालकं यत्तु कस्यचिद्
गणीयस्य पुष्पवृन्तस्योपरि संहतं भवति।
कस्यचिद् गणस्य जालकस्योपरि स्थालकं दृश्यते।

समस्त पुष्पों के प्रसंग में यह ज्ञातव्य है कि जिस अक्ष पर पुष्प लगे होते हैं, उसको स्थालक कहते हैं। कभी-कभी यह वृन्त से मजबूती से जुड़ा होता है। कुछ पुष्प वर्गों में यह स्थालक अंखुड़ियों के चक्र (जालक) से ऊपर दिखाई देता है।

प्रकृत्या स्थालकं त्रिविधम्। तद् यथा कुण्डं फल्गु पिण्डञ्चेति।
तत्राद्यं शरावसंस्थानम्। द्वितीयमन्तरावकाशं वृत्तपरिमण्डलञ्च।
तृतीयं पिण्डसंस्थानमायतं वर्तुलं वा भवति॥41॥

अपनी प्रकृति के अनुसार स्थालक तीन प्रकार के होते हैं। यथा- 1. कुण्ड, 2. फल्गु और 3. पिण्ड। इनमें से पहला कुण्ड नामक स्थालक सकोरे (शराव मृण्पात्र) की तरह स्थित होता है। दूसरा फल्गु प्रकार है जो गोलमण्डलीय और खोखला होता है। तीसरे पिण्ड प्रकार का स्थालक आयताकार, ठोस और गोल संरचना वाला होता हैं।

अथ पुष्पगणविभागमाह –

खलु पुष्पाणामधिष्ठानतः प्रकृतितश्चाकृतितश्च नामतश्च वर्णतश्च
गणविभागं प्रत्यक्षेण यदुपलभ्यते तदनुव्याक्ष्यास्यामः ।।42 ।।

मुनि पराशर ने आगे कहा कि अब मैं विभिन्न प्रकार के पुष्पों का उनकी प्रकृति, आकृति (रूप) और उनकी स्थिति (तने पर), नाम (संज्ञा) और वर्ण (रंग) के अनुसार और जैसे वे प्रत्यक्षतः दिखाई देते हैं- ऐसे वर्गवार वर्णन करूँगा।

तत्राधिष्ठानभेदः लक्षयति –

तत्राधिष्ठानभेदेन पुष्पन्तु त्रिविधं विद्यात्।
यथा कुक्षिपुष्पञ्च काण्डपुष्पञ्च वल्लरिपुष्पञ्चेति ।।43 ।।

उनमें अधिष्ठान भेद (तने की स्थिति) के अनुसार पुष्पों को तीन समूहों में रखा जा सकता है- 1. कुक्षिपुष्प, 2. काण्डपुष्प और 3. वल्लरिपुष्प।

तत्राद्य कुक्षिपुष्पाः –

यानि पुष्पाणि खल्वेकैकेन वा गुच्छेन पत्रकुक्षौ
सन्निविष्टानि तानि कुक्षिपुष्पगणीयानि भवन्ति।
एतदेव त्वेकपुष्पवल्लरिः केचिदाचक्षते ।।44 ।।

वे पुष्प जो अकेले या गुच्छ रूप में पत्ती के वृन्तमूल में विकसित होते हैं, कुक्षिपुष्प कहे जाते हैं। इनको एकपुष्प वल्लरि भी कहा जा सकता है।

द्वितीयः काण्डपुष्पाः –

यानि पुष्पाणि एकैकेन वा गुच्छेन काण्डे
समुद्भवन्ति तानि काण्डपुष्पगणीयानि भवन्ति ।।45 ।।

वे सभी पुष्प जो एक-एक रूप में अथवा गुच्छ रूप में तने पर उत्पन्न होते हैं, उनको काण्डपुष्प वर्ग में रखा जाता है।

इत्योपरान्त वल्लरिपुष्पाः –

यानि पुष्पाणि शाखाग्रे वल्लयां सन्निविष्टानि
तानि वल्लरिपुष्पगणीयनि स्युः ।।46 ।।

शाखा के आगे मंजरी में सन्निविष्ट होकर आने वाले पुष्पों को वल्लरि पुष्प वर्ग में गिना जाता है।

अथ कूर्चपुष्पाः लक्षयति –

केषाञ्चित वल्लरिपुष्पाणां वृत्तं नास्ति तानि पुष्पाणि बहुनि
खल्वेकजालकेन वेष्टितानि वल्लयाँ कुण्डस्थालकस्योपरि

कूर्चाकारेण सन्निविष्टानि भवन्ति एतानि वल्लरिपुष्पाणि
कूर्चसंज्ञकानि। तेषां बीजाधारस्तु पुष्पशीर्षकञ्च भवति।
एतदेव कूर्चपुष्पं संज्ञायते।।47।।

कुछ पौधों में वल्लरिपुष्पों में वृत्त नहीं होता। मंजरी पर बड़ी संख्या में गौणपुष्प चपटी थाली के रूप में आए होते हैं (कुण्ड स्थालक), जो उसी जालक में बन्द होते हैं। मंजरी कूर्चि के आगे दिखाई देती हैं। ऐसे वल्लरिपुष्पों की संज्ञा कूर्च होती है। इनमें बीजाधार पुष्प शीर्षक होता है। ऐसे पुष्पों को कूर्चपुष्प कहा जाता है।

अथ सफलनिष्फलश्च पुष्पा: –

पुष्पञ्च प्रकृत्यैव पुनः सफलनिष्फलभेदेन द्विविधं विद्यात्।
तत्र बीजकोषयुक्तत्वेन सफलं भवति। निष्फलन्तु विपर्ययेण।

पुष्प अपनी प्रकृति से ही 1. सफल और 2. निष्फल हो सकते हैं। एक पुष्प को सफल तब कहा जाता है जबकि उसमें बीजाधार विद्यमान होता है। जब वह अनुपस्थित हो तो निष्फल कहलाता है।

तस्मात् केचित् वृक्षाः सफलाः केचित् निष्फलाश्च भवन्ति।
कदाचिदेकेस्मिन् वृक्षे युगपत् सफलं निष्फलं
पुष्पञ्च दृश्यते। एवञ्च वल्ल्यांम्।।48।।

इसी प्रकार पौधों में भी कोई सफल और कोई निष्फल हो सकते हैं। कदाचित् ही कभी सफल और निष्फल पुष्प एक ही पौधे पर होते हों अथवा एक ही वल्लरि पर आते हों।

अथ पुष्पगणानां बीजाधारभेदमाह –

प्रकृत्या पुनः कश्चित् पुष्पगण एक बीजाधारः
कश्चिद् द्विबीजाधारो बहुबीजाधारश्च कश्चिद्भवति।।49।।

प्रकृति के अनुसार पुष्पों की कोटियों में 1. एक बीजाधार 2. दो बीजाधार और 3. अनेक प्रकार के बीजाधार हो सकते हैं।

अथ प्रत्यक् पुष्पा: –

केषाञ्चित् पुष्पगणानां कुट्मलो वल्लयाँमूर्ध्वमुखञ्च
विकशिते विपर्ययं भवति।
एष गण प्रत्यक्पुष्पं विज्ञायते।।50।।

पुष्पवर्गीय कुछ भेदों में वल्लरि में पुष्पकलिकाओं के मुँह ऊपर की ओर होते हैं लेकिन जब वे खिलते हैं तो उनकी दिशा बदल जाती हैं, उनको प्रत्यक् पुष्पगण में जानना चाहिए।

पुनश्च व्यक्ताव्यक्तकेशरभेदात् पुष्पाः –

पुनः पुष्पं व्यक्ताव्यक्तकेशरभेदेन द्विविधम्।
तत्र व्यक्तकेशरपुष्पाणां केशरश्च दलेन सह व्यक्तो भवति।
अव्यक्तकेशराणान्तु केशरश्च कुण्डेन
संवृत्तत्वाद् व्यक्तो न भवति॥51॥

तत्पश्चात् पुष्पों को 1. व्यक्त और 2. अव्यक्त केशर भेद से दो प्रकार का जानना चाहिए। उन पुष्पों को व्यक्त कहा जाता है जिनमें पंखुड़ियों के खिलने के साथ ही केशर भी बाहर जाते हैं। वे अव्यक्त कहे जाते हैं जिनमें केशर पुष्पदल में बन्द रहते हैं और दिखाई नहीं देते हैं।

तत्र चन्द्रकान्तरविकान्तश्च पुष्पभेदाः –

पुष्पं पुनरेव, द्विविधं विद्यात् सोमसूर्यसम्बन्धात्।
तत्र पुष्पाणि यानि विकशितानि रजन्यां तानि
चन्द्रकान्तगणीयानि भवन्ति निशा हि चन्द्रबलवत्त्वात्।
यानि तु पुष्पाणि दिवायां विकसन्ति तानि
रविकान्तगणीयानि दिवसं हि रविबलत्त्वात्॥52॥

पुष्पों को पुनः दो प्रकार- चन्द्रमा और सूर्य के सम्बन्धों से जानना चाहिए। इनमें जब पुष्प रात्रिकाल में चन्द्रमा के प्रभाव से खिलते हों, वे चन्द्रकान्त वर्ग वाले होते हैं। जो पुष्प दिवसकाल में सूर्य के बल से विकसित होते हैं, वे रविकान्त वर्ग में होते हैं।

तत्र ऋतुपुष्पसदापुष्पश्च भेदाः –

ऋतुपुष्पसदापुष्पभेदेन पुनरेव द्विविधम्।
तत्र निर्दिष्टकालजातानि पुष्पाणि ऋतुसंज्ञकानि।
अनिर्दिष्टकालजातानि तु सदापुष्पाणि स्युः॥53॥

फूल पुनः 1. ऋतुपुष्प और 2. सदापुष्प नाम से दो प्रकार के होते हैं। इनमें जो पुष्प एक वर्ष में किसी निश्चित समय पर खिलते हैं, उनकी संज्ञा ऋतुपुष्प होती है। अनिर्दिष्ट कालजात अर्थात् जो पुष्प वर्ष पर्यन्त खिलते रहते हैं, वे सदापुष्प कहे जाते हैं।

पुनश्च व्यक्ताव्यक्तभेदाः –

द्विविधं हि पुनः पुष्पं व्यक्ताव्यक्तभेदेन।
तत्र व्यक्तपुष्पाणां दलकेशरवराटकानि स्फुटानि स्युः।
अव्यक्तानान्तु दलकेशरवराटकानि
फल्गुस्थालकेन संवृतत्वाद् न दृश्यन्ते॥54॥

पुनः पुष्पों को दो प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है- 1. व्यक्त और 2. अव्यक्त भेद वाले फूल। इनमें वे व्यक्त पुष्प होंगे जो पुष्प पूर्णतः खिले हुए हों तथा पंखुड़ियाँ, केशर और वराटक भी विकसित होते हों। अव्यक्त पुष्प वे होंगे जिनकी पंखुड़ियाँ, केशर और वराटक फल्गुस्थालक में बन्द रहते हों जो कि वृत्ताकार और खोखला होता है और इस प्रकार दिखाई नहीं देते हैं।

पुनरपि दलभेदात् पुष्पाः -

पुनः पुष्पं दलभेदेन द्विविधम्।
मुक्तदलपुष्पं युक्तदलपुष्पञ्च।
तत्र मुक्तदलपुष्पं स्वतन्त्रदलेन विद्यात्।
युक्तदलपुष्पन्तु संहतदलेन भवति॥55॥

इसके अतिरिक्त पँखुड़ियों के भेद से पुष्पों के दो प्रकार होंगे- 1. मुक्तदल पुष्प और 2. युक्तदल पुष्प। इनमें मुक्तदल वे पुष्प होंगे जब पंखुड़ियाँ एक दूसरे से स्वतन्त्र हों और युक्तदल वे पुष्प होंगे जिनमें पंखुड़ियाँ एक दूसरे से संयुक्त हों।

अथ संस्पृष्टसंस्फुटाभ्यां पुष्पाः -

पुनरेवपुष्पं द्विविधं संस्पृष्टसंस्फुटाभ्याञ्च।
तत्र संस्पृष्टदलपुष्पं यच्च दलेन परस्परेण
श्लिष्टं भवत्येवं दलानां कृत्स्नाङ्गमस्फुटञ्च।
संस्फुटदलन्तु परस्परेण न च श्लिष्टं भवत्येवं स्फुटतरञ्च॥56॥

पुष्प और भी दो प्रकार के हो सकते हैं। यथा- 1. संस्पृष्ट और 2. संस्फुट। इनमें संस्पृष्ट वर्गीय पुष्प उसको कहा जाता है जिसमें पंखुड़ियाँ एक दूसरे से श्लिष्ट या जुड़ी हों और विस्तार में अस्फुट हों। पुष्प तब संस्फुट वर्गीय होगा जबकि पँखुड़ियाँ एक दूसरे से स्वतन्त्र हों और एक दूसरे पर नहीं आती हों।

अथाङ्गभेदानुसार पुष्पाः -

अङ्गभेदेन पुनरेव पुष्पं द्विविधम्।
समाङ्गपुष्पं हीनाङ्गपुष्पं च।
तत्र समाङ्गपुष्पं दलकेशरवराटकबीजाधारैश्च कृत्स्नाङ्गं भवति।
हीनाङ्गपुष्पन्तु विपर्येण।

इसी प्रकार अंग भेद के अनुसार पुनः पुष्प दो प्रकार के होते हैं। यथा- 1. समांगपुष्प और 2. हीनांगपुष्प। वे पुष्प समांग वर्ग के कहे जाएँगे, जिनमें पंखुड़ियाँ, केशर, वराटक और बीजाधार सभी विस्तृत रूप से विद्यमान हों। वे हीनांग पुष्पवर्ग के तब होंगे जबकि उक्त अंगों में से कोई अंग नहीं मिलता हो अर्थात् उक्त लक्षणों के विपरीत हों।

पुनश्च हीनाङ्गस्य भेदाः –

एवं द्विविधेन भिद्यते।
आद्यं बीजाधारहीनेन मञ्जुपुष्पमाचक्षते केशरपुष्पञ्च।
द्वितीयं दलकेशरहीनेन रण्डपुष्पं विज्ञायते श्रीपुष्पञ्च।
बीजाधारहीनत्वाद् मञ्जुपुष्पं निष्फलं च भवति।

हीनांग पुष्प भी दो प्रकार के हो सकते हैं। इनमें से पहला प्रकार उनका है जो पुष्प बीजाधार से हीन हों, वे मंजुपुष्प कहे जाते हैं। केशरपुष्प भी उनका ही नाम है। द्वितीय प्रकार में पंखुड़ियाँ और केशर नहीं पाए जाते हैं। वे रण्डपुष्प कहे जाते हैं अथवा श्रीपुष्प भी उनकी संज्ञा है। यह स्वाभाविक है कि मंजुपुष्प निष्फल होंगे क्योंकि उनमें बीजाधार नहीं होता है।

कदाचिदेकस्मिन् वृक्षे वल्ल्याञ्च युगपदुभयं पुष्पं दृश्यते।
रण्डपुष्पन्तु प्रायशस्त्रिवर्तकं त्रिशीर्षवराटकं भवति।
यदैकस्मिन् वल्ल्याँ युगपदुभयपुष्पं भवति
तदा स गणो मञ्जुश्रीपुष्पेण संज्ञायते।
कस्यचिद् गणस्य श्रीपुष्पस्य दलभस्ति॥57॥

यह अत्यन्त दुर्लभ ही होगा कि युग्पद अर्थात् नर और मादा पुष्प एक ही पौधे पर विकसित होते हों या एक ही मंजरी पर उगते हों। प्रायः रण्ड या श्रीपुष्प में बीजाधार त्रिकोष्ठी और वराटक में तीन वर्तिकाग्र होते हैं। यदि नर और मादा पुष्प एक ही मंजरी पर आते हैं तो उसका मंजुश्री पुष्प नाम होगा। कोई इस वर्ग को श्रीपुष्प के दल का भी कहते हैं।

अथ बीजाधारव्यञ्जनेन पुष्पमण्डलमाह –

अथ बीजाधारव्यञ्जेन पुष्पमण्डलं चतुर्विधं भवति।
तद् यथा तुन्दमण्डलं कुम्भमण्डलं
तुङ्गमण्डल वाटयमण्डलं चेति।

स्थालक पर बीजाधार की स्थिति के अनुसार पुष्पों को चार समूहों में विभाजित किया जा सकता है। यथा– 1. तुन्दमण्डल, 2. कुम्भमण्डल, 3. तुंगमण्डल और 4. वाटयमण्डल।

तत्र तुन्दमण्डलगणाः –

तत्र तुन्दमण्डलगणीयस्य दलकेशराश्च बीजाधारनिम्ने
सन्निविष्टा भवन्ति तस्मात् पुष्पक्रान्तबीजाधारो भवति।

इनमें से तुन्दमण्डल वर्ग वहाँ होगा जहाँ कि पँखुड़ियाँ और केशर बीजाधार के नीचे सन्निविष्ट होंगे और बीजाधार को पुष्पक्रान्त कहेंगे।

कुम्भमण्डलगणाः –

कुम्भमण्डलगणीयस्य दलकेशरास्तु
बीजाधारशीर्षे सन्निविष्टा भवन्ति।
तस्मात् पुष्पशीर्षबीजाधारो भवति।
एतदेव युक्तमुक्तदलाभ्यान्तु द्विविधम्।

यदि पुष्प की पंखुड़ियाँ और केशर बीजाधार के ऊपर लगे हों तो वहाँ कुम्भमण्डल वर्ग होगा। ऐसे में वहाँ बीजाधार पुष्पशीर्ष से होगा। ऐसी स्थितियाँ युक्तदल और मुक्तदल दोनों पुष्पों में हो सकती हैं।

तुङ्गमण्डलगणाः –

तुङ्गमण्डलगणीयस्य कुण्डस्यालकस्योपरि
जालकदलोन्सङ्गकेशरैश्च वृत्तमण्डलेन वराटं संवेष्टयेत्
बीजाधारश्च स्थालकोत्सङ्ग भवति।

जब अंखुड़ियाँ, पंखुड़ियाँ और दलोत्संग केशर चक्राकार होकर स्थालक में संलग्न हों और केन्द्र में वराटक को घेरे हों तथा बीजाधार स्थालक से संयुक्त हो तब पुष्प को तुंगमण्डल वर्ग वाला कहा जाएगा।

इत्योपरान्ते वाटयमण्डलगणाः –

वाटयमण्डलगणीयस्य बीजाधारवराटकयोः सङ्गमे तूलुखल
सदृशसंहतदलकेशैश्च नलकाकारेण बीजाधारमावृतं भवति।
तस्माद्वराटोत्सङ्गकेशराश्च भवन्ति चैव संवृतबीजाधारश्चेति।।58।।

इसी प्रकार जो वाटयमण्डल वर्ग है, उसमें पंखुड़ियाँ, केशर संयुक्त हों और वराटक के चारों ओर ओखली के समान संहत दल के केशों की रचना हो, नलक के आकार से बीजाधार आच्छादित हों। इस तरह वराटोत्संग केशर होंगे और बीजाधार संवृत कहा जाएगा।

अथाकृतितः समविषमञ्चगणाः –

खलु पुष्पागणामाकृतितश्च क्वचित् समगणीयं
क्वचिद् विषमगणीयश्च भवति।

समस्त पुष्पों को आकृति के अनुसार 1. कुछ समगणीय और कुछ 2. विषमगणीय वर्ग में भी गिना जा सकता है।

तत्र समगणीयन्तु दल केशरेषु समसङ्ख्येयं भवति।
विषमगणीयञ्च वैषम्येण विद्यात्।

समगणीय वर्ग वहाँ पर होगा जहाँ कि पंखुड़ियाँ और केशर दोनों समसंख्यक होते हैं। विषमगणीय वर्ग में उनको विषम संख्यक जानना चाहिए।

तत्र वञ्जुलः लक्षयति –

यदैकस्य जात्याः पुष्पलक्षणे भिन्नजात्याः फललक्षणं
लक्ष्यते तदा तत् वञ्जुलं संज्ञायते ॥59॥

यह ज्ञातव्य है कि जब एक ही प्रजाति के पुष्पों के लक्षण हों लेकिन फलों के लक्षण भिन्न-भिन्न प्रजाति के दिखाई देते हों तब उसको वंजुल कहा जाएगा।

अथ स्तबकपुष्पाः –

पुष्पाणि प्रायशः पञ्चदलानि पञ्चकर्णानि भवन्ति।
यान्युपर्युपरि निसृष्टानि बहुदलानि तानि स्तबकपुष्पाणि स्युः ॥60॥

पुष्प प्रायः पाँच पंखुड़ियों और पाँच कर्णों वाले होते हैं। किसी पुष्प में पंखुड़ियों की विभिन्न चकरियाँ एक के बाद एक ऊपर व्यवस्थित हों, उसको स्तबक पुष्प कहा जाता है।

स्तबकपुष्पानामन्तरमण्डल बहिर्मण्डलाभ्यां संज्ञायते ॥61॥

उक्त स्तबक पुष्प भी 1. अन्तरमण्डल और 2. बहिर्मण्डल- इन दो नामों से कहे जाते हैं।

अथ वर्णानुसारेण पुष्पभेदाः –

खलु वर्णतः पुष्पाणि नानाविधानि स्युः।
तद् यथा श्वेत-पीत-रक्ता-रुण-श्याम-नील विविधानि भवन्ति।
एतैश्च वर्णैश्च वृक्षवल्लीगुल्मानां वर्णो बुभुत्सितव्य इति ॥62॥

समस्त पुष्प रंगों के अनुसार अनेक प्रकार के हो सकते हैं। यथा- सफेद फूल, पीले फूल, लाल फूल, सूर्योदय के समान रंग (अरुण वर्ण) वाले फूल, गहरे भूरे और नीले फूल। इस प्रकार फूलों के अनेक रंग होते हैं। पौधों, वल्लरियों और झाड़ियों के खिलने पर रंगों से भी पहचाना जाता है।

अपरिसङ्ख्येयानां वृक्षवल्लीगुल्मानां पुष्पानां
प्रकृतिनामलिङ्गानि ह्यसङ्ख्यानि भवन्ति।

पेड़ों, झाड़ियों और लताओं पर प्रचुर संख्या में पुष्प पाये जाते हैं और इनमें रूप, आकार, नामों और लिंगों की संख्या में भिन्नता पाई जाती हैं।

अत्रैव नामतः कतिपयाविष्कृततमा
मण्डलोक्तपुष्पगणा उदाहृताः स्वभावाश्च।
इह ये चानुक्ता गणास्ते स्वे-स्वे काण्डे वक्ष्यन्ते ॥63॥

अब कुछ परिवार समूहों के पुष्पों के स्वाभाविक लक्षणों का यहाँ वर्णन किया जाएगा। जिनके गणों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है, उनको आगे उनसे सम्बन्धित काण्डों (विशिष्ट उल्लेख वाले प्रसंगों) में वर्णित किया जाएगा।

अथ चूतगणीयम् –

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चूतपुष्पस्य लक्षणम्।
मण्डलं चूतपुष्पस्य विमुक्तं दलकेशरम्॥

अब चूतपुष्पों (आम की मंजरियों) के लक्षणों को कहता हूँ। आम के पुष्पों के मण्डल में पंखुड़ियाँ और केशर एक दूसरे से स्वतन्त्र होते हैं।

खुड्डाकं तुन्दमण्डलं सशाखमधुमञ्जरिः।
जालकञ्च दलञ्चैव पञ्चभवति तत्र वै॥

उनमें पुष्प छोटे और तुन्द मण्डलीय होते हैं। शाख सहित मधु मंजरी (वसंत वेला में आने वाली) होती है। उनमें अंखुड़ियाँ और पंखुड़ियाँ पाँच-पाँच की संख्या में होती हैं।

आरक्तखर्वकिञ्जल्कैः पञ्चैव केशरान्वितम्।
वराटैकं भवेत्तत्र मुक्तञ्चैव समुच्छिरतम्॥

उनमें लाल वर्ण वाले छोटे किंजल्क होते हैं और वे पाँच केशर से युक्त होते हैं। उनमें एक वराटक होता है और स्वतन्त्र उच्छिरत होता है।

पुष्पक्रान्तं फलं तत्र कुड्याख्यमेकवर्तनम्।
बीजमेकं भवेत्तत्र कीरवोसङ्काष्टिकं स्मृतम्॥
बीजस्य बन्धनं तत्र वृन्तान्तिकेन दृश्यते॥64॥

उनमें फल पुष्पक्रान्त और कुण्ड नामक एक वर्तन होगा। उनमें एक बीज (गुठली) होता है और बीज के खोल को कठोर रूप वाला जानना चाहिए। बीज का बन्धन अथवा उसका जुड़ाव वृन्तान्तिक (रेशेदार) दिखाई देता है।

अथ समगणीयम् –

समी तु तुन्दमण्डला विषमा विदला स्मृता।
पञ्चमुक्तदलैश्चैव युक्तजालककर्णितैः॥

समी के परिवार समूह में पुष्प पूर्वोक्त तुन्दमण्डलीय, पंखुड़ियाँ विषम संख्या में और विदलाकार जानना चाहिए। उनमें पाँच स्वतन्त्र पंखुड़ियाँ होती हैं और अंखुड़ियाँ संयुक्त जालक, थैलीनुमा होती हैं।

दशभिः केशरैर्विद्यात् समीपुष्पस्य लक्षणम्।
समी सिम्बिफला ज्ञेया पार्श्वबीजा भवेच्च सा॥

केशर की संख्या दस जाननी चाहिए- ऐसे समी पुष्प के लक्षण होते हैं। इसी तरह समी के सिम्बिफलों को जानें। उनमें बाजू में बीज होते हैं।

वक्रं विकर्णिकपुष्पं शूकाख्यपुष्पमेव च।
एतैश्च पुष्पभेदैस्तु भिदयन्ते समिजातयः ॥65॥

इनमें टेढ़े, विकर्णिक पुष्प और शुक नामक पुष्प कहलाता है। ऐसे पुष्पभेद समिजातियों में जानने चाहिए।

अथ पुप्लिकगणीयम् -

पुप्लिकपुष्पगणीये मुक्तञ्च दलकेशरम्।
विषमं तुन्दमण्डलं मञ्जरिमाधवोद्भवा॥

पुप्लिक पुष्प वर्ग में पँखुड़ियाँ और केशर स्वतन्त्र (अलग-अलग) होते हैं। वे विषम संख्यक, तुन्द मण्डलीय होते हैं और उनमें मंजरी वैशाख (वसन्त वेला) में उत्पन्न होती हैं।

जालकं पञ्चविज्ञेयं दलञ्चैव तथा भवेत्।
केशरैर्बहुभिश्चैव किञ्जल्कं प्रान्तग्रन्थिकम्॥

जालकों की संख्या पाँच जाननी चाहिए, पंखुड़ियाँ भी वैसी होती हैं। केशर अनेक संख्या में होते हैं और किंजल्क प्रान्तग्रन्थिक अर्थात् आधार से जुड़े होते हैं।

विभक्तं वराटञ्चैव शीर्षन्तु बहुकर्णितम्।
अखण्डं फलवल्कलं शस्यञ्च केशरनिभम्॥

उनमें वराटक विभक्त रूप में होता है और शीर्षक बहुत कर्णों में बँटा होता है। अखण्ड फल रेशे समेत और शस्योत्पाद केशर के समान होता है।

पुष्पक्रान्तं फलं शस्यं विभक्तं बहुपुप्लिकैः।
दृश्यन्ते बहुबीजानि पुप्लिकान्तर्गतेन च।
एतानि लक्षणानि हि भवन्ति पुष्पमण्डले॥66॥

पुष्पक्रान्त वर्ग का फल का आहारयोग्य भाग बहुत प्रकोष्ठों में विभक्त होता है। उन कोष्ठकों के अन्तर्गत बहुत से बीज दिखाई देते हैं। इस प्रकार के लक्षण उक्त पुष्प मण्डल हैं।

अथ स्वस्तिकगणीयम् -

अथातः स्वस्तिकपुष्पं वक्ष्यामि सर्वलक्षणैः।
स्वस्तिकं तुन्दमण्डलं वल्लर्यां पङ्क्तिबन्धनम्॥

मुनि पराशर बोले कि अब मैं स्वस्तिक पुष्प को समस्त लक्षणों सहित कहता हूँ। स्वस्तिक पुष्प पूर्वोक्त तुन्द मण्डलीय और वल्लरियों में कतारबद्ध होते हैं।

जालकं स्वस्तिकाकारं पुष्पान्तं मुक्तमेव च।
चतुर्दलञ्च मुक्तञ्च षड्मुक्तकेशरान्वितम्॥

उनमें जालक स्वस्तिक के आकार वाले और पुष्प मुक्तदल होता है। इसमें चार पंखुड़ियाँ स्वतन्त्र होती हैं और ये छह अलग-अलग केशरों से युक्त होते हैं।

तेषां द्वौ खर्वकेशरौ भवतः पुष्पमण्डले।
युग्मं वराटकं युक्तं फलञ्च द्विपुटं भवेत्॥

उसमें दो छोटे केशर पुष्पमण्डल में पाए जाते हैं। वराटक युग्म रूप में और फल दोपुटों से युक्त होते हैं।

सदृशं समिफलेन सन्धितं फलवल्कलम्।
एतैश्च लक्षणैर्विद्यात् स्वस्तिकपुष्पमण्डलम्॥67॥

यह समिफल के समान दिखाई देता है और फल वल्कल से सन्धित होता है। स्वस्तिक पुष्पमण्डल के ऐसे लक्षण जानने चाहिए।

अथ त्रिपुषगणीयम् -

ततश्च त्रिपुषपुष्पं वक्ष्यामि पूर्णलक्षणैः।
त्रिपुषं कुम्भमण्डलं निष्फलञ्चापि दृश्यते॥

पराशर बोले कि इसके बाद मैं त्रिपुष (कोहड़े के) पुष्प के विषय में उसके समस्त लक्षणों सहित कहूँगा। त्रिपुषपुष्प पूर्व में वर्णित कुम्भमण्डलीय और निष्फल भी दिखाई देते हैं।

प्रायशः कुक्षिपुष्पञ्च मिश्रवल्लरिका क्वचित्।
जालकञ्च दलञ्चैव युक्तञ्च पञ्चकर्णितम्॥

इसमें बहुधा कुक्षिपुष्प पत्ती के आधार पर उगे हुए होते हैं और कदाचित् मिश्र वल्लरिका होती है। जालक और पंखुड़ियाँ जुड़ी हुईं और पाँच कोनों वाली होती हैं।

त्रिशीर्षैस्त्रिभिः केशरैस्त्रिशीर्षवराटेन च।
त्रिभिः पुषैस्त्रिवर्तकैः पुष्पञ्चास्य विशिष्यते।
बहुलपृथुक बीजं दृश्यते त्रिपुषफले॥68॥

तीन शीर्षक, तीन केशर, तीन शीर्ष वराटक पर होते हैं। तीन-तीन पुषाओं और तीन वर्तकों वाले पुष्पों के मुख विशिष्ट रूप से होते हैं। त्रिपुष के फल में प्रत्येक कोष्ठक में अनेक बीज दिखाई देते हैं जो चपटे होते हैं।

अथ अवाक्पुष्पगणीयम् -

अवाक्पुष्पं भवेत्तत्र यत्र हि छत्रमञ्जरिः।
छत्रस्य कारवाकारा तस्मात् कारविका स्मृता॥

अवाक् पुष्प वहाँ होंगे जहाँ पर छत्र-मंजरी होंगी। छत्र की ताड़ियों की तरह वृन्त जुड़े होते हैं। इसलिए उनको कारविका जानना चाहिए।

सूक्ष्ममुक्तदलं पञ्च सूक्ष्मकेशरकन्तथा।
द्विपुटं कुम्भमण्डलं द्विवराटं द्विवर्तकम्॥
बीजकबीजाधारौ तु भवतः पुष्पमण्डले॥69॥

इसमें आकार में छोटी और अलग-अलग पाँच पंखुड़ियाँ होती हैं, केशर भी सूक्ष्म आकार वाले होते हैं। दो पुटीय, कुम्भमण्डलीय, दो वराटक और बीजाधार द्वि प्रकोष्ठीय होता है। इसके बीजाधार को बीजक कहा जाता है- इस प्रकार यह अवाक् पुष्पमण्डल होता है।

अथ अक्षपुष्पगणीयम् -

अक्षपुष्पं प्रवक्ष्यामि शृणु मे द्विजसत्तम।
सशाखमञ्जरिपुष्पं खुल्लकं पुष्पमण्डलम्॥

पराशर बोले कि हे द्विजसत्तमो! अब अक्षपुष्प के विषय में कहता हूँ, सुनो। इस परिवार समूह में मंजरी शाखित होती है व छोटे आकार वाले पुष्पमण्डल होते हैं।

कुम्भसंज्ञं भवेत्तत्र पञ्चकर्णैर्वा जालकम्।
पञ्चभिश्चैव दलैर्वा केशरैर्दशभिस्तथा॥

उनको कुम्भमण्डलीय कहा जाता है, वहाँ पर पाँच कर्ण या जालक होते हैं। पाँच ही पंखुड़ियाँ होंगी और केशर दस की संख्या में होते हैं।

वराटैकं भवेत्तत्र फलञ्च कुड्यसंज्ञकम्।
अस्रकफलबीजञ्च कीखोसं कर्परं भवेत्।
तत्रैकं बीजयुक्तञ्च वृन्तान्तिकेन दृश्यते॥70॥

उनमें एक वराटक होगा। फल कुड्य नाम वाला होता है। बीज भंगुर और बीज अस्रक (धारियों वाले) तथा कीखोस कर्पर होते हैं। वहाँ पर एक बीजयुक्त वृन्तान्तिक दिखाई देता है।

अथ कुहपुष्पगणीयम् -

कुहपुष्पं प्रवक्ष्यामि तुङ्गेन यच्च भाषितम्।
सफलं खुड्डाकपुष्पं वल्लरिः कुक्षिसंज्ञका॥

मुनि पराशर बोले कि अब मैं कुहपुष्प के बारे में कहूँगा जिसको तुंग कहा गया है। यह फल सहित छोटे पुष्प का समांग और कुक्षि वल्लरि संज्ञक है।

जालकं पञ्चकर्णञ्च स्वैरपञ्चदलाग्रकम्।
दलानां सन्निवेशञ्च कर्णान्तरे तु जालके॥

इसमें अंखुड़ियाँ संयुक्त होकर पाँच समूह में होती हैं। पंखुड़ियाँ भी पाँच होती हैं जो दो अंखुड़ियों के बीच (कर्णान्तर में जालक) अवस्थित होती हैं।

पञ्चैव केशरास्तत्र दलानां पुरोगं भवेत्।
मुक्तेन वराटेनैव स्थालकस्थं फलं भवेत्॥

उसमें केशर पाँच होते हैं जो पंखुड़ियों के सामने उगे हुए होते हैं। वराटक स्वतन्त्र होते हैं और फल स्थालकगत होता है।

कुड्याख्यबीजाधारश्च वर्तुलो मञ्जुको निभः।
कर्परं बीजकीखोसं वर्तकं नैकसम्मतम्॥

उसमें बीजाधार अस्फुटक और गोल मंजु के समान होता है। खोपड़ी सा बीजखोल और वर्तक एक होता है।

वृन्तान्तिकबीजञ्चैकं बीजञ्च वर्तके तथा।
एतानि लक्षणानि हि भवन्ति कुहगणीये॥71॥

यह वृन्तान्तिक, फल में एक बीज और वर्तक होता है- ये सब कुह वर्गीय पुष्प के लक्षण होते हैं।

अथ ओड्रपुष्पगणीयम् –

ओड्रपुष्पं प्रवक्ष्यामि भाषितं वाटयमण्डलम्।
कुक्षिपुष्पं भवेत्तत्र मिश्रमञ्जरिका क्वचित्॥

मुनि पराशर बोले कि अब मैं ओड्रपुष्प वर्ग के विषय में कहता हूँ। इसका पुष्प वाटयमण्डलीय होता है। उसमें कुक्षिपुष्प होता है और कदाचित् मिश्र मंजरी वाला होता है।

जालकमुपपक्षेण युक्तञ्च पञ्चकर्णितम्।
संस्पृष्टपञ्चदलञ्च युक्तं वराटसङ्गमे॥

इसके उपपक्षों पर जालक होते हैं जो पाँच कर्णों से युक्त होते हैं। ये पाँच पंखुड़ियों से संस्पृष्ट और वराट संगम से युक्त होते हैं।

बहवः केशास्तत्र वराटोत्सङ्गसंज्ञकाः।
संवृत्तञ्च भवेतैश्च बीजाधारवराटकम्॥

उसमें अनेक केश होते हैं, वे वराटोत्संग संज्ञक होते हैं। उसमें बीजाधार वराटक से संवृत्त होते हैं।

संवृतबीजाधारश्च तस्मात् संज्ञायते द्विज।
वराटं पञ्चशीर्षञ्च केशरैः परिवारितम्॥

घिरे हुए बीजाधार होने से उनको द्विज जानना चाहिए। वराट पाँच शीर्ष वाले और केशरों से परिवृत्त होते हैं।

विदरो बीजाधारश्च पञ्चभिर्वर्तकैः सह।
एतानि लक्षणानि हि भवन्ति पुष्पमण्डले ॥72॥

उसमें विदर वाला स्फुट बीजाधार पाँच प्रकोष्ठों के साथ होता है- ये इस ओड्रपुष्प मण्डल के लक्षण कहे गए हैं।

अथ मल्लिकागणीयम् -

मल्लिका कुण्डमण्डला सङ्कुला पत्रमञ्जरिः।
अरापक्षपङ्क्तिवृन्ता समाङ्गा सक्षीरा स्मृता॥

मल्लिका पुष्प कुण्डमण्डलीय होते हैं और वे पत्र मंजरी के समूह होते हैं। पत्तियों की पंक्तियाँ तने पर पहिए के आरे की तरह होती हैं, पुष्प समांग और दूध वाले जानने चाहिए।

जालकं युक्तकर्णञ्च पञ्च भवति तत्र वै।
पञ्चयुक्तदलञ्चैवाव्यक्तकेशरपञ्चभिः॥

उसमें जालक युक्त कर्ण होते हैं जिनकी संख्या पाँच होती हैं। पाँच पत्तियाँ संयुक्त रूप से होती हैं और पाँच ही केशर अव्यक्त होते हैं।

वराटद्वययुक्ता च युग्मफला भवच्च सा।
आस्फोटा बहुबीजा तुलपुच्छसमन्विता॥73॥

यह दो वराट से युक्त और उसमें जुड़वाँ फल होते हैं। यह खिलने पर अनेक बीज वाला तथा तुलपुच्छ से युक्त होता है।

अथ वज्रपुष्पगणीयम् -

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वज्रपुष्पस्य लक्षणम्।
कुक्षिपुष्पं भवेत्तत्र पुष्पञ्च कुण्डमण्डलम्॥

मुनि पराशर बोले कि अब मैं वज्रपुष्प के लक्षणों को कहता हूँ। उसमें कुक्षिपुष्प (पुष्प पत्तियों के वृन्त आधार पर उगे) होते हैं और उनकी रचना कुण्डमण्डल-सी होती है।

नासापुटं समं कुण्डं दलाग्रं विषमं भवेत्।
चत्वारः केशरास्तत्र विषमतुङ्गशीर्षकाः॥

नासिका के पुट के समान कुण्ड (गुहा) होती है और पंखुड़ियाँ आकार में भिन्न-भिन्न रूप वाली होती है। उसमें चार केशर होते हैं और असमान लम्बाई वाले शीर्षक होते हैं।

युग्मवराटकं युक्तं शीर्षेण तु द्विकर्णितम्।
द्विपुटबीजाधारश्च पुष्पक्रान्तेन दृश्यते॥

दो वराटक से युक्त शीर्ष दो कर्णित होते हैं। दोपुट वाले बीजाधार होते हैं और पुष्पक्रान्त के समान दिखाई देते हैं।

बीजानि बहुनि तत्र द्विपङ्क्तया समीवद् भवेत्।
फलञ्चैव विदरञ्च भवति पुष्पमण्डले॥74॥

उसमें अनेक बीज होते हैं तथा उनकी दो पंक्तियाँ समी के समान होती हैं। इस पुष्पमण्डल में फल और विदर होते हैं।

अथ भृङ्गपुष्पगणीयम् –

अथातो भृङ्गपुष्पञ्च भवति कुण्डमण्डलम्।
जालकं स्थिरयुक्तञ्च पञ्चकर्णेन विद्यते॥

मुनि पराशर बोले कि अब भृंगपुष्प के विषय में कहता है जो कुण्डमण्डलीय वर्ग के होते हैं। उनमें स्थिर जालक पाँच कोनों के जानने चाहिए।

भृङ्गपक्षोदरं निभं दृश्यते कर्णितदलम्।
चत्वारः केशरास्तत्र पुष्पकुण्डे भवन्ति हि॥

भृंग के पक्षोदर के समान दिखाई देने वाले कर्णित दल (पँखुड़ियाँ) होंगे। उसमें चार केशर होते हैं जो पुष्पकुण्ड में दिखाई देते हैं।

दलाद्विभागदीर्घञ्च नताग्रस्फुटकेशरम्।
तथा द्विशीर्षवराटं पुष्पक्रान्तं बीजाशयम्॥

पंखुडियाँ दो भागों में और लम्बी होती हैं। झुके हुए व खिले हुए केशर होंगे। इसी प्रकार दो शीर्षक वाले वराटक तथा पुष्पक्रान्त बीज के गृह होते हैं।

वर्तकमेकबीजञ्च बन्धनं वृन्तमुखतः।
कुड्याख्यबीजाधारश्च विषमपुष्पमण्डलम्॥75॥

वर्तक एक बीजीय तथा वृन्त के मुख से बन्धन वाले, कुड्य नामक बीजाधार तथा विषम पुष्पमण्डल वाले होते हैं।

अथ कोटरपुष्पगणीयम् –

अथातः कोटरपुष्पं भवति कुण्डमण्डलम्।
कुक्षिमञ्जरिका चैव पुष्पन्तु सफलं समम्॥

पराशर बोले कि अब मैं कोटरपुष्प के विषय में कहता हूँ। वे कुण्डमण्डलीय होते हैं। कुक्षि मंजरिका वाले पुष्प समान फल वाले होते हैं।

जालकं पञ्चमुक्तञ्च स्थिरञ्च वृन्तसंहतम्।
घण्टानिभं दलं युक्तं केशराङ्केन संज्ञितम्॥

उसमें पाँच स्वतन्त्र जालक होते हैं और स्थिर वृन्त संहत् होते हैं। वे घण्टा के समान पंखुड़ियों वाले तथा उनके भीतर केशर होते हैं।

व्यक्ततुङ्गकेशरैश्च पञ्चभिः परिशोभितम्।
द्विशीर्षेण वराटेन भवति पुष्पमण्डलम्॥

तुंग पर व्यक्त रूप से पाँच केशर सुशोभित होते हैं। दो शीर्षक के वराटक वाला यह पुष्पमण्डल होता है।

स्थालकस्थो बीजकोषस्त्रिपुटो द्विपुटो भवेत्।
कोटरं द्विविधं विद्याद् विदरं कुड्यसंज्ञकम्॥76॥

इसमें स्थालक पर बीजकोष तीन या दो पुट वाला होता है। कोटर को दो प्रकार का जानना चाहिए- 1. विदर और 2. कुड्य संज्ञक।

अथ भद्रपुष्पगणीयम् -

ततश्च भद्रपुष्पञ्च शृणु तद् मिश्रलक्षणम्।
जालकं पञ्चमुक्तञ्च दलञ्चैव द्विस्तबकम्॥

मुनि पराशर ने कहा कि इनके बाद भद्रपुष्प के विषय में सुनिए। उसके मिश्र लक्षण होते हैं। पाँच जालक स्वतन्त्र होते हैं। पंखुड़ियों के दो स्तबक या गुच्छ होते हैं।

प्रथमस्तबकं मुक्तं पञ्चदलेन विद्यते।
द्वितीयस्तबकं युक्तं तुङ्गशीर्षेण भिद्यते॥

इनमें से पहला स्तबक अलग-अलग पाँच पंखुड़ियों वाला होता है और दूसरा स्तबक तुंगशीर्ष से युक्त जानना चाहिए।

बहवः केशरास्तत्र कुण्डाङ्केन निगदिताः।
व्यक्तकेशरकं तच्च खुल्लकं मिश्रमण्डलम्॥

उसमें अनेक केशर होते हैं और कुण्ड के अन्तर्गत जानने चाहिए। वे व्यक्त केशर छल्ले वाले होते हैं इसलिए मिश्रमण्डलीय होते हैं।

शीर्षैकं वराटं विद्यात् फलञ्चैकं बीजं तथा।
तत्र वृन्तान्तिकं बीजं कुड्याख्याफलमेव च॥77॥

इसी प्रकार शीर्ष पर एक वराटक होता है और फल में एक ही बीज होता है। उसमें वृन्तान्तिक बीज होता है। इस प्रकार यह कुड्य नामक फल होता है।

तत्र समाहार:

अत्रैव ये गणा उक्तास्तेषां समाहार: शृणु।
चूतपुष्पं समपुष्पं यच्चैव तुन्दमण्डलम्॥
साम्यं भवति सङ्ख्यायां यतश्च दलकेशरम्॥78॥

मुनि पराशर बोले कि यहाँ पर जिन वर्गों को कहा गया, उनका अब उपसंहार सुनिये। चूतपुष्प वर्ग में पुष्प समांग, तुन्दमण्डलीय, पंखुड़ियाँ और केशर संख्या में बराबर होते हैं।

विषमं समिपुष्पञ्च विज्ञेयं तुन्दमण्डलम्।
न तत्र भवति साम्यं सङ्ख्यायां दलकेशरम्॥79॥

समिपुष्प में पुष्प असम अवयवी और तुन्दमण्डलीय जाने। उसमें पंखुड़ियाँ और केशर समसंख्यक नहीं होते हैं।

पुप्लिकं तुन्दमण्डलं तदपि विषमं भवेत्।
तुन्दञ्च स्वस्तिकपुष्पं विषममण्डलं भवेत्॥80॥
न तत्र भवति साम्यं सङ्ख्यायां दलकेशरम्॥81॥

पुप्लिक पुष्प में तुन्दमण्डल होता है लेकिन वे असमान होते हैं। स्वस्तिकपुष्प तुन्दमण्डलीय लेकिन उनमें विषमण्डल होता है। उनमें दल और केशर बराबर संख्या में नहीं होते हैं।

ततश्च त्रिपुषपुष्पं विषमं कुम्भमण्डलम्॥82॥

इसके बाद, त्रिपुषपुष्प विषम रूप में कुण्डमण्डलीय होते हैं।

अवाक्पुष्पं भवेत् तत्र समञ्च कुम्भमण्डलम्॥83॥

जो अवाक्पुष्प होते हैं, वे समांग और उनमें कुम्भमण्डल होता है।

अक्षपुष्पं विषमं च तद्भवेत् कुम्भमण्डलम्॥84॥

अक्षपुष्प विषम रूप में होते हैं और उनमें कुम्भमण्डल होता है।

समञ्च कुहपुष्पञ्च यच्चैव तुङ्गमण्डले।
साम्यं भवति सङ्ख्यायां यतश्च दलकेशरम्॥85॥

समांग वाले कुहपुष्पों में तुंगमण्डल होता है। उनमें पंखुड़ियाँ और केशर बराबर-बराबर संख्या में होते हैं।

ओड्रपुष्पं विषमञ्च यच्चैव वाटयमण्डले।
न तत्र भवति साम्यं सङ्ख्यायां दलकेशरम्॥86॥

ओड्रपुष्प विषम रूप में होते हैं और उनमें वाटयमण्डल होता है। उनमें पंखुड़ियाँ और केशरों की संख्या समान नहीं होती है।

मल्लिकागणीये पुष्पं भवति कुण्डमण्डलम्।
अव्यक्तकेशरपुष्पं समञ्च पुष्पमण्डलम्॥87॥

मल्लिका वर्ग वाले पुष्पों में कुण्डमण्डल होता है। उनमें अव्यक्त केशर और पुष्प समान तथा पुष्पमण्डलीय होते हैं।

वज्रपुष्पं विषमञ्च भवति कुण्डमण्डलम्।
न तत्र भवति साम्यं सङ्ख्यायां दलकेशरम्॥88॥

वज्रपुष्प विषम रूप में और उनमें कुण्डमण्डल होता है। उनमें पंखुड़ियाँ और केशर समान संख्या में नहीं होते हैं।

समञ्च कोटरपुष्पं भवति कुण्डमण्डलम्॥89॥

कोटर पुष्प समावयवी होते हैं और उनमें कुण्डमण्डल होता है।

विषमं भृङ्गपुष्पञ्च भवति कुण्डमण्डलम्॥90॥

भृंगपुष्प विषम अवयवी होते हैं। उनमें कुण्डमण्डल होता है।

विषमं भद्रपुष्पञ्च यच्चैव मिश्रमण्डलम्।
प्रकृत्या द्विविधदलं भवति भद्रकगणे॥91॥

भद्रपुष्प असमावयवी होते हैं। उनमें मिश्रमण्डल होता है। भद्रकगण में दो आकार वाली पंखुडियाँ होती हैं।

इति समाहारः प्रोक्तः पुष्पाणां गणसङ्ग्रहे॥92॥

इस प्रकार पुष्पों के परिवार-समूह का यहाँ उपसंहार कहा गया।

भवति चात्र –

पुष्पञ्च पुष्पमण्डलं पुष्पाङ्गानि पृथक्-पृथक्।
इत्युक्ता नामरूपाभ्यामस्मिन् पुष्पाङ्गसूत्रीये॥93॥

यह उल्लेखनीय है कि पुष्प, पुष्पमण्डल, पुष्प के अंगों (यथा पुष्पवृन्त, स्थालक, जालक, दल, किंजल्क, वराटक, बीजाधार और पुष्पांक की अवस्थिति) और नाम, आकृति तथा पुष्पों के रूप का वर्णन इस पुष्पांग सूत्रीय अध्याय में किया गया है।

इति पराशरकृत वृक्षायुर्वेदे बीजोत्पत्तिकाण्डे पुष्पाङ्गसूत्रीयो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥5॥

इस प्रकार महर्षि पराशर कृत वृक्षायुर्वेद के बीजोत्पत्ति काण्ड में पुष्पांग सूत्रीय नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥

अथ बीजोत्पत्तिकाण्डे फलाङ्गसूत्रीयनाम षष्ठोऽध्यायः ॥6॥

अथ पराशरोवाच –

अथातः फलाङ्गसूत्रीयमध्यायं
व्याख्यास्याम इत्याह पराशरः ॥1॥

महर्षि पराशर बोले- अब मैं फलांगसूत्रीय नामक अध्याय की व्याख्या करूँगा (जो कि फलों के अंगों के विषय में है)।

अथ फलसंरचनार्थे पर्यायमाह –

खलु फलञ्च बीजाधारो बीजपुटक इत्यनर्थान्तरम् ॥2॥

समस्त फलों के संरचनार्थ शब्द हैं- बीजाधार और बीजपुटक।

तत्राद्य गणविभागमाह –

फलानां गणविभागं पुष्पतः प्रकृतितश्चाकृतितो नामतो
रसतश्च प्रत्यक्षेण यदुपलभ्यते तदनुव्याख्यास्यामः ॥3॥

अब मैं फलों के वर्गीकरण का विवरण देता हूँ जो कि पुष्प से उनके स्वाभाविक आकार, उनके नाम और उनसे उत्पादित रस के लक्षण आदि का है और जो प्रत्यक्षतः उपलब्ध होता हैं।

पुष्पतः त्रिविधं बीजाधारः फलञ्चाह –

इह खलु वृक्षाणां बीजाधारः फलञ्च पुष्पतस्त्रिविधं विद्यात्।
पुष्पक्रान्तं पुष्पशीर्षकञ्च संवृतञ्चेति ॥4॥

समस्त वृक्षों में बीजाधार और फल फूल के आधार पर तीन प्रकार के जानने चाहिए- 1. पुष्पक्रान्त, 2. पुष्पशीर्षक और 3. संवृत।

तत्र पुष्पक्रान्तगणाः –

तत्र पुष्पक्रान्तबीजाधारो जालकस्योपरि पुष्पकुक्षौ
सन्निविष्टं भवति। यथाम्र बिल्वबदरसमीफलादीनि।
पुष्पक्रान्तफलन्तु किञ्चिदेकबीजं किञ्चिद्बहुबीजं वा भवति ॥5॥

वहाँ पर पुष्पक्रान्त वर्ग होगा जहाँ बीजाधार पुष्पगुहा के अन्दर और अंखुड़ियों की पंक्ति के ऊपर सन्निविष्ट होता है। जैसा कि आम, बिल्व, बदर और समी आदि फलों में पाया जाता है। पुष्पक्रान्त वर्गीय फल में कदाचित् एक बीज और कदाचित् अनेक बीज होते हैं।

पुष्पशीर्षकगणाः -

पुष्पशीर्षकस्य तु बीजाधारशीर्ष पुष्पसन्निविष्टं भवति।
यथा दाडिमपालेवततुम्बित्रपुषजालिनीफलादीनि पुष्पशीर्षक
फलानि स्युः। पुष्पशीर्षकफलानि बहुवर्तकानि प्रायशो
बहुबीजानि भवन्ति॥6॥

द्वितीय, पुष्पशीर्षक वर्ग में पुष्प के अन्य अंगों के नीचे बीजाधार होता है। जैसा कि दाडिम (अनार), पालेवत, तुम्बी (तूमड़ी), त्रपुष (खीरा), जालिनी आदि फलों में होता है। ये सामान्यतः पुष्पशीर्षक फल हैं। पुष्पशीर्षक फल बहुवर्तक (बहुरंगी) होते हैं। इनमें बहुधा अनेक बीज होते हैं।

इत्योपरान्ते संवृतगणाः -

संवृतबीजाधारास्तु पुष्पमण्डले यच्च
दलकेशरसंघाताङ्केन संवृतं भवति।
संवतफलं बहुवर्तकं बहुबीजञ्च भवति॥7॥

तृतीय, संवृत्त भेद में बीजाधार पुष्पमण्डल और केशर की कतारों से घिरा होता है। पंखुड़ियाँ संयुक्त होती हैं। फल में अनेक प्रकोष्ठ होते हैं और प्रत्येक में बीज हो सकते हैं।

अथ वृन्तादीनां फलाङ्गानि -

खलु वृन्तं जालकं वल्कं शलाटु वर्तकं बीजपुप्लिकं
बीजपुषं बीजञ्चेति फलाङ्गानि भवन्ति॥8॥

समस्त फलों के साथ विभिन्न अंग होते हैं- वृन्त, जालक, वल्क, शलाटु, वर्तक, बीजपुप्लिका, बीजपुष और फिर बीज।

तत्र वृन्तजालकौ पुष्पाङ्गसूत्रीये वक्ष्यते॥9॥

इनमें उल्लिखित वृन्त और जालक का विवरण पुष्पांगसूत्रीय (पूर्ववर्ती अध्याय 5) क्रम में दिया जा चुका है।

अथ फलवल्कलमाह -

खलु फलस्य बहिरावरणं वल्कं वल्कलञ्चेति।
फलवल्कञ्च मृदुलमालुरांशुकशूकाचितकण्टक-
कीलकार्बुदाचितभेदेन भिद्यते॥10॥

समस्त फलों में बाहर के आवरण वल्क और वल्कल कहे जाते हैं। फल वल्कल प्रायः मृदु (मुलायम), मालुर, अंशुक, शुकाचित, कण्टक, कीलक और अर्बुद (फोड़े जैसे) भेद वाले होते हैं।

भवतश्चात्र।

नखच्छेद्यं मृदुलञ्च मालुरं कर्परं स्मृतम्।
अंशुकं तन्तुलं विद्याच्छुकव्याप्तं शूकाचितम्॥
कण्टकैः कण्टकं ज्ञेयं कीलकैः कीलकं स्मृतम्।
अर्बुदैरर्बुदं विद्यादित्युक्तं फलवल्कलम्॥11॥

वे कैसे होंगे, तदर्थ कहा जाता है- मृदुल वर्ग के फल की भित्ति कोमल होती है, नाखून से छेदी जा सकती है। मालुर वर्ग में कर्पर (खोपड़ी) जैसी जानना चाहिए। अंशुक वर्ग में तन्तुल (धागे जैसी) जाने। शूकाचित वर्ग में फलभित्ति रोमों से ढँकी होती है। कण्टक वर्ग में भित्ति काँटों जैसी रचना से ढँकी जाने और कीलक में फलभित्ति छोटे नुकीले उभारों से आवृत्त होती है। अर्बुद वर्ग में ऊभरी हुई फुंसियों की तरह होगी- इस प्रकार फलवल्कल को कहा गया है।

एतद् उदाहरणमाह -

धात्रीलकुचद्राक्षाफलादीनि मृदुलवल्कलानि।
बिल्वकपित्थफलादीनि मालुरवल्कलानि।
तृणफलादीनि प्रायशश्चांशुकवल्कलानि भवन्ति॥12॥

धात्री (हरड़े), लकुच और दाख जैसे फल मृदुल वल्कल वाले होते हैं। बिल्व और कैथ (कबिती) फल मालुर वल्कल के उदाहरण हैं। तृणादि परिवार के फल प्राय: अंशुक वल्कल वाले होते हैं।

द्विविधं हि पुनः फलवल्कलञ्च सन्धितासन्धितभेदेन।

पुनः फल वल्कल दो प्रकार के होते हैं- 1. सन्धित और 2. असन्धित भेद वाले।

सन्धितं पुनरेव द्विविधं तद् यथाऽऽदीर्घसन्धितं मण्डलसन्धितञ्च।
आदीर्घसन्धितं यच्चैव ऋजुक्रमेण सन्धितं वृन्ताद् यावच्छीर्षम्।
यथास्फोटकसमिधात्र्याम्लवेतसफलादीनि आदीर्घसन्धित
वल्कलानि भवन्ति॥13॥

उक्त वर्ग में भी सन्धित पुनः दो प्रकार के होते हैं। यथा- 1. आदीर्घसन्धित और 2. मण्डलसन्धित। आदीर्घसन्धित प्रकारों में फल वृन्त के शीर्ष की ओर लम्बाई में स्फुटित होता है जैसे- आस्फोट, समि, धात्री, अम्लवेतस के फलों में होता है। ये आदीर्घ सन्धित वल्कल होंगे।

यच्चैव फलशीर्षे वृत्तमण्डलेन सन्धिनां सन्धितं येषां फलपरिपक्वे
शुष्के च कृतच्छिद्रं भवति बीजापसरणाय तच्चैव मण्डलसन्धित

वल्कलम्। यथा जालिनीफलादीनि कृतवेधनानि।
सन्धितवल्कलञ्च विदरफलेषु दृश्यते ॥14॥

मण्डल सन्धित भेद में फल वृत्तमण्डलाकार या अनुदैर्घ्य प्रकार से ऊपरी सिरे पर घटता है। जब परिपक्व होकर सूखता है तो ऊपरी सिरे से फटकर बीजों को बिखेर देता है। जैसे जालिनी फलादि कृतवेध होते हैं। सन्धित वल्कल में विदर फल दिखाई देते हैं।

असन्धितं वल्कलञ्च यदखण्डेन दृश्यते।
यथा जम्बाम्रराजादनकुड्यफलवल्कलानि ॥15॥

इसी प्रकार असन्धित वल्कल में पकने पर फल स्फुटित नहीं होते हैं। जैसा कि जामुन, आम, राजादन, कुड्य फल में वल्कल होते हैं।

खण्डशलाटुवल्कलञ्च यद् शलादुना सह विभक्तञ्च यथा-
धात्र्याम्लवेतसफलौ तौ शस्येन सह आदीर्घसन्धितौ ॥16॥

खण्डशलाटु वल्कल जैसे विशेष प्रकार के स्फुटन में फल भित्ति और अपक्व भाग अनेक खण्डों में टूट जाता है। उदाहरण के लिए धात्री और अम्लवेतस के फल। ये शस्य के साथ लम्बाई पर सन्धित होते हैं।

खलु फलवल्कलाभ्यन्तरे फल शस्यं
शलाटु यच्चैव शुष्के वानसंज्ञकमाचक्षते ॥17॥

सभी फल वल्कल के अन्दर फल का अपक्व भाग शलाटु कहलाता है। सूखे हुए फल वान संज्ञक कहे जाते हैं।

अथ वर्तकन्तु –

वर्तकन्तु बीजानामाशयः पुटकश्च ॥18॥

वर्तक फल के भीतर आमाशय में प्रकोष्ठ होते हैं जिनमें बीज बन्द होते हैं।

ततो बीजपुप्लिकं बीजपुटञ्च विज्ञायते
येन फलकुक्षि विभक्तं भवति।
यच्च फलभ्यन्तरे निवहबीजानामावरणञ्च।
तच्चैव द्विविधं मृदुकठोरभेदाच्च।

बीज पुप्लिक वह भित्ति होती है जिससे बीज प्रकोष्ठों में विभाजित रहते हैं। इसको बीजपुट भी कहा जाता है। फल के अन्दर इनसे बीज सुरक्षित रहते हैं। यह दो भेद वाली अर्थात् 1. कठोर या 2. मुलायम हो सकती है।

बीजपुषन्तु यच्चैव केषाञ्चित् फलानां निवहबीजानां
संवृतिकञ्च। एवञ्च यत्र हि बीजानि संसक्तानि भवन्ति ॥19॥
बीजञ्च बीजाङ्गसूत्रीये वक्ष्यते ॥20॥

बीजपुष एक ऊतक है जो कुछ फलों में पाया जाता है- ऐसे बीज संवृतिक होते हैं। इसी प्रकार वहाँ बीज जुड़े हुए रहते हैं। बीजों का वर्णन बीजांगसूत्रीय अध्याय में किया जाएगा।

अथ पञ्चविधं बीजबन्धनमाह –

खलु फलकुक्षौ पञ्चविधं बीजबन्धनं भवति। यथा-
वृन्तान्तिकञ्च पुप्लिकान्तिकञ्च पुष्पान्तिकञ्च
स्थालकान्तिकञ्च पङ्क्तिकञ्चेति।

समस्त फलों की कोख में पाँच प्रकार से बीजों का बन्धन होता है। यथा- 1. वृन्तान्तिक रूप से बीजबन्धन, 2. पुप्लिकान्तिक, 3. पुष्पान्तिक, 4. स्थालकान्तिक और 5. पंक्तिक रूप से बीजबन्धन।

तत्रैकवर्तके वृत्तान्तिकबन्धनन्तु वृन्तमभितो बीजमुखं भवति।
पुप्लिकान्तिकं नामबन्धनं यत् पुप्लिकेन संवृत भवति।
पुषान्तिकं नामबन्धनं यत् पुषेण संवृतं संसक्तञ्च भवति।
स्थालकान्तिकं नाम बन्धनं यत् स्थालके दृश्यते।
पङ्क्तिकबन्धनन्तु पङ्क्तया पार्श्वेन यद्भवति॥21॥

इनमें से जो पहला वृन्तान्तिक बीजबन्धन है, उसमें बीज वृन्त की ओर उन्मुख होते हैं। द्वितीय पुप्लिकान्तिक वर्ग में बीज झिल्ली से ढँके हुए होते हैं। तृतीय पुष्पान्तिक वर्ग में बीज पुषा ऊतक से जुड़े होते हैं। चतुर्थ स्थालकान्वित वर्ग में बीज स्थालिक पर लगे हुए होते हैं और पाँचवें पंक्तिक वर्ग में बीज किनारे पर कतारों में लगे होते हैं।

अथाभ्रबीजफलमाह –

प्रकृत्या परिपक्वे शुष्के वा येभ्यः सन्धितवल्कलफलेभ्यः
सशब्देन दूरे बीजानि निपतन्ति तानि फलानि
नामतश्चाभ्रबीजफलानि भवन्ति। यथा-
कुरुण्टादयश्चेति॥22॥

प्राकृतिक रूप से कुछ स्फुटक फल पकने और सूख जाने पर ध्वनि के साथ फटते हैं और वे बाहर दूर तक बिखर जाते हैं। इनका नाम अभ्र बीज फल होता है। जैसे कि कुरुण्ट आदि में होता है।

अथ फलानां चतुर्विधगणविभागमाह –

प्रकृतितः फलानां गणविभागश्चतुर्विधो भवति। तद्यथा-
तुन्दिकं बीजकं कुर्चमास्फोटकञ्चेति॥23॥

स्वाभाविक रूप से फलों का वर्ग विभाजन चार प्रकार का होता है। यथा- 1. तुन्दिक, 2. बीजक, 3. कुर्च और 4. आस्फोटक।

तत्र तुन्दिकगणीय फलमाह -

तत्र तुन्दिकगणीयानां फलानां स्वतन्त्रबीजत्वेन
तेषां फलशस्यमन्तरेण बीजं प्ररोहति।
यथाम्रजम्बुधात्रीबदरबिम्बिकार्पासादीनि
तुन्दिकगणीयाति भवन्ति ॥24॥

वहाँ पर तुन्दिक वर्ग होता है जहाँ कि फल और बीज एक दूसरे से अलग होते हैं। बीज स्वतन्त्रतापूर्वक बिना फल के गुदे के भी अंकुरित हो सकते हैं। जैसे कि आम, जामुन, धात्री (हरड़), बदर (बेर), बिम्बि और कार्पास (कपास, बिनोला)- ये तुन्दिक गण होता है।

बीजकगणीय फलमाह -

बीजकन्तु तथा विधौ न च प्ररोहति फलबीजत्वयोरभेदात् यथा-
शाक-ककुभ-सिन्धुवार-कारविका-तृण-धान्यादीनि ॥25॥

बीजक वर्ग वहाँ पर होगा जहाँ पर कि फल और बीज को अलग-अलग नहीं पहचाना जा सकता है और पूरी संरचना अंकुरित होती है। जैसे कि शाक, ककुभ, सिन्धुवार, कारविका, तृण-धान्यादि।

कुर्चगणीय फलमाह -

कुर्चगणीयानि तु बहुफलान्वितेन
कुर्चाकारेणैकस्थालकस्योपरि सन्निविष्टानि स्युः।
कुर्चफलानि पुष्पशीर्षकाणि चैव प्रायशः
परिपक्वेषु स्थालकात् परिच्यतुं भवन्ति ॥26॥

कुर्चगणीय वर्ग में वे फल होते हैं जो अनेक रूप में फलित होते हैं। वे एक ही स्थालक के ऊपर संयोजित होते हैं और प्रायः कूर्चीकार रूप में पुष्पशीर्षक दिखाई देते हैं। फल कुम्भ मण्डल बीजाधारों से विकसित होते हैं। पकने पर ये स्थालक से आसानी से बाहर गिर जाते हैं।

कुर्चफलगणीयन्तु पुनर्द्विविधम् पुच्छिकमपुच्छिकञ्च।
तत्र पुच्छिकं यच्चैव बीजपक्वे स्थालकस्योपरि छत्राकारं
भवत्येव वायुना सञ्चरते रोमपुच्छयुक्तत्वात्।
यथा- सोमराजादयश्च ॥27॥

कुर्चफल वर्गीय फल पुनः दो प्रकार के हो सकते हैं- 1. पुच्छिक फल और 2. अपुच्छिक फल। इनमें पुच्छिक वर्ग वहाँ पर होता है जहाँ पर कि बीजों पर रोम जैसी संरचनाएँ उग आती हैं जो परिपक्व होने पर स्थालक पर छत्र के समान फैल जाती है जिससे बीज हवा में दूर तक उड़कर चले जाते हैं, जैसे कि सोमराजी आदि में होता है।

अपुच्छिकन्तु पुच्छमन्तरेण यथा- केशराजादयश्च।
एवंविधानि यानि चान्यानि तान्यपुच्छिकानि॥28॥

अपुच्छिक वर्ग में बीज में ऐसी कोई संरचना विकसित नहीं होती है, जैसे कि केशराजादि में होता है- इस प्रकार अपुच्छिक नामक अन्य वर्ग होता है।

आस्फोटकगणीय फलमाह -

आस्फोटकगणीयस्य पुष्पमण्डलं द्विफलीयं द्विवराटकञ्च भवति।
क्वचिदुर्मिकेशरपुष्पेण विद्यात् एवंविधानि यानि क्षीरवृक्षजानि
तान्यास्फोटकगणीयानि भवन्ति। एतेषां बीजञ्च
तुलपुच्छिकं यच्च वायुना सञ्चरते।

आस्फोटक वर्ग के पुष्पमण्डल दो फलीय और दो वराटक वाले होते हैं। ये फल पुष्पों से विकसित होते हैं। इनमें कभी-कभी केशर झिल्ली भी होती है। इसी प्रकार इसके पौधों से दूध स्रावित होता है- ये आस्फोटक वर्ग में गिने जाते हैं। इनके बीजों पर रोम होते हैं जिनको तुलपुच्छिक (कपास की पूँछ के समान) कहा जाता है। ये हवा के साथ फैल जाते हैं।

एवमेकेन पार्श्वेन फलवल्कलमादीर्घेसन्धितं च भवति यथा-
अर्कादयश्च एवंविधानि यानि तान्यास्फोटकगणीयानि॥29॥

इसी प्रकार एक बाजू में फल-वल्कल की छोटी सन्धि होती है। फलभित्ति एक ओर से ऊर्ध्वाधर फट जाती है, जैसे कि अर्क (आक) में होता है- इस प्रकार जहाँ पाया जाता है, वहाँ आस्फोटक वर्ग होता है।

अथाकृत्यानुसारेण फलस्य वर्गमाह -

अत ऊर्ध्वं फलानां गणविभागमाकृतितश्चोपदेक्ष्यते।
तद् यथा आवर्तुलञ्च वर्तुलञ्च दीर्घञ्च
पृथुकञ्चेति फलानामाकृतिमादिशेत्।
तत्रानुक्तेषु मिश्रलक्षणेषु मिश्रलक्षणमेवोपलब्धा
मिश्राकृति व्यवस्येत्॥30॥

इसके बाद, अब फलों को उनकी आकृति के अनुसार वर्गीकृत कर कहा जाता है।

उनमें से कुछ फल पूरी तरह वर्तुल (गोलाकार) होते हैं तो कुछ फल मामूली गोल, कुछ फल लम्बे होते हैं और कुछ चपटे (पृथुक)- फलों के ये नाम उनकी आकृतियों के अनुसार कहे हैं। इनमें से कुछ एकाधिक आकृतियों के मेल या मिश्रण से उत्पन्न होते हैं। उनको मिश्राकृति रूप वाला कहा जाता है।

भवन्ति चात्र –

नामतश्च प्रवक्ष्यामि फलानां गणसङ्ग्रहम्।

संक्षेप में, फलों को उनके नाम से वर्गीकृत कर कहता हूँ।

फल्गुफलं कुम्भफलं त्रिपुषं जालिनी तथा ॥31॥
भस्त्रा शृङ्गी तुलिनी च त्रिपुटा वृन्ताकी तथा।
गुच्छं गुच्छदन्तिका च केशरकफलं स्मृतम् ॥32॥
कोषं शङ्कुसिम्बिफलं बीजकफलमेव च।
एतैश्च नामगणैश्च फलानां गणसङ्ग्रहः ॥33॥

यथा- फल्गुफल, कुम्भफल, त्रिपुष, जालिनी, भस्त्रा (धोंकनी जैसे), शृंगी, तुलिनी, त्रिपुटा, वृन्ताकी, गुच्छफल, गुच्छदन्तिका, केशरक फल, कोषफल, शंकुफल, सिम्बिफल और बीजक फल- ये सब नामवर्ग फलों के संग्रह के अनुसार है।

ततो नामगणैर्यानि चोक्तानि फलसङ्ग्रहः।
तानि पुनः प्रवक्ष्यन्ते प्रकृत्यनुरूपैश्च वै ॥34॥

इसके बाद, नाम वर्ग फलसंग्रह के अनुसार कहा जाता है और उनमें भी प्रकृति के अनुरूप वर्णन किया जाएगा।

फल्गुफलं भवेत्तच्च यत्र स्यात् फल्गुस्थालकम्।
तच्च वनस्पतिकाण्डे व्यासत उपदेक्ष्यते ॥35॥

फल्गुफल गोल-पोले स्थालक के चारों ओर विकसित होते हैं। ग्रन्थ के वनस्पति काण्ड में उनका विस्तृत रूप से वर्णन है।

कुम्भवत् कुम्भफलञ्च त्रिपुषैस्त्रिपुषं स्मृतम्।
वानस्तु जालवद् यस्या जालिनी सा च कीर्तिता ॥36॥

कुम्भफल कलश के समान होते हैं। त्रिपुष को तीन पुषीय स्तम्भ में जानना चाहिए। जब फल सूख जाता है तो उसका ढाँचा जालिका जैसा हो जाता है, उसको जालिनी कहा जाता है।

भस्त्रैव पुटकाकारमजिनमिव जालकम्।
तेनैव वेष्टिता या तु भस्त्राफला सा कीर्तिता ॥37॥

भस्त्र (चमड़े की धोंकनी) की तरह जो पुटकाकार जालक होता है, उससे जो वेष्टित फल होते हैं, उनको भस्त्राफल कहा जाता है।

शृङ्गेण सदृशं शृङ्गी तुलिनी तुलगर्भिणी।
त्रिभिः पुटैस्तु विभक्ता त्रिपुटा चैव कीर्तिता ॥38॥

सींग के समान दिखाई देने वाला फल शृंगी होता है। तुलिनी फल कपास या सूत के समान रेशों से भरा होता है। जिस फल में तीन पुट या तीन कोष्ठक विभाजित होते हैं, उसको त्रिपुटा कहा जाता है।

अभेदं वृन्तजालकं सा चैव वृन्ताकी स्मृता ॥39॥

वे फल जिनमें वृन्त जालक से मजबूती से जुड़ा होता है, उनको वृन्ताकी जानना चाहिए।

बहुभिः फलयुक्तैश्च वृन्ते यद् गुच्छबन्धनम्।
तदेव गुच्छफलञ्च कथितं मुनिपुङ्गवैः ॥40॥

जब एक ही वृन्त पर अनेक फल गुच्छबन्धन वाले होते हैं, वे गुच्छ फल कहलाते हैं, ऐसा मुनिवरों ने कहा है।

दन्तपङ्क्तिसमा या तु विज्ञेया गुच्छदन्तिका ॥41॥

यदि दाँतों की कतार के समान जमे हुए फल हों तो उनको गुच्छदन्तिका जानना चाहिए।

शलादु केशराकारं विभक्तं बहुपुप्लिकैः।
फलं केशरकं ज्ञेयं क्वचित्तत्र विशेष्यते ॥42॥

यदि फल का खाने योग्य भाग बाल जैसी संरचना में निकला हुआ होता है और फल अनेक प्रकोष्ठों में विभाजित होता है, उसको केशरक कहा जाता है। उनमें कोई विशेष होते हैं।

वल्कलाभ्यन्तरे यच्च स्थालके पिण्डसंज्ञके।
तच्चैव कोषफलञ्च बहुकोषबीजान्वितैः ॥43॥

छाल के भीतर जहाँ स्थालक में पिण्ड संज्ञक रचना हो, उनको कोषफल कहा जाता है, वे अनेक प्रकोष्ठों में बीज वाले होते हैं।

शङ्कुवत् शङ्कुफलञ्च पार्श्वबीजैः समिः स्मृतः।
आदीर्घेण द्विपार्श्वेण सन्धितं सिम्बिवल्कलम् ॥44॥

शंकु के समान ही शंकुफल होते हैं। जिनमें बाजूओं में बीज होते हैं, उसको समि जानना चाहिए। यह ऊर्ध्वाधर लम्ब-पार्श्व में दो जगह से फटता है। ऐसा संयोजन सिम्बिवल्कल का होता है।

अभेदं फलबीजञ्च बीजकं तच्च विज्ञेयम्।।45।।

बीज और फल को जब अलग-अलग नहीं पहचाना जा सकता हो, उसको बीजक जानना चाहिए।

इति संक्षेपतः प्रोक्तः फलानां गणसङ्ग्रहः।।46।।

इस प्रकार यहाँ संक्षेप में फलों के वर्गों का संग्रह कहा गया है।

रसतश्च फलगण विभाजनमाह -

अथ रसतः पुनश्च मधुराम्लतिक्तकटुकषायाश्चेति फलानां रसगणो पञ्च प्रविभागो रसप्राधान्यात्।

फलों को पुनः उनके रस की प्रधानता अथवा स्वाद के अनुसार पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। यथा- 1. मधुर (मीठे) फल, 2. अम्लीय (खट्टे) फल, 3. तिक्त (तीखे) फल, 4. कटु (कड़वे) और 5. कषाय (कसैले) फल। फलों में जो रस प्रभावकारी होता है, उसी के अनुसार उसका स्वाद होता है।

अपरिसंख्योनां पुनरेतेषां फलानामाश्रयादीनां पाञ्चभौतिकभावानां न्यूनातिरेकान्मिश्रभावविशेषाच्च कालप्रकर्षाच्च पक्वापक्वेषु। फलेषु वैषम्यापद्यते।।47।।

इस प्रकार फलों के अनेक संख्या में प्रकार होते हैं। फलों के नाम उनके आश्रय (भूमि, स्थल) आदि के आधार पर भी हो सकते हैं। पँचभौतिक (भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश) भावों के आधार पर उनका स्वाद न्यून-अधिक और मिश्र रूप में विशेष रूप से हो सकता है। समयानुसार फलों के विकास स्तर के अनुसार और कच्चे-पक्के फल का स्वाद भी अलग-अलग, बदलाव लिए हो सकता है।

इति पराशरकृते वृक्षायुर्वेदे बीजोत्पत्तिकाण्डे फलाङ्गसूत्रीयो नाम षष्ठोऽध्यायः।।6।।

इस प्रकार महर्षि पराशर रचित वृक्षायुर्वेद के बीजोत्पत्ति काण्ड में फल-अंग सूत्र नामक छठवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ बीजोत्पत्तिकाण्डे अष्टाङ्गसूत्रीयनाम सप्तमोऽध्यायः ॥7॥

अथ पराशरोवाच –

अथातोऽष्टाङ्गगणसूत्रीयमध्यायं
व्याख्यास्याम इत्याह पराशरः ॥1॥

महर्षि पराशर ने कहा- अब मैं (बीजोत्पत्ति काण्ड में) अष्टांगसूत्रीय (आठ सूत्रों वाले) अध्याय की व्याख्या करूँगा।

अथ वृक्षाणां अष्टाङ्गमाह –

अस्मिन्नध्याये मूल-त्वक्-काण्ड-सार-स्वरस-निर्यास-स्नेह-
कण्टकाश्चेति वृक्षाणामष्टाङ्गगणविभागमुपदेक्ष्यामः ॥2॥

इस अध्याय में पेड़ों के आठ अंगों 1. मूल (जड़), 2. त्वक् (छाल), 3. काण्ड (तना), 4. सार, 5. स्वरस, 6. निर्यास (गोंद), 7. स्नेह (तेल) और 8. कण्टक (काँटे) का वर्णन उनके वर्ग-विभाग के अनुसार किया जाएगा।

तत्र मूलस्य लक्षयति –

तत्र वृक्षाणां जीवनायनं मूलम्।
तेन मूलेन भूम्याः पार्थिवादयः स्यन्दमानाः षड्रसा अभिगृह्णन्ते।

यह ज्ञातव्य है कि पेड़ों में जड़ जीवनायन (एक सशक्त पक्ष, जीवन के लिए आवश्यक) है। मूल भूमिगत होती हैं और मिट्टी में अग्रसर होती हुई वहाँ से छह प्रकार के विभिन्न रस प्राप्त करती हैं तथा आगे भेजती है।

यथा प्राणिनां मर्मच्छिन्ने निपातिता भवन्ति तथा वनस्पतेर्मूले
छिन्ने स्कन्ध-शाखा-पत्र-पुष्प-फलादीनि प्रशोषमापदयन्ते ॥3॥

जिस प्रकार किसी प्राणी का मर्मस्थान विदीर्ण होने पर वह निष्प्राण होकर गिर पड़ता है, वैसे ही वनस्पति में जड़ के कट जाने पर उसका तना, शाखाएँ, पत्तियाँ, पुष्प, फल आदि तत्काल सूख जाते हैं।

तत्र मूलं ब्रध्नं शिफा पादश्चरणमित्यनर्थान्तरम्।
अस्यैव स्वलक्षणैर्गणविभागश्चोपदेक्ष्यते ॥4॥

पेड़ की जड़ के पर्यायवाची हैं- मूल, ब्रध्न, शिफा, पाद और चरण आदि।[1]

1. मूलं क्ली, (मवते बध्नाति वृक्षादिकमिति। मू + 'मूङ्शक्यविभ्यः क्लः' उणादि. 4, 108 इति क्लः।) शिफा। शिकड़ इति भाषा। तत्पर्यायः। बध्नः अङ्घ्रिनामकः इत्यमरः। 2, 4, 12। कन्दः वृघ्नः। इति शब्दरत्नावली। जटा, इति जटाधरः। यथा मनौ। 3, 227। भक्ष्यं भोज्यञ्च विविधं मूलानि च फलानि च। हृद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि च।। (शब्दकल्पद्रुम भाग 3, पृष्ठ 761)

मूलानि हि प्रकृतिभिर्भिद्यमानानि चतुर्विधानि भवन्ति।
तद् यथा काष्टिकञ्च कान्दिकञ्च ग्रन्थिकञ्च प्रतानिकञ्चेति।

पराशर बोले कि प्रकृति के अनुसार, मूल के चार प्रकार होते हैं। इन चारित्रिक लक्षणों के अनुसार उनके प्रकार हैं। यथा- 1. काष्टिक, 2. कान्दिक, 3. ग्रन्थिक और 4. प्रतानिक।

अथ चतुर्विधं मूलः लक्षयति –

तत्र मूलानि हि यानि काष्ठगर्भाणि
तानि काष्टिकगणीयानि भवन्ति।

जब मूल के भीतर का भाग काष्ठ (लकड़ी) का हो तो वह मूल काष्टिक वर्ग की कही जाती है।

काष्ठमन्तरेण मूलानि यानि पीवरपिण्डितानि रसबहुलानि
तानि कान्दिकगणीयानि भवन्ति॥5॥

जब मूल का आन्तरिक भाग काष्टिक का नहीं होकर पीवर से पिण्डित होता है और उसमें पर्याप्त रस होता है तो उस मूल का वर्ग कान्दिक होता है।

प्रकृत्या कन्दश्च त्रिविधं भवति।
पाट्टिकञ्च रुहकञ्चारुहकञ्चेति।

उक्त कान्दिक मूल को भी तीन उपविभागों में बाँटा जा सकता है। यथा- 1. पाट्टिक, 2. रुहक और 3. अरुहक।

तत्र पाट्टिकानि तु येषां मध्यस्थं बीजपत्रं
बहुभिः पृथुलपट्टिकैश्च वेष्टितं भवति।
अधस्तादस्यैव कन्दस्य मूलानि सञ्जायते।
एतदेव गुच्छमूलम्।

इनमें से पाट्टिक प्रकार के मूल के मध्य में बीजपत्र अनेकों मांसल सतहों से घिरा रहता है और गुच्छों या जड़गुच्छों वाला होता है जो कन्द (गुच्छमूल) के नीचे रहते हैं।

अपि चेत् कालप्राप्तानां प्रशुष्काणां येषां वल्लीगुल्मानां
कान्दिकमूलानि न च प्रशुष्यन्तेऽपि च यथाकाले प्ररोहन्ति
तानि रुहकाणि भवन्ति।
एतेषु कन्देषु बीजत्वमभिजायते।

कुछ झाड़ियों और लताओं में भूमि के भीतर कन्द कभी नहीं सूखते और वे वर्ष के उचित समय पर पुनः अंकुरित हो जाते हैं। इन अंगों में अंकुरण का आन्तरिक गुण होता है। वे रुहक कहे जाते हैं। इन कन्दों में बीजत्व गुण विद्यमान होता है।

अरुहकाणि तु न प्ररोहन्ति कन्दाङ्कुराभावात्।
एव प्रशोषमापदन्तेऽचिरेण ॥6॥

जो अरुहक होते हैं, उनमें कन्दमूल होता है फिर भी वे कन्द से पुनरुत्पादन नहीं कर सकते हैं। ये कन्द प्राकृतिक रूप से शीघ्र सूख जाते हैं।

ग्रन्थिकगणीयानि मूलानि हि ग्रन्थिबहुलानि भवन्ति ॥7॥

वे मूल ग्रन्थिक वर्ग के होते हैं जिनमें गाँठों की बहुलता पाई जाती है।

यानि मूलानि भूमौ प्रतन्वन्ति
तानि प्रतानिकगणीयनि भवन्ति ॥8॥

कुछ पौधों की मूल लताओं की तरह फैलती हैं, उनको प्रतानिक वर्ग का कहा जाता है।

अथाकृत्यानुसारेण मूलः लक्षयति –

आकृतितो मूलानि खलु कानिचिद् दीर्घाणि नागदन्तप्रकाराणि कानिचित् पिण्डितवर्तुलानि कानिचित् शृङ्गभूतानि कानिचिद् गुच्छेन तन्तुसदृशनि भवन्ति ॥9॥

मूल की विभिन्न आकृतियाँ होती हैं। कुछ पौधों में यह हाथी की सूण्ड जैसी (गजशूण्डमूल) होती है। कभी ये ठोस और गोल दिखाई देती हैं तो कभी ये सींग जैसी प्रतीत होती हैं। अनेक पौधों में ये धागे के गुच्छे जैसी लगती हैं।

अथ वर्णानुसारेण मूलमाह –

अथ मूलानि हि पाण्डु-रक्त-पीत-नीलवर्णैस्तु विभज्यन्ते ॥10॥

कुछ वृक्षों में मूल का रंग परिवर्तित होता रहता है और वे मूल विभिन्न रंगों की दिखाई देती हैं। यथा- पाण्डु रंग वाली मूल, लाल रंग, पीले रंग और नीले रंग वाली।

मूलानि तु खलु यान्यवरोहन्ति शाखाकाण्डेषु
तान्यवरोहगणीयनि ॥11॥ इति मूलगणसूत्रीयः।

कुछ वृक्षों में मूल उनके तने से उत्पन्न होती हैं। उसको अवरोह मूल वर्ग का कहा जाता है। इस प्रकार मूल वर्ग सूत्र पूरा हुआ।

अथ त्वग्गणसूत्रीयः –

इह खलु त्वगावरणं वल्कलञ्चेत्यनर्थान्तरम् ॥12॥

अब त्वक् वर्ग कहा जाता है। त्वक्, आवरण और वल्कल ये समानार्थक हैं।

तत्र वृक्षाणां सर्वस्रोतांसि स्यन्दनी सिरा
जालानि निबद्धानि भवन्ति।

एतेषां स्रोतसां रसवहस्रोतोभिः स्यन्दनीभिर्मूलात्
पृथिव्याः स्यन्दमाना रसाः संप्लवन्ते वृक्षाङ्गेषु।
तस्माद् वृक्षाः सन्तर्पयन्ते वर्धन्ते च।

प्रायः सभी वृक्षों में स्रोतगत संचरण संस्थान होता है जो स्यन्दनी और सिरा से मिलकर बनता है। स्यन्दनी से संचरण का कार्य होता है और पौधे में प्रारम्भिक रस को मूल की सहायता से भूमि से संचरित किया जाता है। इस प्रकार पौधे को पोषण मिलता है और वह बढ़ता है।

एव सिराभिश्चोपसर्पयन्ति अपसर्पयन्ति च भावाभावौ।
व्युह्यमानत्वात् क्षतसंरोहणत्वाच्च
वृक्षशरीरे वायुरेव चानुमतव्यम्॥13॥

इसी प्रकार सिरा से द्रव अन्दर-बाहर की दिशाओं में संचारित किया जाता है। यह माना जाता है कि सामान्य कार्य क्षमता होने से और घाव के भरने से एक पौधे के शरीर में वायु आवश्यक होती है।

महीरुहाणां काण्डैकदेशे समन्ततो वल्कले छिन्ने
काण्डशाखापत्रादीनि प्रशोषमापद्यन्ते यतो मूलगतानां
स्रोतसां वल्कलेन सह संयोगाभावात्।

वृक्षों के तने के भाग को छाल चारों ओर से ढँके रहती है। वह छेद दिए जाने पर तना, शाखाएँ, पत्ते आदि पौधे के सभी अंगों के सूखने का कारण बनती है क्योंकि मूल का संचरण संस्थान कट जाता है।

तत्र सिराः खलु वायुवाहिन्यः स्रोतांसि भवन्ति।
स्यन्दन्यस्तु खलु रसवाहिन्यश्च॥14॥

पौधे में सिरा वायु का संचरण करती है और स्यन्दनी जलीय द्रव या रस को संवहित करती है।

अथ वल्कलस्य वर्णानुसारेण वर्गमाह -

अथास्य वल्कलस्य खलु गणविभागो वर्णतः
सित-पाटल-हरित-पीत-कपिशाश्चेति॥15॥

अब छाल को रंगों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है जो कि सफेद, गुलाबी, हरी, पीली या कपिशा (तरह-तरह की) हो सकती है।

अथ प्रकृत्यानुसारेण वल्कलः लक्षयति -

अतो वल्कलं प्रकृतितश्चांशुकपत्रकपाटलसार-
मृदुलखरकाण्टिकानीति विद्यात्॥16॥

पराशर ने कहा कि प्रकृति के अनुसार विभिन्न पेड़ों की छाल नाना प्रकार की होती है। यथा- अंशुक छाल, पत्रक छाल, पाटल, सार, मुलायम छाल, खर और काँटे वाली छाल।

तत्र वल्कलानि हि यानि तन्तु बहुलानि
तान्यंशुकगणीयानि भवन्ति वारगणीयमित्येके ॥17॥

वह छाल अंशुक वर्ग वाली कही जाती है, जो धागेनुमा ऊतकों से बनी होती है। इसको वारगणीय वर्ग वाली भी कहा जाता है।

यानि तु वल्कलानि पत्रकेणोपर्युपरि निसृष्टानि
तानि पत्रकगणीयानि भवन्ति।

पत्रक छाल पत्र (कागज़) जैसे परतों वाली बनी होती है। (जैसे कि भोजपत्र)। इसको पत्रक वर्ग में गिनना चाहिए।

यानि खलु पाटलेनोपर्युपरि निसृष्टानि
तानि पाटलगणीयनि ॥18॥

वह छाल तब पाटल वर्ग वाली कही जाएगी जबकि एक पर एक अनेक सतहें चढ़ी होती हैं। (जैसे कि दशमूल)।

यानि वल्कलानि खलु सारभावत्वेन चोपलक्षणीयानि
तानि हि सारगणीयानि भवन्ति ॥19॥

छाल सार गणीय वर्ग की तब कही जाएगी, जबकि वह पदार्थ के रूप में भरपूर होती हो। (जैसे कि बाँस) जिसमें सार-सार के ही लक्षण विद्यमान हों।

यानि वल्कलानि तु बहुलरसयुक्तत्वेन मृदुनि
भवन्ति तानि मृदुलगणीयानि ॥20॥

जिस छाल में अत्यधिक रस के कारण मृदुता विद्यमान हो, वह मृदुल वर्ग की कही जाएगी।

यानि वल्कलानि खलु वैशद्यगुणत्वेन कठोराणि
तानि खरगणीयानि भवन्ति ॥21॥

जब किसी छाल की सतह बहुत अधिक खुरदरी, कठोर हो तो उसको खर वर्ग वाली छाल कहा जाएगा।

यानि वल्कलानि कण्टकयुक्तानि तानि
कण्टकगणीयानि भवन्ति। इति त्वग्गणसूत्रीयः ॥22॥

वह छाल कण्टक वर्ग वाली कही जाएगी, जो कि काँटों वाली होती हो। इस प्रकार त्वक् वर्ग सूत्र पूरा हुआ।

अथ काण्डगणसूत्रीयः –

खलु काण्डः प्रकाण्डः स्कन्ध इत्यनर्थान्तरम् ॥23 ॥

अब काण्ड वर्ग सूत्र के क्रम में यह ज्ञातव्य है कि तने के कई समानार्थक शब्द हैं। यथा– काण्ड, प्रकाण्ड और स्कन्ध।

काण्डस्तु मूलानामूर्ध्वं तिष्ठति। एव शाखानामाश्रयः ॥24 ॥

तना किसी भी वृक्ष के मूलसंस्थान के ऊपर विद्यमान होता है और वह शाखाओं (टहनियों) को सहारा देता है।

काण्डात् शाखाश्च तथा शाखाभ्यः
सम्भवन्ति पुष्पपल्लवाश्च ॥25 ॥

यह भी ज्ञातव्य है कि तने से टहनियाँ होती हैं और टहनियों से पत्तियाँ और फूल उत्पन्न होते हैं।

अथ द्विविधः काण्डमाह –

द्विविधः खलुकाण्डः पत्रप्रभवः पुष्पप्रभवश्च।
यस्तु पत्रेभ्यो वर्तते स च पत्रप्रभवः।
पत्रप्रभवकाण्डस्तु स्थाणुकाण्ड इति विज्ञायते।

काण्ड को दो समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है। यथा– 1. पत्रप्रभव और 2. पुष्पप्रभव। इनमें से पत्रप्रभव तना पत्तियों से विकसित होता है। यह दीर्घजीवी होता है। इसलिए उस पत्रप्रभव तने को स्थाणुकाण्ड भी कहा जाता है।

पुष्पप्रभवस्त्वक्षकाण्ड इति विज्ञायते स च पट्टिकवेष्टितेन
वल्वजानाञ्चैव कण्डुलानां पुष्पकाले सम्भवति।
तस्मादक्षमञ्जरिकामाचक्षते एव फलपाकान्तश्च ॥26 ॥

द्वितीय पुष्पप्रभव तना अक्षकाण्ड के रूप में जाना जाता है। यह तना पट्टियों (सतहों) से परिवेष्टित होता है और वल्वज व कण्डुलों (घास वर्गीय पौधे) में फूल आने के समय विकसित हो जाता है। इसके बाद अक्ष, मंजरियाँ आती हैं और फल के परिपक्व होने पर सूख जाता है।

तत्र पत्रप्रभवकाण्डभेदाः –

अतः पत्रप्रभवकाण्डाः प्रकृतिर्भिभिद्यमानाः षड्विधास्तु
यथा दार्विककीलकाम्रकनिःसारपार्विकसौषिराश्चेति।

ऊपर कथित पत्रप्रभव तना स्वाभाविक रूप से छः वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। यथा– 1. दार्विक काण्ड, 2. कीलक काण्ड, 3. अम्रक काण्ड, 4. निःसार काण्ड, 5. पार्विक काण्ड और 6. सौषिर काण्ड।

तत्र दार्विकः काष्ठभूतश्च।
कीलककाण्डस्तु काष्ठभूतैस्तीक्ष्णकीलैः सङ्कीर्णो भवति।
त्रिभिर्वा चतुभिरस्रकैरस्रकं विद्यात्। साररहितेन निःसारं विद्यात्।
पर्वभिबहुभिर्युक्तैः पार्विकं विद्यात्।
सुषिरेण सौषिरं विद्यात्॥27॥

इनमें से जो दार्विक तना है, वह सामान्यतः काष्ठ ऊतकों से संरचित होता है। कीलक तना काष्ठ पर उत्पन्न तीखे काँटों से संकीर्ण होता है। त्रिभुजाकार अथवा चतुर्भुजाकार तने को अस्रक जानना चाहिए। जिस तने में पदार्थ की कमी हो, उसको निःसार तना कहा जाता है। जिस तने में अनेक खण्ड-पौर होते हैं, उसको पार्विक जाने और जो तना खोखला हो, उसको सौषिर काण्ड जानना चाहिए।

अथ शाखाङ्गाः लक्षयति –

प्रकृतिविशेषेण वृक्षाणां काण्डाच्छाखाः सम्भवन्ति।
यथाभूतं सम्भवति तदुपदेक्ष्यामः॥28॥

पराशर बोले कि प्रकृति की विशेषता के कारण वृक्षों में तने से टहनियाँ विकसित होती हैं। वे जैसे होती हैं, उस बारे में वर्णन करता हूँ।

खलु पत्रकुक्षौ शाखानां सम्भवो भवति।
केषाञ्चिद् वृक्षाणां पृथक्श्रेण्या केषाञ्चित पक्षश्रेण्या
केषाञ्चिदरकसंस्थानेन केषाञ्चित् साङ्कर्येण वा शाखा सम्भवति।
यत्र यत्र यद्यत् संस्थानं भवति
तत्र तत्र तदधिकृत्य संज्ञायते॥29॥

सभी पेड़ों में सामान्यतः शाखाएं पत्तियों के मूल से विकसित होती हैं। कुछ वृक्षों में शाखाएँ एकान्तर क्रम (पृथक् श्रेणीगत रूप) में आती हैं। कुछ वृक्षों में एक दूसरे के विपरीत (पँखों की तरह) शाखाएँ आती हैं। किसी-किसी में चक्राकार रूप (अरकसंस्थान) में भी उगती हैं। कभी उनका विन्यास अनियमित होता है अर्थात् वे तने पर यत्र-तत्र उग आती हैं। उगने की उनकी स्थिति के अनुसार उनको नामित किया जाता है।

भवति चात्र –

पत्रेभ्यो वर्तते काण्डः काण्डादेव शाखा स्मृता।
पत्रकुक्षौ भवेच्छाखा शाखायां पुष्पपल्लवौ॥30॥
इति काण्डगणसूत्रीयः।

यह ज्ञातव्य है कि पत्तियाँ तने को पोषण देती हैं और तना शाखाओं को पोषण देता है। पत्रमूल से शाखाएँ उगती हैं तथा शाखाएँ समयानुसार पत्तियाँ और पुष्प धारण करती हैं। इस प्रकार काण्ड वर्ग सूत्र पूरा हुआ।

अथ सारगणसूत्रीयः –

पादपानां वल्कलाभ्यन्तरे यत् कठिनं स सारः।
यथा देहिनोऽस्थि सारैदेहं धारयन्ति
तथा महीरुहा अभ्यन्तरगतसारेण तिष्ठन्ते।
स च सारः पर्यायान्तरेणेपचीयते कालपरिनामाच्च।

समस्त पादपों में छाल के भीतर जो कठोर पदार्थ होता है, वह सार कहा जाता है। जैसे देहधारियों में हड्डियों का ढाँचा सहारा देता है, उसी प्रकार वृक्षों में यह अन्तरभूत सार उनको सीधा खड़ा रखता है। एक के ऊपर एक परत के आने पर काल क्रम से कोई सार वृक्ष बन सकता है।

केषाञ्चिद् वृक्षाणां सारो वर्णान्तरेण परिवर्तते कालप्रकर्षाच्च।
तस्माद् वृक्षविशेषेण सारस्तु
सिता-रुण-रक्त-पीत-धूम्र-कृष्णाश्चेति वर्णतो विभज्यते ॥31॥

कुछ वृक्षों में वह सार समय पाकर विभिन्न रंगों में परिवर्तित हो जाता है। इसी कारण पादप के विभिन्न रंग हो सकते हैं। वह सफेद, अरुण वर्ण, लाल, पीला, धुएँ जैसा और काला या मिश्र वर्णों वाला हो जाता है।

पुनश्च सारः स्नेहगन्धाभ्यां द्विविधः।
तत्र स्नेहयुक्तेन स्नेहसार एवं गन्धयुक्तेन
गन्धसार इति विज्ञायते ॥32॥ इति सारगणसूत्रीयः।

पुनः ज्ञेय है कि यह सार 1. तैलीय और 2. गन्धीय– दो प्रकार का होता है। जहाँ पर तैल हो, वह स्नेहसार और जहाँ पर गन्ध विद्यमान हो, वह गन्धसार जानना चाहिए। इस प्रकार सार वर्ग सूत्र पूरा हुआ।

अथ रसगणसूत्रीयः –

अव्यक्तभावतन्मात्रात् खलु वृक्षशरीरेषु व्यक्तिभावरसा
अभिनिर्वर्तन्ते। तेषां रसानां योनिरुदकम्।

पराशर बोले कि अब मैं रस विषय के बारे में कहूँगा।[1] समस्त वृक्षों के शरीर में रस को मूलतः अदृश्य पदार्थ (अव्यक्तभाव तन्मात्रा) के रूप में देखना चाहिए। यह अनुभवयोग्य रस पादप के जीवन को जल से उद्गमित बताता है।

---

1. दार्शनिक विवेचनों में कहा गया है कि मात्र रसनेन्द्रिय से ग्राह्य जाति रसत्व से युक्त जो गुण है, वही रस है– रसनैकग्राह्यजातिमान् रसः। (प्रमाणमञ्जरी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2009 ई., गुणनिरूपण, पृष्ठ 118) यह भी कहा गया है कि जो रसना के द्वारा आस्वादित हो, वही रस है। प्रशस्तपादाचार्य ने रस को जीवन, पुष्टि, बल और आरोग्य का कारण कहा है। रस मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त भेद से छः प्रकार का होता है।

ते हि पाञ्चभौतिकगुणयोगात् स्थावराणां शरीरमभिप्रीणयन्ति।
तस्माद्धिवृक्षशरीराणि खल्वन्तरीक्षवाय्वग्नितोयभूमीनां
विकारहेतुभूतानि भवन्ति।

यह पाँच महाभौतिक तत्त्वों के गुणों के योग से वृक्ष जैसे स्थावरों के शरीर को पोषण देता है। वृक्षों के शरीर में विद्यमान मूल पदार्थ हैं– 1. आकाश, 2. वायु, 3. अग्नि, 4. जल और 5. भूमि। ये ही समस्त विकारों के हेतु होते हैं।

तत्र वृक्षाङ्गेषु येभ्यो येभ्यो भावेभ्यो महाभूतविकारा
मन्यमाना भवन्ति तदनु व्याख्यास्यामः ॥33॥

इन वृक्षों के अंगों में उन–उन महाभूतों के भावों से जो–जो विकार उत्पन्न होते हैं, उनको विभिन्न गुणों और लक्षणों के अनुसार विवेचित करता हूँ।

तत्राकाशात्मकं शब्दं लाघवं सौक्ष्म्यं सौषिर्यम् ॥34॥

किसी भी पादप में शब्द, हल्कापन, खोखलापन और सूक्ष्मता आदि का होना आकाश महाभूत के प्रभाव का परिणाम होता है जो कि पंचमहाभूतों में एक है।

वाय्वात्मकं स्पर्श रौक्ष्य व्युहनं चेष्टाश्च ॥35॥

इसी प्रकार स्पर्श, रूखापन, नियन्त्रण (व्युहन) और अन्य विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ वायु के कारण होती हैं।

अग्न्यात्मकं वर्णमौषण्यञ्च ॥36॥

वर्ण और उष्मा आदि क्रियाओं को अग्न्यात्मक जानना चाहिए।

अपात्मकं रसः शैत्यं मार्दवः स्नेहञ्च ॥37॥

जलात्मक कारण से रस, शीतलता, मृदुत्व और तैलीयता जैसे गुण होते हैं।

क्षित्यात्मकं गन्धः गौरवं स्थैर्यं मूर्तिश्च
एव स्थावराणां पाञ्चभौतिकं शरीरमुपदिशन्ति कुशलाः ॥38॥

अन्त में, पृथ्व्यात्मक कारण से वृक्ष में गन्ध, भारीपन, स्थिरता, मूर्तिमन्त होना जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। इस प्रकार विद्वानों द्वारा पादपों का पाँचभौतिक शरीर बताया गया है।[1]

---

1. प्रमाणमंजरी, पञ्चदशी आदि ग्रन्थों में पंचमहाभूतों की तन्मात्राओं, उनके गुणों और स्वरूप का वर्णन आया है। सांख्यदर्शन में पंचतन्मात्राओं का उल्लेख है– 1. रूप, 2. गन्ध, 3. रस, 4. शब्द और 5. स्पर्श। ये तामस अहंकार जन्य है। ये ज्ञानेन्द्रियों की हैं और उनसे होने वाले प्रत्यक्ष के सूक्ष्मरूप हैं जिनका प्रत्यक्ष नहीं, केवल अनुभूति होती है। महाभूत या तत्त्व जहाँ स्थूल हें, वहाँ ये सूक्ष्म हैं क्योंकि ये भूतों के सारतत्त्व हैं। ये तामसजनित होने से अचल है। तामस अहंकार भूतों को उत्पन्न करता हैं। शब्द तन्मात्रा से वायु जिसका गुण शब्द और स्पर्श है, रूप, स्पर्श तथा शब्द तन्मात्राओं से जल जिसका गुण रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द है और

अतो वृक्षशरीरे पञ्चभूतगुणसमन्विता जिह्वावैषयिकाः
षड्रसा उक्ताः मधुरा-म्ल-लवण-कटु-तिक्त-कषायाश्चेति ।।39 ।।

अब मैं पादप के शरीर में उपस्थित पाँच महाभूत के गुणों से युक्त जिह्वा-विषयों अर्थात् स्वाद से सम्बन्धित छह रसों को कहता हूँ। ये हैं- 1. मधुर (मीठा), 2. अम्ल (खट्टा), 3. लवण (नमकीन), 4. कटु (कड़वा), 5. तिक्त (तीखा, चरका) और 6. कषाय (कसैला)।

अपि चेदेकरसः कस्मिंश्चिद् वृक्षे नास्ति तत्रापि यो रसः
प्राधान्येनोपलभ्यते तमभिप्रेत्य रसगणमुपदिशन्ति रसज्ञाः ।।40 ।।

कदाचित् ही किसी पादप में केवल एक रस पाया जाता हो। तथापि मुख्य रस अन्य रसों से अधिक प्रभावी होकर प्रधान होता है। जो रसविद् हैं, वे पादपरस को अलग-अलग वर्गों में रखकर बताते हैं।

एषां षण्णां रसानामापगुणातिरेकान्मधुरो रसः ।।41 ।।

उक्त छह रसों में मधुर रस प्राथमिक गुणों वाला माना जाता है।

सलिलाग्निगुणातिरेकादम्लः ।।42 ।।

अम्ल रस जल और अग्नि तत्त्व प्राधान्य है।

क्षित्यग्निगुणातिरेकाल्लवणः ।।43 ।।

इसी प्रकार पृथ्वी और अग्नि के गुणों से लवणीयता होती है।

वाय्वाग्निगुणातिरेकात् कटुकः ।।44 ।।

वायु और अग्नि के गुणों के कारण कटुता पाई जाती है।

वाय्वाकाशगुणातिरेकातिक्तः ।

वायु और आकाश तत्त्वों के कारण तिक्त रस होता है।

पवनभूम्यतिरेकात् कषायः ।।

पवन और भूमि के गुणों के कारण कषाय रस होता है।

एव पञ्चभूतगुणसमन्विताः षड्रसा वृक्षाणां
पाञ्चभौतिकशरीरमभिप्रीणयन्ति ।।45 ।। इति रसगणसूत्रीयः ।

इस प्रकार छह विभिन्न रस जो पंचमहाभूतों के गुणों से जनित माने जाते हैं, पादप के पाँचभौतिक शरीर का पोषण करते हैं। यहाँ रस वर्ग सूत्र पर विमर्श पूरा हुआ।

गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द तन्मात्राओं से पृथ्वी का विकास होता है जिसके गुण ये ही तन्मात्राएँ हैं। यहाँ स्पष्ट है कि शब्द आकाश का, स्पर्श वायु का, रूप अग्नि का, रस जल का तथा गन्ध पृथ्वी की मुख्य तन्मात्राएँ हैं जो क्रमशः पंचमहाभूतों के गुण हैं। इन पंच महाभूतों के विभिन्न मात्राओं में सम्मिश्रण से ही विभिन्न वस्तुओं का निर्माण सम्भव होता है। (प्राचीन भारतीय दर्शन : डॉ. शिवस्वरूप सहाय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2001 ई., पृष्ठ 344)

अथ निर्यासगणसूत्रीयः –

वृक्षवल्लीगुल्मानां शाखापल्लवच्छिन्ने काण्डे शस्त्रक्षते
वा तत्र यच्च निःस्रवति तद्धि निर्यासम्।।46।।

अब निर्यास वर्ग सूत्र पर विमर्श किया जाता है। पादप, झाड़ी या लता की शाखा या पत्ती आदि को काटा जाता है या तने को किसी औजार से क्षति पहुँचाई जाती है, तब एक प्रकार का तरल पदार्थ बाहर निकलता है, उसको उसका निर्यास (गोंद) कहा जाता है।

प्रकृतिभेदेन निर्यासानि
परिप्लवफेनसान्द्रक्षीरमोचजतुक संज्ञकानि स्युः।

अपनी प्रकृति के अनुसार निर्यास के विभिन्न भौतिक गुण होते हैं। ये क्रमशः परिप्लव, फेन, सान्द्र (गाढ़ा), क्षीर, मोच और जतुक नाम वाले होते हैं।

तत्र परिप्लवन्तु सलिलसङ्काशम्। फेनस्तु फेनसङ्काशम्।
सान्द्रञ्च घनीभूतं कलकवदच्छम्।
क्षीरनिर्यासन्तु क्षीरसङ्काशम्।
मोचनिर्यासं पिच्छिलं साटकमस्नेहञ्च।
जतुकन्तु बहुस्नेहान्वितं पिण्डकं गन्धोपेतं वह्निदहनक्षमञ्च।।47।।
इति निर्यासगणसूत्रीयः।

इनमें से प्रथम परिप्लव निर्यास खुलकर बहने वाला जलीयद्रव जैसा होता है। दूसरा झाग जैसा निर्यास फेनिल होता है। तीसरा सान्द्र निर्यास घनीभूत और कलल की तरह आच्छादित होता है। चौथा क्षीर निर्यास दूध जैसा दिखाई देता है। पाँचवाँ मोच नामक निर्यास चिपचिपा, साटक और अतैलीय होता है। छठवाँ जतुक निर्यास बहुत तैलीयता वाला, बन्धा हुआ, गन्ध से युक्त और आग में जलने वाला होता है। इस प्रकार निर्यास वर्ग सूत्र पूरा हुआ।

अथ स्नेहगणसूत्रीयः –

इह खलु केषाञ्चिदुद्भिदानां पत्रपुष्पसारबीजादीनि
स्नेहयुक्तानि भवन्ति।।48।।

अब स्नेह वर्ग के विषय में विमर्श किया जाता है। पादपों में से कुछ में पत्ती, पुष्प, सार, बीज और निर्यास भी स्नेहयुक्त (तैलीय) पाए जाते हैं।

तेषामुद्भिदानां कस्यचित् पत्रे कस्यचित् पुष्पे
कस्यचिद् बीजे कस्यचिन्निर्यासे कस्यचित् सारे स्नेहोऽस्ति।
येषु येषु चाङ्गेषु स्नेहोऽस्ति
तत्तदङ्गमधिकृत्य तत्तत् संज्ञायते।।49।।

अर्थ यह हुआ कि पादपों में किसी के पत्र में, किसी के पुष्प में, किसी के बीज में, किसी के निर्यास और किसी के सार में भी स्नेह (तैलीय गुण) पाए जाते हैं। जिस-जिस अंग में स्नेह पाया जाता है, वह अंग उससे अधिकृत होता है- उनके स्नेह के गुण उनके उद्गम के अनुसार नामित किए जाते हैं।

स्नेहस्तु प्रकृत्या द्विविधो भवति। विरलं सान्द्रञ्च।
तत्र विरलं यद्धि शीतेन तनुभावं न जहाति।
सान्द्रन्तु सोमगुणत्वात् शीतेन घनीभूतं
भवति चोष्णेन द्रवयति॥50॥ इति स्नेहगणसूत्रीयः।

स्वभावतः स्नेह या तैलीय पदार्थ दो प्रकार के होते हैं- 1. विरल (तनु द्रव) और 2. सान्द्र (गाढ़ा द्रव)। शीत के प्रभाव से जो तैलीय पदार्थ जमते नहीं, वे विरल स्नेह और सोमगुण के कारण जम जाने वाले सान्द्र स्नेह कहलाते हैं। वे उष्मा को पाकर द्रवित हो जाते हैं। इस प्रकार स्नेह वर्ग सूत्र पूरा हुआ।

अथ कण्टकगणसूत्रीयः -

केषाञ्चिद् वृक्षाणां वल्कले पत्रे वा शङ्कुसङ्काशं
तीक्ष्णाग्रं यदङ्गं दृश्यते स हि कण्टकः॥51॥

पराशर बोले कि अब मैं काँटों के वर्ग के विषय में विमर्श करूँगा। किन्हीं वृक्षों में छाल अथवा पत्तों पर शंकु के आकार में आगे से तीखे जो अंग उगे हुए दिखाई देते हैं, वे काँटे होते हैं।

कण्टकस्तु प्रकृत्या त्रिविधो भवति। ऋजुवक्रकुटाश्चेति।
तत्र ऋजुकण्टकस्त्वनताग्रो वक्रोऽवनताग्रः कुटकण्टकस्तु
स्थूलकण्टक एव शिखराकारश्च।
वृक्ष एव कण्टकेन संज्ञायते॥52॥ इति कण्टकगणसूत्रीयः।

अपनी प्रकृति के अनुसार काँटे तीन प्रकार के होते हैं- 1. ऋजु (सरल), 2. वक्र (टेढ़े) और 3. कुट। इनमें से ऋजु काँटे वे होते हैं जो सीधे और बिना झुके हों। वक्र काँटे आगे से नीचे की ओर मुड़े होते हैं। तीसरे, कुट वर्ग के काँटे चौड़े आधार वाले और चोटी पर नुकीली रचना लिए होते हैं। इस प्रकार वृक्षों को उनके काँटों के आधार पर भी पहचाना जाता है। यहाँ कण्टक वर्ग सूत्र पूरा हुआ।

इति पराशरकृते वृक्षायुर्वेदे बीजोत्पत्तिकाण्डेऽष्टाङ्गसूत्रीयो नाम सप्तमोऽध्यायः॥7॥

इस प्रकार महर्षि पराशरकृत वृक्षायुर्वेद नामक ग्रन्थ में बीजोत्पत्तिकाण्ड में अष्टांगसूत्र नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ।

❖❖❖

अथ बीजोत्पत्तिकाण्डे द्विगणीयो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥8॥

अथ पराशरोवाच –

अथातो बीजाङ्कुरे द्विगणीयमध्यायं
व्याख्यास्याम इत्याह पराशरः ॥1॥

महर्षि पराशर बोले – अब आगे मैं द्विगणीय अध्याय में बीज और नव उद्भिद के विषय का व्याख्या सहित कहूँगा।

अथ बीजस्य स्वभावमाह –

इह खलु बीजन्तु वृक्षाणां सम्भवकारणं भवति।
विशेषतो बीजानां स्वभाव उद्भेदनश्च।
यस्मात् प्ररोहः सम्भवति तच्च बीजम्॥2॥

यह ज्ञातव्य है कि समस्त वृक्षों में बीज ही उत्पत्ति (वंश वहनकर्ता होने) का कारण होता है। बीजों की विशेषता उत्पत्ति का स्वभाव होना है– बीज की अन्तःप्रकृति है कि वह अंकुरण के समय ऊपर की ओर चुभकर मिट्टी के बाहर आ जाता है। इसी से प्ररोह–उत्पत्ति सम्भव होती है, उसको बीज कहा जाता है।

अथ चतुर्विधं बीजाङ्गानि –

खलु कीखोस-बीजमातृका-बीजपत्र-
मातृकाच्छदाश्चेति बीजाङ्गानि भवन्ति॥3॥

समस्त बीजों के निम्न अंग होते हैं– 1. कीखोस, 2. बीजमातृका, 3. बीजपत्र और 4. मातृकाच्छद।

तत्र कीखोसं लक्षयति –

तत्र बीजस्यावरणं कीखोसम्।
तच्च काष्टिक-कर्पर-मृदुलभेदेन त्रिविधं विद्यात्।

इनमें जो बीज का बाहरी आवरण होता है, उसको कीखोस कहा जाता है। उसके 1. काष्टिक, 2. कर्पर और 3. मृदुल– ये तीन भेद जानने चाहिए।

तत्र काष्टिकं काष्ठोपमम्।
कर्परं खर्परवद् भङ्गुरम्।
मृदुत्वेन मृदुलम्॥4॥

इनमें से प्रथम जो काठ जैसे लक्षणों वाला होता है, वह काष्टिक कहा जाता है।

द्वितीय, जो खोपड़े की तरह टूटने वाला होता है, उसको कर्पर कहा जाता है। तीसरा, जो मुलायम होता है, वह मृदुल नामक आवरण होता है।

बीजमातृकाः लक्षयति –

बीजमातृका तु बीजशस्यम्।

बीजमातृका को बीजपत्र के समान कहा जाता है। इसको बीजशस्य भी कहते हैं, वह बीज में जननीगुणा है।

बीजपत्रः लक्षयति –

बीजपत्रन्तु बीजमातृकाया मध्यस्थमादिपत्रञ्च।

बीजपत्र से आशय है- बीजमातृका में पहली पत्ती (पत्तियाँ) जो बीजपत्र कहलाती है। इसको आदिपत्र भी कहा जाता है।

मातृकाच्छः लक्षयति –

मातृकाच्छदस्तु तनुपत्रकवत्
मातृकाच्छादनञ्च कञ्चुकमित्याचक्षते ॥5॥

मातृकाच्छद की रचना बीजं के पतले पत्रक जैसी होती है। इसको मातृकाच्छादन और केंचुली भी कहा जाता है।

अथ द्विविधं बीजं लक्षयति –

बीजन्तु प्रकृत्या द्विविधं भवति।
एकमातृकं द्विमातृकञ्च।

प्रकृति के अनुसार बीज दो प्रकार के होते हैं- 1. एकमातृक बीज और 2. द्विमातृक बीज।

तत्रैकपत्रप्ररोहाणां वृक्षाणां बीजमेकमातृकं भवति।
द्विपत्रप्ररोहाणान्तु द्विमातृकञ्च ॥6॥

जहाँ पर वृक्षों में एक पत्र प्ररोहित होता है, वहाँ पर बीज एकमातृक होता है। जहाँ दो पत्र प्ररोहित होते हैं, वहाँ द्विमातृक बीज होगा। इस प्रकार एक और द्विपत्रीय बीज होते हैं।

अथ वर्णतः बीजः लक्षयति –

खलु न्यूनातिरेकविशेषान्महाभूतानामेव वृक्षाणां
फलबीजानां नानावर्णकृतिविशेषाश्च भवन्ति।
तत्र वर्णतो बीजानि तु श्वेत-रक्त-पीत-नीलादीनि
नानाविधानि मिश्रवर्णानि वा भवन्ति ॥7॥

समस्त वृक्षों में न्यूनाधिक रूप से पंच महाभूतों के गुणों फलस्वरूप फल व बीजों की एकाधिक वर्ण वाली रचनाएँ होती हैं। बीज वर्णानुसार सफेद, लाल, पीले, नीले आदि रंगों के अथवा मिले-जुले रंग वाले होते हैं।

अथाकृत्यानुसारेण बीजः लक्षयति –

आकृतितश्च बीजानि दीर्घ-वर्तुला-वर्तुल-पृथुक-
पुङ्ख-पुच्छिक-स्थूल-सूक्ष्मादीनि नानाविधानि।
कस्यचिद् बीजस्य धारावत् कर्णः दृश्यते।
तत्तु धाराबीजमाचक्षते ॥8॥

आकृति के अनुसार बीज लम्बे, गोल, कुछ गोलीयता लिए हुए, चपटे, छल्ले जैसे, पूँछ वाले, मोटे और छोटे- अनेक प्रकार के होते हैं। कुछ बीजों के धारा के समान कोने दिखाई देते हैं। ऐसे बीजों को धाराबीज कहा जाता है।

बीजानि तु कालप्राप्ते भूमौ प्ररोहन्ति।
वृक्षरुहाणां बीजन्तु वृक्षकाण्डे प्ररोहन्ति ॥9॥

बीज अपने निश्चित समय को पाकर भूमि में प्ररोहित होते हैं। कालान्तर में बीज से ही वृक्ष और उनके तने बनते हैं।

केषाञ्चिद् गुल्मक्षुपाणां बीजं नास्ति तेषां
पुष्पफलाभावादवकेशी विज्ञायते ॥10॥

कुछ पादपों-गुल्म और क्षुप में बीज नहीं होते हैं, उनमें पुष्पित और फलित होने का गुण नहीं होता। स्वाभाविक तौर पर ये बीज रहित होते हैं। इनको अवकेशी भी जानना चाहिए।

केषाञ्चिदवकेशिनां पत्रपृष्ठे बीजस्वभावः पत्राङ्कुरः सञ्जायते।
एतेन पत्राङ्कुरेण ते गुल्मक्षुपादयः समुद्भवन्ति ॥11॥

अवकेशी पादपों की पत्ती के पृष्ठभाग पर पत्रांकुर होते हैं जिनमें बीज के गुण विद्यमान होते हैं। इन पत्रांकुर की सहायता से अवकेशी परिवार के पादप-गुल्म, क्षुप आदि वंशवृद्धि करते हैं।

केचिद् वृक्षवल्लीगुल्माश्छिन्नकाण्डे प्ररोहन्ति।
तेषामपि काण्डगात्रे काण्डाङ्कुरः सञ्जायते।

कुछ पादक- वृक्ष, वल्ली, गुल्म अपने तने या शाखाओं के कटे भाग से जनन करते हैं। ये काण्डांकुर तने के शरीर पर विकसित होते हैं।

एव क्वचित् कन्दे सञ्जातः कन्दाङ्कुरेण क्वचिन्मूले
सञ्जातो मूलाङ्कुरेण प्ररोहयते।

एते अङ्कुराश्च बीजस्वभावा उद्भेदत्वाच्च
बीजगणीये व्याख्यातः ॥12॥

इसी प्रकार कुछ पादप तने पर काण्डांकुर से अभिवृद्धि करते हैं या कभी मूल से भी अभिवृद्धि करते हैं। स्वाभाविक रूप में ये बीजों का कार्य करते हैं। इन्हें बीजों के वर्ग में विवेचित किया गया है।

केषाञ्चित् सफलपुष्पाणां बीजाधारे बीजं पूर्णाङ्गं न जायते।
तेषां पुष्पाणां बीजपोष्टरसादयश्चान्यतमेषु खल्वङ्गेषु
प्रभुतेन सम्प्लवत्वाद् बीजाधारे बीजं न जायते न वा
परिपुष्टञ्च, बीजपोष्टरसाभावात्।
एतेषां पुष्प वृक्षाणां बीजपोष्टरसादयो यस्मिन् यस्मिन्नङ्गे
सम्प्लवते प्राचुर्येण तस्मिंस्तस्मिन्नङ्गे बीजभावमुत्पन्नं भवति।
तस्मात् कस्यचित् कन्दे कस्यचित् काण्डे कस्यचित् पत्रे
बीजभावं सञ्जायते। एतस्मादङ्गादेव प्ररोहत्वाद्
वृक्षास्तत्तदङ्गमधिकृत्य ते संज्ञायन्ते।
यथा- कन्दरुहः काण्डरुहः पत्ररुहश्चेति।
एतदेव विकृतेन भवति। कश्चिदाह स्वभावेन भवति।
न तत् सम्यक् यतः प्रथमबीजाभावादिति बीजगणसूत्रीयः ॥13॥

उपज वाले पुष्प होने के बावजूद कुछ पादपों में पूर्णांग बीज उत्पादित नहीं होते हैं। इसका कारण पोषक द्रव्य के विशेष गुण और उसका दिशा बदलना (अन्य अंगों में चले जाना) होता है। परिणामतः या तो बीजाधार में बीज बनता ही नहीं या सुप्त रह जाता है। दूसरे अंगों में पोषक द्रव्यों के अत्यधिक संचरण से वहाँ अंकुरण प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। यह प्रकन्द अथवा काण्ड या पत्ती भी हो सकती हैं। इस प्रकार की अभिवृद्धि को 1. कन्दरुह, 2. काण्डारुह और 3. पत्रारुह नाम से कहा जाता है। कोई इसको असामान्य गुण भी कह सकता है लेकिन यह उचित नहीं, क्योंकि तब यह प्रश्न होगा कि पहला बीज कहाँ से आया? इस प्रकार यहाँ बीजगणीय सूत्र पूरा हुआ।

अथ प्ररोहगणीयम् –

इह खलु प्ररोह उद्भेदोऽङ्कुर इत्यनर्थान्तरम् ॥14॥

पराशर बोले कि अब मैं प्ररोह (अंकुरण) का विवरण दूँगा। उद्भेद या अंकुरण इसके समानार्थक शब्द हैं।

अथ प्ररोहस्याङ्गानि –

अङ्गानि खल्वस्य प्ररोहस्य तु बीजमातृका-
बीजपत्रमूलानीति भवन्ति ॥15॥

अंकुर के विभिन्न अंग होते हैं। यथा- बीजमातृका, बीजपत्र और मूल।

यदा भूमौ निपतितं बीजमुच्छजत्वं मृदुत्वं मूलभावञ्च
याति तदाङ्कुरोऽभिनिर्वर्तते। ततो बीजमातृका व्यक्ताभवति।
क्वचिद् बीजपत्रञ्च ॥16॥

जब एक बीज मृदा के सम्पर्क में आता है, वह मुलायम होकर फूल जाता है। तब यह मूल को मिट्टी में धँसाकर स्वयं को तैयार करता है। इस प्रकार अंकुरण की प्रक्रिया पूरी करता है और पत्र दिखाई देने लगते हैं और कभी-कभी प्रारम्भिक पत्ती भी दिखाई देती है।

अथ पादपनिर्माणप्रक्रियामाह -

अङ्कुरनिर्वृत्ते बीजमातृकाया रसः सम्प्लवते प्ररोहाङ्गेषु।
तेनैव रसेन प्ररोहः स्निह्यते वर्धते च
यावन्मूलं न स्वतन्त्रवृत्तिः स्यात्॥17॥

जब अंकुरण हो जाता है, नन्हीं पौध अपना पोषण बीजमातृका से लेना प्रारम्भ कर देती है। इस प्रकार पोषण आपूर्ति से पौध उगती जाती है। जब तक मूल स्वयं को स्थापित कर पोषण के योग्य नहीं हो जाती, यह प्रक्रिया अनवरत रहती है।

यदा प्ररोहः स्वातन्त्र्येण भूम्याः पार्थिवरसं
गृह्यति तदा बीजमातृका प्रशोषमापद्यते।
ततो मूलेभ्यः पार्थिवरसः स्यन्दनीभिः सम्प्लवते पत्रेषु।
तत्र रञ्जकेन पच्यमान् यन्मलं निर्गच्छति तदुष्मा भवति।

नवांकुर जब मृदा से सीधे-सीधे पार्थिवरस प्राप्त करने लगता है, बीजपत्र सूख जाते हैं। अब मूल पार्थिवरस जलीयद्रव्य आदि प्राप्तकर स्यन्दनी (नामक शिरा) के माध्यम से पत्तियों तक पहुँचाती है। पत्ती में पार्थिवरस का पाचन होता है जो रंगीन पदार्थ के रूप में उपस्थित होता है। इस प्रक्रिया में कुछ गर्मी से मलीय पदार्थ बाहर आ जाता है।

ततः पुष्यन्ति पच्यमानात् सूक्ष्मरसादस्य सर्वाङ्गाणि।
तस्मात् प्ररोहः कालपरिणामात् सर्वाङ्गेण परिपूर्णः भवति॥18॥

यह लिसलिसा पदार्थ जो एक शुद्ध पोषक होता है, नवांकुर के सभी अंगों को पोषित करता है। परिणामतः समयानुसार नवांकुर एक पूर्णरूप में पौधा बन जाता है।

अथ मातृकाभेदेन प्ररोहभेदाह -

खलु बीजमातृकाभेदेन प्ररोहो द्विविधो भवति।
एकमातृकोद्विमातृकश्च।

सभी पादपों में बीजमातृकाभेद से प्ररोह (अंकुर के मूल के ऊपर का भाग) दो प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है- 1. एकमातृक और 2. द्विमातृक।

तत्रैकमातृकप्ररोहाणां प्ररोहे एकपत्रं भवति।
द्विमातृकप्ररोहाणान्तु द्विपत्रञ्च।

वहाँ अंकुरण के समय निकलने वाले पत्रक से एकमातृक एक पत्ती और द्विमातृक दो पत्तों वाला नामित होता है। वहाँ एक मातृक में एक आरम्भिक पत्र अंकुरण में होता है, द्विमातृक में दो प्रारम्भिक पत्र आते हैं।

त्रिविध प्ररोहः -

प्ररोहस्तु पुनः प्रकृत्या त्रिविधो भवति।
अव्यक्तमातृकश्च व्यक्तमातृकश्च विदलश्चेति।

प्ररोह पुनः प्रकृति के अनुसार तीन प्रकार का होता है- 1. अव्यक्तमातृक, 2. व्यक्तमातृक और 3. विदलमातृक।

तत्राव्यक्तमातृकप्ररोहस्य कठोरकीखोसेन मातृका संवीता भवति।
व्यक्तमातृकस्य तु मृदुलकीखोसत्वाद् मातृका व्यक्ता भवति।
विदलस्य बीजे बीजमातृका कुञ्चिता भवति।
ततः प्ररोहोद्गमे बीजमातृका विशिष्टदलेन व्यक्ता भवति॥19॥

इनमें से पहला अव्यक्तमातृक प्ररोह वह होता है जिसमें बीज का खोल कठोर होता है। दूसरे व्यक्तमातृक प्ररोह में बीजखोल मुलायम होता है और पत्र दिखाई देते हैं। तीसरे विदलमातृक में प्रारम्भ में पत्र कुंचित रहते हैं। जब प्ररोह को पूर्ण पोषण मिल जाता है, तब पत्र वास्तविक रूप में आने लगते हैं।

अथ नामतः प्ररोहः भेदाह -

नामतश्च प्ररोहः पञ्चविधो भवति।
तद् यथा बीजाङ्कुरश्च पत्राङ्कुरश्च
काण्डाङ्कुरश्च कन्दाङ्कुरश्च मूलाङ्कुरश्चेति।

नाम से प्ररोह पाँच प्रकार के होते हैं। यथा- 1. बीजांकुर, 2. पत्रांकुर, 3. काण्डांकुर, 4. कन्दांकुर और 5. मूलांकुर।

तत्र बीजेभ्यो ये चाङ्कुराः सम्भवन्ति ते बीजाङ्कुराः।
एव पत्रकाण्डकन्दमूलेभ्यः
सम्भवाश्चाङ्कुरास्तेन तेनाङ्गेन विज्ञायन्ते॥20॥

इनमें से जो प्ररोह बीज से जन्म लेता है, उसको बीजांकुर कहते हैं। इसी प्रकार

पत्ती से पत्रांकुर, तने की कलम से काण्डांकुर, प्रकन्द से कन्दांकुर और मूल से मूलांकुर कहलाते हैं। जो जिसके अंकुर से उत्पन्न होते हैं, उनको उनके अंगों के अनुसार जानना चाहिए।

अथाङ्गानुसारेण गणमाह –

वृक्षवल्लीगुल्माश्च येन येनाङ्गेन
प्ररोहन्ति तेन तेनाङ्गेन स स गणः संज्ञायते।
यथा बीजेभ्यो बीजरुहाः पत्रेभ्यः पत्ररुहाः काण्डेभ्यः
काण्डरुहाः कन्देभ्यः कन्दरुहा मूलेभ्योमूलरुहाश्चेति ॥21॥

वृक्ष, लता और झाड़ियों में जो जिस अंग से प्ररोहित होता है, उसको उस अंग के वर्ग से नामित किया जाता है। यथा– बीज से एक पादप को बीजरुह, पत्ते से पत्ररुह, तने से काण्डरुह, कन्द से कन्दरुह और मूल से मूलरुह कहा जाता है।

बीजानां प्ररोहे हेतवः –

बीजानां प्ररोहे भूम्यपवातातपादयो हेतुभूताश्च भवन्ति।
तैरेव प्ररोह आप्यायते वर्धते च ॥22॥

बीज के अंकुरण की प्रक्रिया में चार घटक काम करते हैं। यथा– मृदा, जल, वायु और उष्मा। ये सभी उसके पोषण में सहायता करते हैं और बढ़त को बढ़ाते हैं।

अतः पृथिवी धारणे वर्धणे, आपः संश्लेषणे, वात उद्भेदने,
आतपो दहने रञ्जने एव कारणं भवति ॥23॥

मृदा पौधे को धारण करती है। जल भूमि से पदार्थ के संश्लेषण के लिए आवश्यक है। वायु प्ररोह के प्रस्फुटन के लिए और उष्मा दहन और रंजक क्रिया के लिए आवश्यक है तथा इसके बाद भी पादप के विकास के लिए अनिवार्य है।

प्ररोहस्याङ्गानिमाह –

प्ररोहस्य यानि यानि खल्वाङ्गानि
पाञ्चभौतिकानि तान्यनुव्याख्यस्यामः।

पराशर बोले कि अब मैं प्ररोह के विभिन्न अंगों के विषय में बताऊँगा जो पंच महाभूत (पाँच तत्त्वों) से सम्बन्धित होगा।

तद् यथा बीजमातृका मूलं गन्धेश्चेति पृथिव्यात्मकानि।

बीजमातृका, मूल और अंकुरण की गन्ध मिट्टी की गन्ध सी होती है। स्वाभाविक है कि ये पृथिव्यात्मक हैं।

अपात्मकानि तु स्यन्दनीरसस्नेहाश्चेति।

इसी प्रकार स्यन्दनी (परिवहनीय शिरा) जो जलीय द्रव्य (रस) और तैलीय पदार्थ ले जाते हैं, जलात्मक हैं।

औषण्यं वर्णः पत्रञ्चेति तेजसात्मकानि।

उष्मा और रंग जो पत्तियों से जुड़े हैं, उनका उद्गम तेज महाभूत (अग्नि) से होता है- वे तेजसात्मक हैं।

सिराजालतन्तवश्चेति वाय्वात्मकानि।

इसी प्रकार शिरा-जाल, तन्तु आदि वायु महाभूत से सम्बन्धित होते हैं और वाय्वात्मक हैं।

आकाशत्मकानि तु छिद्राणि स्युः ॥24॥

छिद्र होने अथवा खोखले होने के लिए आकाश महाभूत आवश्यक है, ये आकाशत्मक होते हैं।

अन्यदप्याह -

यदि चेत् कालवैगुण्यात् पृथिव्यादीनामन्यतमस्य वा
हीनातियोगमिथ्यायोगाच्च बीजे यस्य यस्याङ्गस्य
बीजभाव उपतप्तो भवति तदा प्ररोहस्य
तस्य तस्याङ्गस्य विकृतिरूप जायते॥25॥

यदि काल (मौसम, ऋतु) विपरीत हो जाए, पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वों का अनुपात कम अथवा अधिक हो जाए और मिथ्या (असंतुलित) संयोग हो तो बीज अपने अंगों में दोषपूर्ण हो सकता है। ऐसे में उसका अंकुरण भी दोषपूर्ण या विकृतिकारक हो सकता है।

भवन्ति चात्र -

कललाज्जायते पिण्डं पिण्डाद् बीजत्वमुद्भवम्।
बीजाङ्कुराद् भवेन्मूलं मूलात् पर्णं समुद्भवम्॥26॥

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि लिसलिसे पदार्थ (कलल) से पिण्ड बनता है, पिण्ड से बीजत्व उत्पन्न होता है। बीज के अंकुरण होने पर मूल होता है और मूल से पत्ते उत्पन्न होते हैं।

पर्णात्मको भवेत् काण्डः काण्डाच्छाखा प्रजायते।
शाखायाश्च भवेत् पुष्पं पुष्पात् फलं ततो बीजम्॥27॥

उक्त पत्तों से तने की रचना होती है। तने से शाखाएँ उत्पन्न होती हैं। शाखाओं से पुष्प होते हैं और उनसे फिर फल लगते हैं तथा फल से बीज बनते हैं।

एष क्रमो बीजोत्पत्तेनिसर्गाद् भुवि जायते।
इति प्रोक्तो बीजाङ्कुरौ द्विगणे यस्य यद्भवेत्॥28॥

इस प्रकार द्विगणीयाध्याय बताता है कि किस प्रकार बीज का अंकुरण प्राकृतिक प्रक्रिया को और पादप जीवन को निरन्तर रखता है।

तत्र श्लोकाः –

सूत्रं यच्च बीजोत्पत्तेर्भूमिवनानि यानि च।
वृक्षाङ्गपत्रगणश्च पुष्पफलौ पृथक् पृथक्॥

स्मृतिगत कथन से पराशर कहते हैं कि जीवन का उद्गम, मृदा के लक्षण, वनों की प्राचीन भारत में विद्यमानता, पादप अंग- विभिन्न प्रकार की पत्तियाँ, विभिन्न प्रकार के पुष्प और पृथक्-पृथक् फल यहाँ कहे गए हैं।

मूलत्वक्काण्डसाराश्च निर्यासौ स्नेहकण्टकौ।
इत्यष्टगणसङ्ग्रहो यस्य यच्च स्वलक्षणम्॥29॥

इसी प्रकार मूल, छाल, तना, सार, रस, निर्यास, तैल, काँटे- ये आठ वर्ग संग्रह हैं जिनके उनके अपने-अपने लक्षण हैं।

बीजानां प्ररोहाणाञ्च द्विगणे यच्च स्वरूपम्।
अस्मिन् काण्डे बीजोत्पत्तौ तत् सर्वं सम्प्रकाशितम्॥30॥

बीज और प्ररोहण- इन द्विगणों के स्वरूप को इस बीजोत्पत्ति काण्ड में सर्वतया स्पष्ट किया गया है।

इति पराशरकृते वृक्षायुर्वेदे बीजोत्पत्तिकाण्डे द्विगणीय नाम अष्टमोऽध्यायः॥8॥

॥ इति बीजोत्पत्तिकाण्डः॥

इस प्रकार महर्षि पराशरकृत वृक्षायुर्वेद नामक ग्रन्थ में बीजोत्पत्तिकाण्ड में द्विगणीय नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ। यहाँ बीजोत्पत्तिकाण्ड पूरा हुआ।

❖❖❖

अथ द्वितीयभागः वनस्पतिकाण्डः

वनस्पतिनिर्वर्णनाऽध्यायः ॥1 ॥

अथ पराशरोवाच –

अथातो वनस्पतिनिर्वर्णनाध्यायं
व्याख्यास्यामः इत्याह पराशरः ॥1 ॥

मुनि पराशर बोले- अब मैं पादपों के वनस्पति विभाग पर चर्चा करूँगा।

अथ वनस्पतिनां सामान्यलक्षणमाह –

इह खलु वनस्पतिनाञ्चादौ सामान्यलक्षणमुपदिश्य विशेषेणोपदेक्ष्यते। वनस्पतिनान्तु पुष्पमव्यक्तं भवति। एव अपुष्पवन्तपुष्पेण संज्ञायते। यस्मात् वनस्पतिनां पुष्पाधारो वृत्तपरिमण्डलफल्गुस्थालकञ्च भवति। यतस्तत्र सूर्यो न भाति न चन्द्रमाश्च। सर्वे वनस्पतयः क्षीरवृक्षाश्चैव शुङ्गवृक्षा भवन्ति।

इस क्रम में प्रारम्भ में मैं वनस्पति पादपों का सामान्य विवरण दूँगा। तत्पश्चात् उनके विशिष्ट लक्षणों का प्रतिपादन किया जाएगा। वनस्पति पादपों के पुष्प अव्यक्त होते हैं। उनको अपुष्पवन्त कहा जाता है जिसका आशय है कि वनस्पति पादपों को सूर्य या चन्द्रमा का प्रकाश नहीं मिलता क्योंकि ये फल्गु स्थालक में बन्द होते हैं जो कि गोल और खोखला होता है। सभी वनस्पति वर्ग के पादप दूध उत्पन्न करते हैं और इनमें एक विशेष प्रकार की पत्ती होती है जिसको शुंग कहा जाता है।

तत्र श्लोकाः –

अथ वनस्पतिश्चैव गूढपुष्पः क्षीरिद्रुमः।
अपुष्पवन्तपुष्पेण यस्तु हि परिकीर्तितः ॥2 ॥
बीजमावर्तते यस्य स्थालके फल्गुसंज्ञके।
तस्मात् फल्गुफलेनैव फल्गुद्रुम उदाहृतः ॥3 ॥

वनस्पति वर्ग के पादपों के विषय में सारांशतः यह कहा जा सकता है कि इनके पुष्प गूढपुष्प और अपुष्पवन्त- ऐसे प्रकार वाले होते हैं। इनमें दूध होता है। वनस्पति पादपों के बीज फल्गुफल में रहते हैं। इस कारण वनस्पति पादपों को जिनमें कि फल्गु फल होता है, फल्गुद्रुम कहा जाता है।

अथ यज्ञाङ्गस्य लक्षयति –

यज्ञाङ्गः शुङ्गवृक्षश्च बहुबीजो द्विमातृकः।
सामान्यं नाम रूपञ्च फल्गुद्रुमस्य भाषितम् ॥4 ॥

जो यज्ञांग (यज्ञ के लिए काम में आने वाले) और शुंग वृक्ष होते हैं, वे बहुबीजी और द्विमातृक होते हैं। सामान्यतः उनको नाम और रूप से फल्गुद्रुम के नाम से जाना जाता है अर्थात् उनमें बहुबीजीय फल होते हैं। इनके बीच द्विबीजपत्री होते हैं, फल्गुद्रुमों का काष्ठ यज्ञादि वैदिक अनुष्ठानों में उपयोगी होता है। इसी कारण इन पादपों को यज्ञांग कहा जाता है। इनमें विशेष कलिका होने से इन्हें शुंगवृक्ष भी कहते हैं।

तत्र प्रकृत्यानुसारेण फल्गुद्रुमस्य भेदाह –

तत्र फल्गुद्रुमो यस्तु प्रकृत्या विविधः शृणुः।
कश्चिदवरोहिश्चैव कश्चिदेव विशिष्यते॥5॥
कश्चिच्छुक्लक्षीरिश्चैव कश्चिद् हेमक्षीरिर्भवेत्।
कस्यचित् कुक्षिफलञ्च काण्डे क्वचित् फलागमः।
एवंविधश्च भेदेश्च दृश्यते फल्गुपादपे॥6॥

इन फल्गु पेड़ों में अनेक प्रकृति के पादप होते हैं, उनको सुनिए- कुछ फल्गु वृक्षों में अवरोही मूल पाई जाती है। कुछ ऐसे ही विशिष्ट होते हैं। कुछ पादपों में सफेद दूध पाया जाता है। कुछ पादपों में पीला दूध होता है। कुछ पादपों में फल पत्ती के मूल में लगते हैं जबकि कुछ पादपों में ये फल तने पर आते हैं। इस प्रकार फल्गु वर्ग के पादपों में अनेक भेद दिखाई देते हैं।

अथ सोदाहरण लक्षयति –

अतो नामरूपाभ्याञ्च पृथक्त्वेन विवक्षते।
यस्य यद् नामरूपञ्च विशेषो यत्र यद्भवेत्॥7॥

इसी कारण उनके नाम और रूप पृथक्-पृथक् हो सकते हैं। आगे कुछ वनस्पति वर्ग के पादपों के उदाहरण उनके नाम और रूप-लक्षणों समेत कहूँगा।

वटः फल्गुस्थालकश्च रक्तफलः क्षीरिद्रुमः।
कुक्षिफलः शुङ्गवृक्षः शुक्लक्षीरिर्महाद्रुमः॥8॥
न्यग्रोधपादपो ध्रुवः स्थिरायुर्जुहूपर्णकः।
अवरोहिश्च स्कन्धजो बहुपादो वनस्पतिः॥9॥

इनमें से वट (बरगद) का फल लाल सुर्ख होता है। उसका स्थालक गोल और खोखला होता है। यह दूधीय द्रुम होता है। पत्ती के मूल में फल आते हैं। बरगद में पत्ती विशेष प्रकार की होती है जिसको शुंग कहा जाता है। इसका दूध सफेद होता है। बरगद का समानार्थक महाद्रुम और न्यग्रोध पादप होता है। अन्य समानार्थक स्थिरायु है जिसका आशय है दीर्घजीवी अर्थात् अनेक वर्षों तक जीवित रहने वाला। इसकी पत्ती का आकार जुहू जैसा होता है जो कि वैदिक अनुष्ठानों में भण्डारण के काम आते हैं। बरगद में

अवरोही मूल होते हैं जो कि तने से विकसित होते हैं और जो उसकी फैलती बड़ी शाखा को सहारा देते हैं।

अवटो नन्दीवटश्च नदीवटः क्षीरिद्रुमः।
फल्गुफलो भवेच्चैव पीतफलो महाद्रुम ॥10॥
कुक्षिफलश्च शुङ्गी च शिल्पक्षीरिश्च स्कन्धजः।
अवरोहिः प्ररोही च स्रुवपर्णो वनस्पति ॥11॥

अवट वनस्पति वर्ग का एक अन्य पादप है। इसके अनेक पर्यायवाची हैं। यथा- नन्दीवट, नदीवट, क्षीरीद्रुम, फल्गुफल, पीतफल, महाद्रुम, कुक्षिफल, शुंगी, शिल्पक्षीरी, स्कन्धजा, अवरोही, प्ररोही और स्रुवपर्ण।

अन्यदप्याह -

पारिशः फलिशवृक्षः कुपीतनः खरच्छदः।
फल्गुद्रुमः पीतफलश्च कमण्डलुः सुदर्शनः॥
अवरोहिः प्ररोही च क्षीरद्रुः कुक्षिफलदः ॥12॥
इत्यवरोहिफल्गुद्रुमः।

अन्य पादपों में पारिश पादप के पर्यायवाची हैं- फलिशवृक्ष, कुपीतन, खरच्छद, फल्गुद्रुम, पीतफल, कमण्डलु, सुदर्शन, अवरोही, प्ररोही, क्षीरद्रुम, कुक्षिफलद।

अथा श्रीपर्णफल्गुद्रुमाह -

अश्वत्थः पिप्पलश्चैव श्यामलः कुञ्जराशनः।
शुभदः कुक्षिफलश्च फल्गुफलश्च याज्ञिकः ॥13॥
श्रीपर्णो दीर्घवृन्तश्च चलपत्रः क्षीरिद्रुम।
वासन्तो मधुपर्णश्च पूतद्रु रक्तवल्लवः ॥14॥

अश्वत्थ वृक्ष के अनेक पर्यायवाची होते हैं। यथा- पीपली, श्यामल, कुंजराशन, शुभद, कुक्षिफल, फल्गुफल, याज्ञिक, श्रीपर्ण, दीर्घवृन्त, चलपत्र, क्षीरद्रुम, वासन्त, मधुपर्ण, पूतद्रुम और रक्तपल्लव।

वटी पर्कटी प्लक्षश्च पिप्परिश्चारुदर्शनः।
श्रीपर्णः क्षीरिवृक्षश्च फल्गुद्रुः कुक्षिफलदः ॥15॥
इतिश्रीपर्णफल्गुद्रुमः।

प्लक्ष (पाकड़) जैसे वनस्पति वर्ग के पादप के कुछ पर्यायवाची होते हैं। यथा- वटी, पर्कटी, पिप्परी, चारुदर्शन, श्रीपर्ण, क्षीरीवृक्ष, फल्गुद्रुम, कुक्षिफलद- अन्त के चार पर्यायवाची वनस्पति वर्ग में पाए जाने वाले नामों जैसे ही हैं।

अथोदुम्बरः लक्षयति –

उदुम्बरः क्षीरिवृक्षो हेमदुग्धः सदाफलः।
यज्ञाङ्गः काण्डफलश्च फल्गुद्रुर्यज्ञोदुम्बरः ॥16॥
इति हेमदुग्धकाण्डफलः फल्गुद्रुमः।
नद्योदुम्बरः फल्गुश्च काण्डफलश्च शुङ्गकः ॥17॥
काकोदुम्बरः फल्गुश्च मलायुः कर्कशच्छदः।
क्षीरद्रुः काण्डफलश्च फल्गुशाखः सदाफलः ॥18॥
गुल्मोदुम्बरः फल्गुश्च कुक्षिफलः खरच्छदः।
वल्ल्योदुम्बरः फल्गुश्च कुक्षिफलश्च वारिजः ॥19॥
वल्लीफल्गुर्वलयश्च भूमिफल्गुः खरच्छदः।

दूध वाले ही उदुम्बर (गूलर, उमर) के पर्यायवाची हैं– क्षीरीवृक्ष, हेमदुग्ध, सदाफल, यज्ञांग, काण्डफल, फल्गुद्रुम और यज्ञोदुम्बर। इसके अन्तिम दो नामों से ज्ञात होता है कि इसके काष्ठ से यज्ञों की पवित्र अग्नि प्राप्त की जाती थी। इस प्रकार यह हेमदुग्ध, काण्डफल और फल्गुद्रुम होता है। उदुम्बर से जुड़ी अन्य प्रजातियाँ हैं– नद्योदुम्बर, काकोदुम्बर, गुल्मोदुम्बर, वल्योदुम्बर। इन प्रजातियोंके अनेक पर्यायवाची हैं। यथा– फल्गु, काण्डफल, खरच्छद या कर्कशच्छन्द।

अनेनोपदेशेन चानुक्तफल्गुफलानां गणविभागश्चादिशेत् ॥20॥
कस्मिंश्चित् फल्गुद्रुमगणे मिश्रलक्षणं भवति।
तत्र फल्गुस्थालकेन सह पिण्डस्थालकमपि दृश्यते ॥21॥

इस तरह कहकर पराशर बोले कि अन्य अनेक वनस्पति पादप हो सकते हैं जिनमें मिश्रित लक्षण हों तथा फल्गु स्थालक व पिण्डस्थालक दिखाई देते हों।

एव फल्गुस्थालके परिमण्डलमध्यस्थे।
पिण्डस्थालकान्तिकैश्च कोषफलानि भवन्ति ॥22॥
एष गणो मिश्रफल्गुद्रुमो विज्ञायते।

परवर्ती लक्षणों में जो पूर्ववर्ती की खोखली गुहा में बन्द रहते हैं, फल देते हैं जिनको कोषफल कहा जाता है। इनका समूह मिश्र फल्गुद्रुम कहलाता है।

अथ पनसमाह –

पनसः शुङ्गवृक्षश्च क्षीरद्रुः काण्डफलदः।
मिश्रफल्गुगणश्चैव कोषफलो भवेच्च सः ॥23॥
पिण्डफल्गुस्थालकाभ्यां कोषफलसमन्वितैः।
द्विमातृकबीजश्चैव विष(म)मातृकं भवेत् ॥24॥

पनस मिश्रफल्गु द्रुम (अंजीर, उदुम्बर) वर्ग का पादप है। पनस के अनेक पर्याय हैं। यथा- शुंगवृक्ष, क्षीरद्रुम, काण्डफल और कोषफल। पनस वृक्ष का कोषफल पिण्डस्थालक से जुड़ा होता है जो कि फल्गु स्थालक में ही बन्द रहता है। इसमें द्विबीजपत्री बीज होते हैं जो असमान आकार वाले होते हैं।

एवंविधं फलञ्चैव मिश्रफल्गुगणः स्मृतः।
इति प्रोक्तो वनस्पतिर्नामतश्च स्वरूपतः ॥25॥

इस प्रकार पनस को मिश्र फल्गुद्रुम का प्रतिनिधि पादप मानना चाहिए। यहाँ वनस्पति के नाम और स्वरूप का वर्णन पूरा हुआ।

इति (पराशरकृते) वृक्षायुर्वेदे (द्वितीयभागे) वनस्पतिकाण्डे
वनस्पतिनिर्वर्णाध्यायः ॥1॥

इस प्रकार मुनि पराशर रचित वृक्षायुर्वेद के वनस्पति काण्ड में वनस्पति निर्वर्णाध्याय समाप्त हुआ।

अथ द्वितीयभागः वनस्पतिकाण्डः
वृक्षगणसङ्ग्रहाऽध्यायः ॥2॥

अथ पराशरोवाच –

अथातो वृक्षगणसङ्ग्रहाध्यायं
व्याख्यास्याम इत्याह पराशरः ॥1॥

महर्षि पराशर बोले – अब (वृक्षायुर्वेद के द्वितीय भाग में) वनस्पति काण्ड में वृक्षों के वर्ग-संग्रह नामक अध्याय की व्याख्या करता हूँ।

इह खलु चतुर्वर्णानां वृक्षाणां वनस्पतिमधिकृत्य
सङ्ग्रहेण गणविभाग उपदेक्ष्यते ॥2॥

यहाँ समस्त वृक्षों के चार वर्ग किए जा रहे हैं और उनमें वनस्पति का आधिकारिक रूप से वर्गविभाग कहूँगा।

अथ पर्णभेदानुसारेण द्वौ गणाः –

खलु द्वौ गणौ भवतः पर्णभेदेन
जालिकपर्णगणीयश्च मौञ्जपर्णगणीयश्च ॥3॥

समस्त पादपों के पर्णभेद के अनुसार दो वर्ग होंगे– 1. जालिकपर्ण वर्ग और 2. मौंजपर्ण वर्ग।

तत्र क्षीराधारेण भेदाः –

द्वौ गणौ भवतः क्षीरेण ह्यक्षीरेण ॥4॥

पादपों में अन्य दो वर्ग हो सकते हैं– 1. दूध वाले (क्षीरेण) और 2. दूधरहित (अक्षीरेण)।

पुष्पाधारेण भेदाः –

द्वौ गणौ भवतो व्यक्ताव्यक्तपुष्पाभ्याम् ॥5॥
द्वौ गणौ भवतः समपुष्पविषमपुष्पाभ्याम् ॥6॥

पुष्पों के आधार पर पादपों में 1. व्यक्त और 2. अव्यक्त पुष्प भेद होंगे। इसी प्रकार दो गण सम-विषम होंगे जो क्रमशः 1. समपुष्प और 2. विषमपुष्प।

केशरानुसारेण भेदाः –

द्वौ गणौ भवतो व्यक्ताव्यक्तकेशराभ्याम् ॥7॥

केशरों के आधार पर भी दो वर्ग होंगे- 1. व्यक्तकेशर (वराटक यदि खुले हों) और 2. अव्यक्तकेशर (पुष्प दल में बन्द हों)।

सफलनिष्फलादीनां द्वौ गणाः -

द्वौ गणौ भवतः सफलनिष्फलाभ्याम् ॥8॥

पादपों के अन्य दो गण होंगे- 1. सफल (पुष्प फल वाले) और 2. निष्फल।

फलभेदात् द्वौ गणाः -

द्वौ गणौ भवतः फलभेदेन
कुड्यफलगणीयश्च विदरफलगणीयश्च ॥9॥

फलभेद से पादपों के दो वर्ग होते हैं- 1. कुड्यफल वर्ग (स्फुटक फल वाले) और 2. विदरफल वर्ग (अस्फुटक फल वर्गीय)।

बीजभेदात् द्वौ गणाः -

द्वौ गणौ भवतः [बीजभेदेन]
एकबीजफलदश्च बहुबीजफलदश्च ॥10॥

पादपों के [बीजभेद से] दो वर्ग होंगे- 1. फल एक बीज वाले और 2. बहुबीजी।

वर्तकभेदेन द्वौ गणाः -

द्वौ गणौ भवतो वर्तकभेदेन
एकवर्तकगणीयश्च बहुवर्तकगणीयश्च ॥11॥

वर्तक (प्रकोष्ठ के अनुसार) भेद से पादपों के दो भेद हो सकते हैं- 1. जिनमें बीजाधार एक प्रकोष्ठीय होता है (एकवर्तक वर्ग) और 2. जिनमें बीजाधार बहु प्रकोष्ठीय मिलता हो।

मातृकाभेदेन द्वौ गणाः -

द्वौ गणौ भवतो मातृकाभेदेन
एकमातृकगणीयश्च द्विमातृकगणीयश्च ॥12॥

मातृका भेदानुसार पादपों के दो वर्ग सम्भव होंगे- 1. जिनमें बीज एकपत्री हो (एकमातृक वर्गीय) और 2. जिनमें बीज द्विपत्री हो (बहुमातृक वर्गीय)।

इत्योपरान्ते प्ररोहभेदेन द्वौ गणाः -

द्वौ गणौ भवतः प्ररोहभेदेन
एकपर्णप्ररोहकश्च द्विपर्णप्ररोहकश्चेति
सङ्ग्रहेण गणविभाग उक्तः ॥13॥

इसी प्रकार प्ररोह भेद अर्थात् अंकुरण में 1. जिन पौधों पर एक पत्ती आती हो (एकपर्ण प्ररोहक) और 2. जिन पर दो पत्तियाँ आती हों (द्विपर्ण प्ररोहक)। इस प्रकार वर्ग विभाग संग्रह कहा गया है।

अथ गणान् दृष्टान्तपूर्वकेण लक्षयति –

भूयश्चात्र एतान् गणान् दृष्टान्तेन
यथावदनुव्याख्यास्यामः ॥14॥

अब आगे मैं इस वर्गीकरण को उदाहरणों से स्पष्ट करता हूँ।

वनस्पतयो जालिकपर्णा भवन्ति।
मौञ्जपर्णगणीयास्तु तालनारिकेलखर्जुर-
क्रमुकतृणवल्वजादयश्च ॥15॥

यह ज्ञातव्य है कि बहुधा वनस्पति पादपों में पत्तियाँ जालीय होती हैं, लेकिन इन पादपों, जैसे- ताड़वृक्ष, नारियल, खजूर, सुपाड़ी आदि और घास परिवार के पौधों में समानान्तर शिरा विन्यास पाया जाता है। ये सब मौंजपर्ण वर्ग के हैं।

अथ क्षीरगणाः –

वनस्पतयः क्षीरगणीयाश्च
अक्षीरगणीयास्तु अक्षपुष्पादयश्च ॥16॥

वनस्पति पादपों में क्षीर (दूध) होता है और अक्षपुष्पगण में क्षीर नहीं होता है।

अथाव्यक्तश्च व्यक्तपुष्पाणि –

वनस्पतिनामव्यक्त पुष्पाणि भवन्ति।
तेषां पुष्पं फल्गुस्थालकेन संवृतं भवति।
वानस्पत्यानान्तु व्यक्तपुष्पाणी स्युः ॥17॥

कुछ वनस्पति पादपों में पुष्प सूर्य या चन्द्रमा के प्रकाश को ग्रहण नहीं करते हैं। ऐसे वर्ग के पुष्प फल्गु स्थालक में छुपे हुए होते हैं जबकि वानस्पत्य वर्ग के पुष्प बिना ढँके हुए होते हैं।

समविषमपुष्पमाह –

चूतपुष्पगणीयश्च समपुष्पं भवति।
वनस्पतिनान्तु विषमपुष्पञ्च ॥18॥

आम्रपुष्प वर्ग में फूल समावयवी होते हैं जबकि वानस्पत्य वर्ग के असमावयवी पुष्पी होते हैं।

तत्र समिपुष्पाणामाह –

समिपुष्पाणां व्यक्तकेशरश्च।

मल्लिकापुष्पाणामव्यक्तकेशरं भवति ॥19॥

समी गण–वर्ग के पुष्प के केशर खुले या बाहर निकले हुए (व्यक्त केशर) होते हैं जबकि मल्लिका पुष्प वर्ग में पुष्प दल में छिपे हुए (अव्यक्त केशर) होते हैं।

अथ सफलनिष्फलञ्चाह –

वनस्पतयः सफलगणीयाश्च।

मञ्जुपुष्पिणश्च निष्फला भवन्ति ॥20॥

कुछ वनस्पति वर्ग में पुष्प सफल होते हैं जबकि मंजुपुष्प में निष्फल होते हैं।

कुड्यफलं विदरफलञ्चाह –

वनस्पतिनां कुड्यफलं भवति।

आस्फोटानां विदरफलञ्च ॥21॥

कुछ वनस्पति वर्ग में कुड्यफल (अस्फुटक) होते हैं और आस्फोट वर्ग में विदरफल होते हैं।

अथैकबीजबहुबीजफलञ्चाह –

चूतपुष्पवृक्षाणामेकबीजफलं भवति।

वनस्पतयो बहुबीजफला भवन्ति ॥22॥

आम्र पुष्प वर्ग के वृक्षों के फल में एक बीज होता है जबकि वनस्पति वर्ग पादप में बहुबीजीय फल होते हैं।

अथैकवर्तकबहुवर्तकफलञ्चाह –

वनस्पतय एकवर्तकफला भवन्ति।

ओड्रपुष्पगणीयानां विदरफलञ्चैव बहुवर्तकफलञ्च ॥23॥

कुछ वनस्पति वर्ग के फल एक प्रकोष्ठीय होते हैं और ओड्र पुष्प वर्ग का बीजाधार बहुप्रकोष्ठीय होता है।

अथैकमातृकद्विमातृकगणीयास्तुमाह –

एकमातृकगणीयश्च तृणवल्वजादयश्चा

द्विमातृकगणीयास्तु वनस्पतयः ॥24॥

घास पादपों और ताड़ परिवार में बीज एकपत्रीय होते हैं जबकि वनस्पति पादपों में बीज द्विपत्रीय होते हैं।

तत्र प्ररोहानुसारेणैकपत्रद्विपञ्चाह –

तृणवल्वजकण्डुलानां प्ररोहे ह्येकपत्रं भवति।
वनस्पतिनां द्विपत्रञ्च ॥25॥

प्ररोह अर्थात् अंकुरण पर तृण-वल्वज में एक पत्ती दिखाई देती हैं जबकि वनस्पति वर्ग में दो पत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं।

इति पराशरकृते वृक्षायुर्वेदे (द्वितीयभागे) वनस्पतिकाण्डे
वृक्षगणसङ्ग्रहाध्यायोनामः द्वितीयोऽध्यायः ॥2॥

इस प्रकार पराशरकृत वृक्षायुर्वेद के (द्वितीय भाग में) वनस्पति काण्ड के अन्तर्गत वृक्ष वर्ग संग्रह नामक द्वितीय अध्याय पूरा हुआ।

अथ द्वितीयभागः वनस्पतिकाण्डः
तृणवर्गाऽध्यायः ।।3 ।।

अथ पराशरोवाच –

अथातस्तृणराजवर्गाध्यायं
व्याख्यास्याम इत्याह पराशरः ।।1 ।।

महर्षि पराशर बोले- अब मैं (वृक्षायुर्वेद के द्वितीय भाग के वनस्पति काण्ड में) तृण वर्गीय पादपों के विषय में कहता हूँ।

खलु तृणवृक्षास्तु मौञ्जपर्णमेकमातृकमंशुकं
फलवल्कलञ्च भवन्ति।
ते एव त्वक्सारश्च।

इस वर्ग के समस्त तृण-वृक्षों में शिराओं का विन्यास समानान्तर (मौंजपर्ण एकमातृक) होता हैं। बीज एकपत्री होते हैं। इनकी फल भित्तियाँ अंशुक वल्कल जैसी होती हैं। इनमें से कुछ पादपों की छाल पर्याप्त मोटी होती हैं।

तत्र त्रिविधभेदाह –

तृणवृक्षास्तु त्रिविधा भवन्ति।
यथा- कुक्षिमञ्जरिकश्च शीर्षमञ्जरिकश्च कन्दवल्वजाश्चेति।

तृणवर्गीय पादपों में तीन प्रकार से मंजरियाँ आती हैं। यथा- 1. कुक्षिमंजरी, 2. शीर्षमंजरी और 3. प्रकन्द पर आने वाली मंजरी।

तत्र तृणराजानस्तालनारिकेलखर्जुरक्रमुकवेत्र
प्रभृतयो बहुवर्षजीविनश्च।

इनमें से तृण वर्गीय पादपों में ताड़, नारियल, खजूर, सुपाड़ी, वेत्र इत्यादि बहुत काल तक विद्यमान रहते हैं।

एतेषां पुष्पमञ्जरिः पत्रपट्टिककुक्षौ काण्डगात्रे सञ्जायते।
एव बीजमातृकाया आवरणं कठोरं कर्परं भवति।

इनमें जो पुष्पमंजरी वाले होते हैं, उनमें पत्ते पट्टिक की कोख और तने की काया से उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार बीज की मातृका का आवरण कठोर खोपरे वाली रचना लिए होता है।

कुक्षिमंजरिकश्च भेदाः –

कुक्षिमञ्जरिकश्च पुनर्द्विविधो भवति।

यथैकबीजफलदो बहुबीजफलदश्चेति।
तत्र नारिकेलखर्जुरक्रमुकादयश्चैकबीजबीजफलदा भवन्ति।
तालस्तु बहुबीजफलदश्च।

कुक्षी मंजरी को पुनः दो प्रकार की होती है। यथा- एक बीजीय फल वाली और बहुबीजीय फल वाली। इनमें से नारियल, खजूर, सुपाड़ी- ये एकबीज फल होते हैं। ताल जैसा पादप बहुबीज फल वाला होता है।

एव सफलं निष्फलञ्च।
निष्फले मार्जारपुच्छिकं मञ्जरिर्भवति।
शीर्षमञ्जरिकतृणानान्तु काण्डो बहुसन्धितो भवति।
तस्मात् पर्विकं भवत्येव निःसारञ्च।
एतेषां काण्डः पत्रपट्टिकेन संवीतो भवति।

उक्त पादप दोनों प्रकार के पुष्प- सफल औ: निष्फल धारण करता है। निष्फल वर्ग में बिल्ली की पूँछ जैसी मंजरी उत्पन्न होती है। शीर्षमंजरी के वर्ग के अन्तर्गत वे घास पादप होते हैं जिनमें तने पर बहुत सी सन्धियाँ होती हैं। इसी कारण इनके पर्व (पौर) खोखले होते हैं (जैसे बाँस), निस्सार की तरह। इनमें काण्ड पत्तियों की पट्टिकाओं से ढँके होते हैं।

अथ शीर्षग्रन्थौ -

एवञ्च शीर्षग्रन्थौ पुष्पमञ्जरिः सञ्जायते।
तस्मात् शीर्षमञ्जरिक आचक्षते,
एवोषधिर्विज्ञायते फलपाकान्ताच्च।

इसी प्रकार शीर्ष पर गाँठ रूप में जहाँ पुष्प मंजरी उत्पन्न होती है, उनको शीर्ष मंजरी कहा जाता है। इनमें औषधि-फल के पकने पर पौधे मर जाते हैं।

तत्र बीजरुहाः मूलपर्वरुहाः काण्डरुहाश्च -

एतेषां केचिद् बीजरुहाः केचित् मूलपर्वरुहाः
केचित् काण्डरुहाश्च।
तत्र धान्य-यव-गोधूम-श्यामाक-कोद्रव-
वज्जिरादयश्च बीजरुहा भवन्ति।

ऐसे ही घास परिवार के पादपों में कुछ का संचरण बीजों से होता है, कुछ का मूलों के पर्व से तो कुछ का तने के खण्डों से होता है। जिनका बीजों से वृद्धीकरण होता है, वे धान्य कहे जाते हैं। यथा- यव (जौ), गोधूम (गेहूँ), श्यामाक (साँवा), कोद्रव (कोदो), वज्जिरा इत्यादि बीजरुहा होते हैं।

वंशनलमहानलपोटगलादयश्च मूलपर्वरुहाश्च भवन्ति।
एवंविधा ये तृणास्तेऽपि।

इसी प्रकार बाँस, नलक (अरण्य नलक, नरकट), महानलक (बड़ा धमन), पोटगला (पोटगल विभीषण रन्ध्रिन शर) इत्यादि पादप उनके मूल अथवा उनके खण्डों के बोने से फैलते हैं। ऐसे ही अन्य तृणादि भी होते हैं।

इक्षुकाण्डिरिक्षुवाटिकाकाशादयश्च
काण्डरुहा भवन्ति च्छिन्नरुहा एव विज्ञायते।

काण्ड अथवा तने के बोने से उत्पन्न होने वालों में इक्षु (ईख) है। इक्षुवाटिका में ही काश इत्यादि भी हैं जो काण्डरुहा कहे जाते हैं। इनको छिन्नरुहा के नाम से भी जाना जाता है।

अथ कन्दवल्वजाः –

कन्दवल्वजस्तु तृणलक्षणेन कान्दिकमूलं भवति।
एतेषां पुष्पप्रभवं काण्डञ्च भवति यच्चाक्षमञ्जरिको विज्ञायते।

घास परिवार के लक्षणों की तरह ही कन्दवल्वज होते हैं जो प्रकन्द के मूल से संचारित होते हैं। इनमें पुष्प से होने वाले काण्ड होते हैं और इनको अक्षमंजरी से जाना जाता है।

कन्दवल्वजस्तु द्विविधो भवति।
यथा कन्दप्ररोहिकश्च कुक्ष्याङ्कुरिकश्चेति।

प्रकन्द से होने वाले पादप दो प्रकार के होते हैं। यथा– 1. कन्द प्ररोहिक और 2. कुक्ष्यांकुरिक।

कन्दप्ररोहिकमाह –

तत्र कन्दप्ररोहिकास्तु कन्दगात्रात् समुद्भवन्ति।
यथा– कदलीशृङ्गबेरशठिहरिद्राकर्चूरवचादयश्च।
एष गणो मोचिकपुष्पमाचक्षते।
एतेषां मोचिकेन पुष्पं दृश्यते।

इनमें कन्दप्ररोहिक वे पादप होते हैं जो किसी भी कन्द की काया से उत्पन्न होते हैं। जैसे केला, शृंगबेर (अदरक), शठि (गन्धपलाशी), हल्दी, कर्चूर (कचूरा), वचा (वच, घोडावज) आदि। ये मोचिकपुष्प वर्ग के होते हैं। इन पादपों के वर्ग की मंजरी में मोचिक पुष्प होता है।

कुक्ष्याङ्कुरिकमाह –

कुक्ष्याङ्कुरिकस्तु पट्टिककन्दकुक्षौ प्ररोहः सञ्जायते।
यथा रसोनपलाण्डु नक्तगन्धादयश्च।
एवंविधाश्च ये कन्दास्तेऽपि कुक्ष्याङ्कुरिककन्दवल्वजाश्च।
एष गणाः पीवरपुष्पमाचक्षते।
अनेन विधिनातृणवर्गो व्यावस्येत्।

दूसरे, कुक्ष्यांकुरिक वर्ग में प्रकन्द पट्टिका के कोख से प्ररोह होता है। जैसा कि रसोन (लशुन), पलाण्डु (प्याज), नक्तगन्धा आदि में होता है। इस प्रकार कन्दों के कुक्ष्यांकुरिक और कन्दवल्वज है– ये वर्ग पीवरपुष्प कहे जाते हैं। उक्त लक्षणों से घास परिवार के पादप पहचाने जाते हैं।

इति पराशरकृते वृक्षायुर्वेदे (द्वितीयभागे) वनस्पतिकाण्डे
तृणराजवर्गाध्यायो नाम तृतीयोऽध्यायः ।।3 ।।

इस प्रकार पराशर कृत वृक्षायुर्वेद के द्वितीय भाग के वनस्पति काण्ड में तृणराज वर्ग नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ।

❖❖❖

अथ वानस्पत्यकाण्डः

वानस्पत्यविचरणाऽध्यायः ॥1॥

अथ पराशरोवाच –

अथातो वानस्पत्यविचरणाध्यायं
व्याख्यास्याम इत्याह पराशरः ॥1॥

महर्षि पराशर बोले– अब मैं उन पादपों का वर्णन करूँगा जो वानस्पत्य वर्ग-समूह के अन्तर्गत आते हैं।

व्यक्तपुष्पैः फलैर्येऽपि दृश्यन्ते वनपादपाः।
संज्ञितास्ते वानस्पत्यास्तेषां वर्गो विवक्ष्यते ॥2॥

वे वनपादप--पौधे जिनमें पुष्प दिखाई देते हों, उनकी संज्ञा वानस्पत्य है। आगे इस वर्ग का वर्णन किया जाता है।

अथाम्रादिवर्गमाह –

आम्राम्रातकजिङ्गनभल्लातकश्च पादपाः।
एष गणश्चूतपुष्पं भवति तुन्दमण्डले ॥3॥

पादपों में आम, आम्रातक (अम्बाड़ा, अभ्रपाटक), जिंगन (मजीठा, मंजिष्ठा) और भल्लातक (भिलोमा)– ये वर्ग आमपुष्प के होते हैं। इस परिवार के पुष्प तुन्दमण्डल के होते हैं।

यस्य पञ्चदलं पुष्पं पञ्चैव केशरान्वितम्।
क्षुल्लकं पुष्पमण्डलं वर्तकमेकबीजकम्।
कुड्यफलं भवेत्तत्र बीजं वृन्तान्तिकं तथा ॥4॥

इस वर्ग में पाँच पंखुड़ियों वाले पुष्प होते हैं और वे पाँच केशर समेत होते हैं। वे क्षुल्लक (छोटे) पुष्पमण्डल वाले होते हैं। बीजाधार एक बीजीय और एक कोषीय होता है। फल अस्फुटक होता है। बीज उनमें वृन्त की ओर अभिमुख होता है।

आम्रश्चूतो रसालश्च पिकप्रियो मधुद्रुमः।
जतुद्रुः सहकारश्च सौरभो भृङ्गवल्लभः ॥5॥

आम वृक्ष के पर्याय उसके गुणों के अनुसार हैं। वह चित्त को भाने वाला (चूत), रसीले फल वाला (रसाल), कोयल को प्रिय (पिकप्रिय), मधुमास में फलने वाला (मधुद्रुम), रस उत्पादित करने वाला (जतुद्रु), सबका प्रिय (सहकार), सुगन्ध वाला (सौरभ) और भौरों के प्रियपुष्प मंजरी वाला (भृंगवल्लभ) होता है।

आम्रातको भृङ्गीवृक्षः कपिचूतः पीतनकः।
छिन्नरुहो भवेद् वृक्षश्चाम्लवटो मधुच्छदः ॥6॥

आम्रातक (आम्बड़ा) पेड़ के पर्याय हैं- भृंगीवृक्ष, कपिचूत और पीतनक। इसको कलम लगाने की विधि से उगाया जा सकता है। इसका फल खट्टा होता है और इसकी पत्तियाँ मधुमास (चैत्र, वसन्त ऋतु) में आती हैं।

जिङ्गनश्छिन्नरुहश्च साटकश्च सुनिर्यासः ॥7॥

जिंगन (मजीठा) वृक्ष से गन्धयुक्त रस निकलता है जिसमें गोंद के गुण होते हैं। यह छिन्नरुह (कलम से उगाया जाने वाला) है।

भल्लातको जतुवृक्षो वह्निमुखश्चारुष्करः।
एतैश्च नामलिङ्गैश्च कीर्तिताश्चूतवर्गीयाः ॥8॥
इत्याम्रादिवर्गः।

भल्लातक (भिलावाँ) पेड़ के जतुवृक्ष (लाख वाला), अग्निमुख (शीघ्र जलने वाला) और आरुष्कर पर्याय हैं। उक्त सभी चूतपुष्प वर्गीय वृक्षों को नाम और लिंग के अनुसार कहा गया है। इस प्रकार आम्रादि वर्ग पूरा हुआ।

अथ मातुलुङ्गादिवर्गमाह -

कीलकगन्धपर्णानां वृक्षाणामुपपक्षाणाम्।
दृश्यते पुप्लिकपुष्पं तेषां नाम विवक्षते ॥9॥

मातुलुंगादि वर्ग के अन्तर्गत परिगणित पादप में कीलक होते हैं। पत्तियाँ गन्धयुक्त होती हैं। इस वर्ग के वृक्षों के उपपक्ष कहे गए हैं। इसके पुप्लिक पुष्प होते हैं जिनके नामादि को कहता हूँ।

द्विविधो भवति भेदः फलभेदेन पुप्लिकम्।
कस्यचित् फलशस्यन्तु दृश्यते केशरनिभम्।
कस्यचित् फलशस्यञ्च संहतञ्च घनं भवेत् ॥10॥

इस पुप्लिक के फलभेद से दो प्रकार होते हैं। पहले फल का खाने योग्य अंश केशर के समान दिखाई देता है। दूसरे प्रकार का फल सघन गुदा वाला होता है।

आद्यं केशरकं ज्ञेयं द्वितीयं मालुरफलम् ॥11॥

इनमें से पहले वर्ग के फल को केशरक और द्वितीय को मालुर फल कहते हैं।

मातुलुङ्ग-नागरङ्ग-जम्बीर-निम्बुकादयः।
भवन्ति पुप्लिकपुष्पं केशरकं फलञ्च तत् ॥12॥

विभिन्न नीम्बूवर्गीय खट्टेफल यथा- मातुलुंग (बीजोरा, बीजपूरक), नागरंग

(नारंगी), जम्बीर (जमेरी), नीम्बू आदि पुप्लिकपुष्प वर्ग में आते हैं और वे केशरक फल समूह के होते हैं।

मालुरं भवति बिल्वः कपित्थश्च तथैव च ॥13॥

दूसरे मालुर फल वर्ग में होंगे- बिल्व (बेल, बीलां) और वैसे ही कपित्थ (कैथ, कबिती)।

मातुलुङ्गं बीजपूरं पृथुकश्चास्य बीजकम् ॥14॥

इनमें मातुलुंग का समानार्थक बीजपूर हैं जिसके बीज बनावट में कुछ चपटे होते हैं।

नागरङ्गं मधुरञ्च सुरङ्गं स्वर्णवल्कलम् ॥15॥

नागरंग (नारंगी) के फल स्वाद में मीठे होते हैं। ये फल अच्छे रंग वाले और सुनहरे छिलके वाले होते हैं।

जम्बीरं दन्तहर्षकञ्चात्यम्लं मुखशोधकम् ॥16॥

जम्बीर (जमेरी) बहुत खट्टा होता है और दांतों में सिहरन कर देता है। यह फल मुख का शोधन करता है।

निम्बुकं क्षुद्रजम्बीरं सुगन्धं मुखरोचकम् ॥17॥

नीम्बू छोटे जम्बीर जैसा होता है। यह सुगन्ध वाला होता है और मुख की रुचि बढ़ाता है।

बिल्वञ्च श्रीफलं प्रोक्तं मालुरञ्च महाफलम्।
त्रिपर्ण गन्धपर्णञ्च गन्धफलञ्च शल्यकम् ॥18॥

बिल्व को श्रीफल भी कहा जाता है। वह मालुर और महाफल जैसे नाम वाला भी होता है। उसके पेड़ पर तीन-तीन पत्तियाँ आती हैं। इनके पत्तियों व फल में गन्ध होती हैं। इस वृक्ष पर कँटे पाए जाते हैं।

कपित्थं दधिफलञ्च मालुरं सुरभिच्छदः।
समाहृतं इति प्रोक्तो मातुलुङ्गादिवर्गो वै ॥19॥
इति मातुलुङ्गादिवर्गः।

कपित्थ को दधिफल भी कहते हैं। यह मालुर और सुरभिच्छद (सुगन्ध प्रसारक) होता है। इस प्रकार यहाँ पर मातुलुंगादि वर्ग के विषय में कहा गया। यह मातुलुंगादि वर्ग पूरा हुआ।

अथ जम्बूकादिवर्गाः -

जम्बुकादीनि फलानि पारेवतफलञ्च यत्।
दृश्यते देवपुष्पेण यच्चैव कुम्भमण्डलम् ॥20॥

जामुन आदि फल और पारेवत फल (एक स्वादिष्ट फल, मंगुस्तान)- ये देवपुष्प वर्ग समूह में आते हैं और ये कलशमण्डलीय होते हैं।

देवपुष्पं भवेत्तत्र मुक्तञ्च कुम्भमण्डलम्।
अशाखमञ्जरिः काचित् काचिच्छाखासमन्विता॥
जालकं युक्तकर्णं वा यच्चतुष्कमथापि वा।
दलञ्चैव भवेद्युक्तं तत्रैव बहुकेशराः॥

जैसा कि कहा गया है कि ये देवपुष्प गण में हैं। इस समूह के पुष्प बहुपंखुड़ी वाले और कुम्भमण्डलीय होते हैं। इस वर्ग के कुछ पादपों में मंजरी अशाखित होती है। कुछ पादपों में शाखा सहित मंजरी होती है। जालक कोने सहित होते हैं या चौकोर हो सकते हैं। पुष्पदल स्वतन्त्र होता है और उसमें अनेक केशर पाए जाते हैं।

कुड्याख्यञ्चैव फलञ्च वर्तकमेकमेव वा।
क्वचिद् वृन्तातिकं बीजं क्वचिदक्षान्तिकं भवेत्॥
एकञ्च कस्यचिद् बीजं बहुबीजानि कस्यचित्॥21॥

देवपुष्प वर्ग में फल कुड्य नामक होते हैं और बीजाधार एक कोष्ठकीय होता है। इनमें से कुछ में फल में बीज वृन्त से जुड़े होते हैं और कुछ में अक्षान्तिक होते हैं। इनमें से कुछ एकबीजीय और कुछ बहुबीज होते हैं।

जम्बुस्तु बहुधा ज्ञेयास्तेषां भेदमपि ब्रुवे।
राजजम्बुः सुवर्णाभा फलेन्द्रा सुरभिफला॥
वीरपत्रा बृहत्फला महाजम्बुः प्रकीर्तिता॥22॥

जामुन में अनेक प्रकार होते हैं। इनमें कुछ भेदों को कहता हूँ। इनमें राजजामुन के फल स्वर्णिम आभा वाले होते हैं जिनमें सुगन्ध होती है। ये बड़े जामुन (महाजम्बू) भी कहे जाते हैं क्योंकि फल बड़े आकार वाले होते हैं। इनकी पत्तियाँ भी आकार-प्रकार में लम्बी होती हैं।

मेघाभा कृष्णजम्बुस्तु शुक्तिपर्णा तु मध्यमा।
नादेयी वेतसपर्णा वनजात्यम्लजम्बुका॥23॥

मेघ के समान आभा वाले काले जामुन प्रायः सीप जैसी पत्तियों वाले और मध्यम आकार के होते हैं। नादेयी (नदी वाले) जामुन वेतस पर्ण वाले, वन में उत्पादित होने वाले और स्वाद में खट्टे होते हैं।

मधुरा क्षुद्रजम्बुस्तु काकजम्बुः प्रकीर्तिता॥24॥

इसी प्रकार छोटे आकार वाले जामुन मधुर होते हैं और काकजामुन के नाम से भी कहे जाते हैं।

पारेवतं रैवतकं मधुराम्लफलञ्च तत्।
सितारुणशलाटुभ्यां द्विविधं भिद्यते फलम्॥
समाहृत इति वर्गो जम्बुकादि विनिश्चयः॥25॥
इति जम्बुकादि वर्गः।

पारेवत नामक फल रैवतक (गुजरात में जूनागढ़ क्षेत्रस्थ) भी कहलाते हैं और खट्टे-मीठे स्वाद वाले होते हैं। इनका कच्चा फल सफेद और रक्तिम हो सकता है। इस प्रकार इसके फल दो प्रकार के हो सकते हैं। यहाँ संक्षेप में जम्बुकादि वर्ग को कहा गया। इस तरह जम्बुकादि वर्ग का वर्णन पूरा हुआ।

अथ हरितक्यादि वर्गः -

हरितकी-विभीतकी-वातामार्जुनपादपाः।
विज्ञेया अक्षपुष्पेण ये चान्यतुल्यलक्षणाः॥26॥

हरितकी (हरड़), विभीतकी (बहेड़ा), वाताम (बादाम, नेत्रोपम फल) और अर्जुन जैसे पादपों को अक्षपुष्प वर्ग में जानना चाहिए। ऐसे ही अन्य पादप भी होते हैं।

हरितक्याभया प्रोक्ता कषाया हैमवत्यपि।
अम्रकफलबीजञ्च दीर्घपर्णं मधुद्रुमः॥27॥

हरितकी (हरड़) को अभया भी कहा जाता है। इसी प्रकार कषाय (कसैले स्वाद के कारण) और हेमवती (शीतलता से) भी नाम हैं। इसके फल और बीज दोनों पर धारियाँ पाई जाती हैं। पत्तियाँ लम्बी होती हैं। इसका पेड़ वसन्त में फलने वाला है।

विभीतकः कर्षफलः कषायः कर्परबीजम्।
वासन्तो मधुपर्णश्च स्निग्धमज्जा च तैलदः॥28॥

विभीतक (बहेड़ा) के फल का भार एक कर्ष (पुरानी तौल इकाई) होता है। इसका स्वाद कसैला होता है और बीज खोपड़े वाले होते हैं। वसन्त ऋतु में फलने वाला यह पेड़ मधुपर्ण होता है। इसकी मज्जा स्निग्ध होती है और यह तेल प्रदायक गुण वाला होता है।

वातामं मधुपर्णञ्च नेत्रोपमफलञ्च वै।
कर्परञ्च भवेद्बीजं स्निग्धमज्जा हि तैलदम्॥29॥

वाताम (बादाम या बदाम) में नवीन पत्तियाँ वसन्त वेला में आती हैं। यह नेत्रोपम (आँख के आकार जैसा) फल होता है। इसके बीज खोल में पाए जाते हैं। मज्जा स्निग्ध होती है। यह तेल प्रदायक होता है।

अर्जुनः ककुभः प्रोक्तो वासन्तोऽरुणवल्कलम्।
धवलो धाराफलश्च धूम्रसारश्च बीजकः॥30॥

अर्जुन को ककुभ भी कहा जाता है। इसके पादप में नवीन पत्तियाँ बसन्त ऋतु में आती हैं। इसकी छाल रक्तिम वर्ण की होती है। इसको धवल भी कहा जाता है। इसके बीजों में कोणीय धारियाँ होती हैं। काष्ठ रंग में भूरा होता है। इसका फल इस तरह का होता है कि गुदा और बीज को अलग नहीं किया जा सकता है।

कदाचिदक्षपुष्पञ्च वल्ल्यां निष्फलं भवेत्।
सफलञ्च यदा पुष्पं तदेव कुम्भमण्डलम्॥31॥
इति हरितक्यादि वर्गः।

ऐसा कम ही होता है कि अक्षपुष्प की मंजरी में निष्फल पुष्प आते हों। जब पुष्प सफल होते हैं तो बीजाधार कुम्भमण्डलीय होता है।

अथ कोलादिवर्गाः –

कोलश्च बदरश्चैव भवतः कण्टकद्रुमौ।
एष वर्गः कुहपुष्पं भवति तुङ्गमण्डलम्॥32॥

कोल (कोली, बदरी) और बदर (बेर) काँटेदार पेड़ पर फलित होते हैं। इनका वर्ग कुहपुष्प का होता है और पुष्प तुंग मण्डल प्रकृति के होते हैं।

कोलं सौवीरकं प्रोक्तं मधुरं जाङ्गलोद्भवम्।
बदरमम्लमधुरं फलञ्च पिच्छिलं भवेत्॥33॥
इति कोलादि वर्गः।

कोल और बदर परिवार सौवीरक भी कहा जाता है। वह फल मीठा होता है जो जांगल (रेगिस्तान) में उगता है। बेर के फल खट्टे-मीठे होते हैं और लसलसे होते हैं। यहाँ कोलादि वर्ग पूरा हुआ।

इति [पराशरकृते] वृक्षायुर्वेदे वानस्पत्यकाण्डे वानस्पत्य-
विचरणाध्यायो नाम प्रथमोऽध्यायः॥1॥

इस प्रकार मुनि पराशर कृत वृक्षायुर्वेद के वानस्पत्य काण्ड में वानस्पत्य विचरणाध्याय नामक पहला अध्याय पूरा हुआ।

❖❖❖

अथ वानस्पत्यकाण्डः
सप्तपर्णादिवर्गाऽध्यायः ॥2॥

अथ पराशरोवाच –

[अथातो सप्तपर्णादिवर्गाध्यायं
व्याख्यास्याम इत्याह पराशरः ॥1॥

अयुक्छद गजद्विष् गन्धपुष्प, गुच्छपुष्प गेहविटप ग्रहनाशन दीपवृक्ष दीर्घवृक्ष देवविटपिन् नित्यभद्रा मदगन्धि विशालत्वच् विषमच्छद शारदी शाल्मली दल शिरोरु, शुक्तिपर्ण सप्तच्छद सप्ताह्वा सवर्णक सुपर्णक सुमन सुवर्णक स्थूलपर्ण।[1]]

महर्षि पराशर बोले- अब मैं उन पादपों का वर्णन करूँगा जो वानस्पत्य वर्ग-समूह के अन्तर्गत सप्तपर्णादि कोटि में हैं।

तत्र कुटजः लक्षयति –

सप्तपर्णः कुटजश्च पुष्पेण मल्लिका स्मृता।
तत्राराबन्धनं विद्यात् सप्तपर्णे महाद्रुमे ॥2॥

[उडुमल्लिका इन्द्रबीज इन्द्रयवाह्वय इन्द्रवृक्ष इन्द्रसाह्व इन्द्राह्व कलिङ्ग कालिङ्ग कूटज कुलिङ्ग कोटज कोहिन् गिरिमल्लिका दीप्तभद्रा पाण्डुरद्रुम भद्रयव मल्लिकापुष्प यवफल वत्सक वत्साह्वय वनतिक्त वृक्ष।]

सप्तपर्ण (सतौना, छतिवन) में कुटज (पाँढरा, कुडा) को मल्लिकापुष्प के रूप में जानना चाहिए। उसमें पत्रवृन्त अराबन्धन (पहिये के आरे जैसा) दिखाई देता है, यह सप्तपर्ण में महावृक्ष होता है।

कुटजे पक्षपङ्क्तिकं पत्रवृन्तेन विज्ञेयम्।
शरदि सप्तपर्णश्च कुटजः प्रावृषायणे॥
पुष्पितो भवति वृक्षो वानस्पत्येन संज्ञितः ॥3॥

कुटज पादप में पक्षपंक्तिगत पत्र वृन्त जानना चाहिए अर्थात् पत्रवृन्त एक के बाद एक युग्मों में होते हैं। सप्तवर्ण और कुटज क्रमशः पतझड़ और वर्षाकाल में पल्लवित होते हैं क्योंकि इनमें दृश्यमान पुष्प होते हैं, अतः इनको वानस्पत्य नाम से कहा गया है।

तत् पुष्पलक्षणमाह –

अत ऊर्ध्वं संक्षेपेण शृणु तत् पुष्पलक्षणम्।
पुष्पाङ्गसूत्रीये यच्च विस्तारेण विवक्ष्यते ॥4॥

---

1. वनौषधिकोश (बड़ौदा, 1982 ई.) पृष्ठ 141

अब आगे इनके पुष्पों के लक्षणों को संक्षेप में बताऊँगा, सुनिए। हालांकि पूर्व में पुष्पांग सूत्र के अन्तर्गत इनके बारे में विस्तार से कहा जा चुका है।

मल्लिका कुण्डमण्डला सङ्कुला पत्रवल्लरिः।
अरापक्षपङ्क्तिका वा समाङ्गा पुष्पगणीया ॥5॥

मल्लिका पुष्पगण में पुष्प कुण्डमण्डल प्रकार के होते हैं। पत्र वल्लरी संकुल और आरियों की पक्ष पंक्तियाँ होती है अथवा समान अंग से पुष्प होते हैं।

जालकं युक्तं कर्णञ्च पञ्च भवति तत्र वै।
पञ्चयुक्तं दलञ्चैव केशरपञ्चभिः सह ॥6॥

मल्लिका पुष्प में जालक युक्तदलीय होता है जिसमें पाँच चीरे पाए जाते हैं। पुष्पदल युक्तदलीय और केशर पाँच-पाँच की संख्या में साथ-साथ होते हैं।

वराटद्वययुक्ता च युग्मफला भवेच्च सा।
सक्षीरा बहुबीजा च तुलपुच्छसमन्विता ॥7॥

उसमें दो वराटक संयुक्त होकर युग्मफल बनाते हैं। मल्लिकापुष्प गण के पादप दूध उत्पादित करते हैं। फल बहुबीजीय होते हैं और बीजों पर सूत की तरह रेशे लगे होते हैं।

अथ सप्तपर्णस्य पर्यायादीनां –

सप्तपर्णो बृहद्द्रुमस्तिक्तदुग्धः सुदर्शनः।
उद्यानभूषणश्चैव शारदो मदगन्धकः ॥8॥

सप्तपर्ण (छतवन का पेड़) बड़े आकार वाला होता है, उसका दुग्ध तिक्त स्वाद का होता है। पादप सुन्दर दिखाई देता है। यह उद्यानों में सुन्दरता के लिए लगाया जा सकता हे। यह शरदकाल में पल्लवित होता है और इसके पुष्पों में मद जैसी गन्ध पाई जाती है।

अथ कुटजस्य समानार्थकमाह –

कुटजो वत्सकः शक्रः कालिङ्गो गिरिमल्लिका।
प्रावृष्यो यवबीजश्च तिक्तद्रुः क्षीरपादपः।
एतैश्च नामलिङ्गैश्च विज्ञेयो मुनिसत्तम ॥9॥

कुटज के वृक्ष को वत्सक (बाछक), शक्र (इन्द्र), कालिंग और गिरिमल्लिका के नाम से भी जाना जाता है। इसी प्रकार यह प्रावृष्य, यवबीज, तिक्तद्रुम और क्षीरपादप भी कहा जाता है। हे मुनियो! उक्त नाम और लक्षणों के आधार पर इस वर्ग को जान लेना चाहिए।

[इति पराशरकृते वृक्षायुर्वेदे वानस्पत्यकाण्डे सप्तपर्णादिवर्गाध्यायो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥2॥

इस प्रकार मुनि पराशर कृत वृक्षायुर्वेद के वानस्पत्य काण्ड में सप्तपर्णादि वर्ग नामक द्वितीय अध्याय पूरा हुआ।

❖❖❖

अथ वानस्पत्यकाण्डः
समिवर्गाऽध्यायः ॥3 ॥

अथ पराशरोवाच –

अथात समिवर्गाध्यायं

व्याख्यास्याम इत्याह पराशरः ॥1 ॥

[समि वा शम्येति : अग्निगर्भा अग्निपादप अजप्रिया अलोमा आयतफला केशहन्त्री तुङ्गा पामनाशिनी भस्मकाष्ठा मङ्गल्या लक्ष्मी लोमविनाशिनी शङ्कर शङ्कुफला शमीर शिम्बा शिम्या शिवकलिका शिवलोमा शिवा शुचिपत्रा सक्तुफला]

महर्षि पराशर बोले– अब मैं उन पादपों का वर्णन करूँगा जो समिवर्ग में आते हैं।

समिवृक्षः लक्षयति –

समिवृक्षान् प्रवक्ष्यामि येषां सिम्बिफलं भवेत्।

सिम्बिपर्णं क्वचित्तेषां पुङ्खपर्णं तथैव च ॥

माढिपर्ण भवेच्चैव रविक्रान्ता समिः स्मृता।

इमे तु समिवृक्षाश्च प्रायशो जाङ्गलोद्भवाः ॥2 ॥

अब मैं समिवृक्ष (खेजड़ी) के विषय में कहता हूँ। उसके सिम्बिफल (छांगरी) लगते हैं। उसकी पत्तियाँ कदाचित् सिम्बिपर्णा या पुंखपर्णा होती हैं। कुछ अन्य में माढिपर्ण भी होते हैं। सभी वर्ग पादपों में पुष्प रविक्रान्त जानने चाहिए। ये समिवृक्ष प्रायः जांगल (मरुभूमि, मरुस्थल) में उत्पन्न होते हैं।

समीनां त्रिविधो भेदो यदुक्तं पुष्पसूत्रीये।

दृष्टान्तेन समुद्दिष्टमिह यद् तस्य लक्षणम् ॥3 ॥

इन समिवृक्षों के तीन प्रकार के भेदों को पुष्पसूत्रीय अध्याय में पहले कहा जा चुका है। अब आगे उनके लक्षणों को उदाहरण सहित कहा जाता है।

वक्रपुष्पं विकर्णञ्च शूकपुष्पं च यद्भवेत्।

तदेव वर्गभेदेन त्विहानु वक्ष्यते शृणु ॥4 ॥

उनके 1. वक्रपुष्प, 2. विकर्णिक पुष्प और 3. शूकपुष्प होते हैं। अब इन वर्ग भेद के लक्षणों को सुनिए।

तत्र वक्रपुष्पस्य लक्षणमाह –

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वक्रपुष्पस्य लक्षणम्।

वक्रपुष्पं भवेत्तत्र विषमतुन्दमण्डलम् ॥

इसके आगे, पहले मैं वक्रपुष्प के लक्षणों को कहता हूँ। वक्रपुष्प वहाँ पर होते हैं जहाँ पर विषम संख्यक तुन्दमण्डल (विषमांगीय पुष्प) होते हैं।

जालकं युक्तकर्णं पञ्च भवति तत्र वै।
विषमदलसंस्थानं वक्रेण पञ्चकं भवेत्॥

उनमें अंखुडियाँ युक्तदल और पाँच चीरों वाली होती हैं। पंखुड़ियाँ विषम दलीय संस्थान वाली, मुड़ी हुई और संख्या में पाँच-पाँच होती हैं।

दलन्तु भवति मुक्तं केशरैर्दशभिस्तथा।
तेषान्तु नवयुक्तं च भवति पुष्पमण्डले॥
सिम्बिफलं भवेत्तत्र पार्श्वबीजं समन्वितम्॥5॥

यह मुक्त दलीय या स्वतन्त्र होता है और दस-दस की संख्या में केशर संयुक्त होते हैं जिनमें से नौ जुड़वाँ होते हैं- ऐसा पुष्पमण्डल होता है। सिम्बिफल के बीज किनारों पर लगे हुए (पार्श्वबीज) होते हैं।

विकर्णपुष्पस्य लक्षणमाह -

विकर्णपुष्पमण्डलं विषमतुन्दसंज्ञितम्।
जालकं भवति युक्त पञ्चकर्णं समन्वितम्॥

दूसरे, विकर्णिक पुष्प मण्डल में पुष्पपत्र विषम तुन्दमण्डल नाम के होते हैं। अंखुड़ियाँ (जालक) पाँच की संख्या में कोने-चीरों वाली और संयुक्त होती हैं।

दलन्तु भवति मुक्तं विषमकर्णसंस्थानैः।
दशभिः केशरमुक्तैर्भवति पुष्पलक्षणम्॥6॥
पञ्चभिः केशरैः क्वचिद् दृश्यते पुष्पमण्डलम्॥7॥

यह मुक्तदलीय और विषम कर्ण जैसा नियोजन लिए होते हैं। दस की संख्या में केशर मुक्त रूप में होते हैं, ऐसे पुष्प के लक्षण होते हैं। पुष्पमण्डल में कभी-कभी केशरों की संख्या पाँच भी हो सकती हैं।

शूकपुष्पस्य लक्षणमाह -

शूकाकारं भवेत् पुष्पं तस्मात्तु शूकसंज्ञितम्॥8॥

जो पुष्प शूकाकार अर्थात् रोम वाले होते हैं, उनकी संज्ञा शूक होती हैं।

अथोर्ध्वं समिजातयः लक्षयति -

अत ऊर्ध्वं पृथक्त्वेन वक्ष्यन्ते समिजातयः।
लक्षणेन प्राकृतेन नाम्ना हि संस्कृतेन च॥9॥

अब आगे, मैं समि जाति के प्रत्येक उपपरिवार को अलग से कहता हूँ। उनके लक्षण प्राकृत में और नाम संस्कृत में होंगे।

तत्राद्ये पलाशः लक्षयति –

पलाशः सिम्बिपर्णश्च वक्रपुष्पश्च किंशुकः।
क्षारश्रेष्ठो जाङ्गलश्च याज्ञिको ब्रह्मपादपः ॥10॥

[पलाशेति- किंशुक, क्षारश्रेष्ठ क्षीरश्रेष्ठ खरपर्ण त्रिपर्णक त्रिपर्णी त्रिवृन्ताख्य पर्ण बीजस्नेह ब्रह्मपादप ब्रह्मवृक्ष याज्ञिक रक्तपुष्प रंगपुष्प वातपोष समिद्वर समिद्धरेति।]

पलाश वृक्ष के अनेक पर्यायवाची हैं। इसके सिम्बिपर्ण और वक्रपुष्प होते हैं। इसको किंशुक, क्षारश्रेष्ठ, जाँगल, याज्ञिक और ब्रह्मपादप कहा जाता है।

अथागस्त्यद्रुमाह –

अगस्त्यो पुङ्खपर्णश्च वक्रपुष्पं मुनिद्रुमः ॥11॥

[अगस्त्येति- अगस्ति दीर्घफलक बङ्गसेन बहुसेन मुनिद्रुम मुनिपुष्प वक्रपुष्प वंगसेन व्रणारि शुकनाश सुरप्रियेति।]

अगस्त्य का पादप पुँखपर्ण वाला होता है और वक्रपुष्प और मुनिद्रुम जैसे उसके पर्यायवाची हैं।

जयन्त्येत्याह –

जयन्ती पुङ्खपर्णी च नादेयी वक्रपुष्पिका ॥12॥

[जयन्त्येति- जया जयत बृहत् अरणी अग्निमथेति।]

जयन्ती नामक पादप पुँखपर्णी है और नादेयी तथा वक्रपुष्पिका उसके पर्याय हैं।

करञ्जद्रुमाह –

करञ्जो नक्तमालश्च वक्रपुष्पश्च पूतिकः ॥13॥

[करञ्जेति- उत्तुण्डिकी उदकीर्य करज कलिनाशक घृतपूर्णक नक्तमाल नक्ताह्व पूतिक करञ्ज रक्तमाल शितियारक श्रीपदारि सुमनस् अङ्गारवल्ली करञ्जिका घृतमाल प्रकीर्यक प्रकीर्या वारणक शाङ्गस्था षड्ग्रन्थ हस्तिवारण्येति।]

करंज वृक्ष (करंजवा, किरमाल, पापर, दिठोरी) वक्रपुष्पीय है और नक्तमाल, पूतिक जैसे उसके पर्याय हैं।

शिंशिपाः –

शिंशिपा वक्रपुष्पी च कृष्णसारा महाद्रुमा ॥14॥

[शिंशिपाः- पिच्छिला श्यामा कपिला मुनिभिर्भस्मगर्भेति अङ्गारवर्णा अल्पा कृष्णसारा पाण्डुरच्छदा महाश्यामेति]

शिंशिपा (शीसम) पादप वक्रपुष्पी है। कृष्णसार और महाद्रुम जैसे उसके पर्याय-वाची हैं।

पारिभद्राह –

पारिभद्रः सि[नि]म्बतरुः सिम्बिपर्णेन दृश्यते ॥15॥

[पारिभद्रेति- निम्बतरुर्मन्दारः पारिजातकः पारिभद्रोऽनिलश्लेष्म शोथमेदःकृमिप्रणुत् तत्पत्रं पित्तरोगघ्नं कर्णव्याधिविनाशनम्]

पारिभद्र को सिम्बतरु (? निम्बतरु) भी कहा जाता है। उसके सिम्बिपर्ण दृष्टिगोचर होते हैं।

एते वै पादपाः सर्वे वक्रपुष्पेण दृश्यन्ते ॥16॥

उक्त समस्त पादपों में वक्रपुष्प दिखाई देते हैं।

अथ विकर्णिकवर्गाः तत्रारग्वधस्य नामादीनां –

आरग्वधो राजवृक्षः पीतपुष्पविकर्णिकः।
कपिदण्डफलश्चैव स्वर्णाटुश्चतुरङ्गुलः॥
शम्पाकः कृतमालश्च पुङ्खपर्णं भवेद् द्रुमः ॥17॥

[अथारग्वधो राजवृक्षः शम्पाकश्चतुरङ्गुलः आरेवतो व्याधिघातः कृतमालः सुवर्णकः कर्णिकारो दीर्घफलः स्वर्णाङ्गः स्वर्णभूषणः आरग्वधो-गुरुः स्वादुः शीतलः स्रंसनोत्तमेति।]

विकर्णिक पुष्पवर्गीय आरग्वध (अमलतास, गरमाल) राजवृक्ष है और उसमें पीतपुष्प आते हैं। इसमें छड़ीनुमा लम्बे फल आते हैं और कपिदण्ड कहे जाते हैं। स्वर्णांग, चतुरंगुल, शम्पाक और कृतमाल इस पेड़ के अन्य नाम हैं। इसकी पत्तियाँ पुँखपर्णा और संयुक्त होती हैं।

अथ कोविदारस्य लक्षयति –

कोविदारो युग्मपत्रं श्वेतपुष्पविकर्णकम्।
पञ्चकर्णं भवेत् पुष्पं पञ्चैव मुक्तकेशरम् ॥18॥

[कोविदारेति कुद्दालो युगपत्रकः कुण्डली ताम्रपुष्पश्चाश्मन्तकः मरिकः स्वल्पकेशरीति।]

कोविदार के वृक्ष में युग्म पत्तियाँ होती हैं। सफेद फूल विकर्णिक रूप में आते हैं। इसमें फूल की पाँच चीरियाँ होती हैं और पाँच ही स्वतन्त्र केशर होते हैं।

अथ काञ्चनारो तत्पुष्पस्य लक्षणाह –

काञ्चनारो युग्मपत्रं विकर्णताम्रकुसुमम् ॥19॥

[काञ्चनारेति काञ्चनको गण्डारिः शोणपुष्पकेति।]

कांचनार (कचनार) का वृक्ष युग्मपत्रीय होता है। इसके फूल तांबे के वर्ण वाले और विकर्ण रूप में होते हैं।

अथाश्मन्तकाः –

अश्मन्तको युग्मपत्रं पीतपुष्पविकर्णिकम् ॥20॥
अंशुकः पूतवृक्षश्च तन्तुलं श्लक्ष्णवल्कलम्।
एते वै पादपाः सर्वे विकर्णपुष्पसंज्ञकाः ॥21॥
[अश्मन्तकेति अम्ललोणिका कोविदारश्चेति]

अश्मन्तक वृक्ष (तिनपतिया, कोइलार, जिसको कोविदार की कोटि का माना गया है) में युग्मपत्र होते हैं। इसमें पीले पुष्प आते हैं और विकर्णिक कोटि के होते हैं। इसकी छाल रेशेदार और मुलायम होती है। इसको पूतवृक्ष भी कहा जाता है। ये सब पादप विकर्ण पुष्प संज्ञक होते हैं।

अथ शूकपुष्पञ्चाह तत्र शिरीषस्य लक्षणमाह –

शिरीषः शूकपुष्पश्च पुङ्खपर्ण शुकप्रियः।
उद्यानको दृढसारः श्यामलः सिम्बिनीफलः ॥22॥
[शिरीषेति शीर्यते हिंस्यते अतिकोमलत्वात्, भण्डिलो भण्डी भण्डीरश्च कपीतनः शुकपुष्पः शुकतरुः मृदुपुष्पः शुकप्रियेति।]

शिरीष (सिरस) शूकपुष्पवर्गीय वृक्ष है। इसकी पत्तियाँ पुँखपर्णा होती हैं। इसके अनेक पर्याय हैं। यथा– शुकप्रिय, उद्यानक, दृढ़सार, श्यामल और सिम्बिनीफल।

अथ खदिरः तस्यनामानि –

खदिरः शूकपुष्पश्च बालाह्वपुङ्खबन्धनम्।
गायत्री रक्तसारश्च कण्टकी याज्ञिकः स्मृतः ॥23॥
[खदिरेति– रक्तसारश्च गायत्री दन्तधावनः कण्टकी बहुशल्यश्च बालपत्रश्च यज्ञियेति।]

खदिर (खैर) शुकपुष्पीय वर्ग का वृक्ष है। इसमें पुँखबन्धन होता है। इसके अन्य नाम बालाह्व, गायत्री, रक्तसार, कण्टकी (काँटेदार), याज्ञिक (यज्ञोपयोगी काष्ठ वाला) आदि जानने चाहिए।

अथान्य खदिरश्च जात्यां कदरः लक्षयति –

कदरः सोमवल्कश्च खदिरोऽन्य पथिद्रुमः ॥24॥
[कदरेति– श्वेतसारोऽन्य कदरः सोमवल्कलेति]

खदिर वृक्ष की ही एक प्रजाति कदर होती है। इसको सोमवल्क और पथिद्रुम के नाम से भी जाना जाता है।

अथ शमी तस्या नामादीनां –

समी तु बालपत्री च पुङ्खपर्णी समिद्वरः।
शूकपुष्पी भवेत्तुङ्गा पवित्रा शङ्कुकलिका ॥25॥
[समी वा शमेति- शक्तुफला तुङ्गा केशहन्त्री शिवाफला मङ्गल्या च तथा लक्ष्मीः शमीर साऽल्पिका स्मृता।]

समी पादप की पत्तियाँ छोटी (बालपत्र) होती हैं। यह पुँखपर्णी प्रकार का है और वैदिक अग्नि के लिए यह श्रेष्ठ काष्ठद्रुम है। इसी कारण यह पवित्र वृक्ष है। यह शूकपुष्पी है और ऊँचा होता है। समी शंकुकलिका (काँटे वाला) भी है।

अथारि लक्षयति –

अरिस्तु शूकपुष्पी च पीतपुष्पी सुगन्धिका।
पुङ्खपर्णी भवेत् सा तु बालपत्री मरुजा ॥26॥
काम्भोजी विट्खदिरश्च दुर्गन्धा पीतपुष्पिका।
[विट्खदिरेति- इरिमेदः कालस्कन्धोऽरिमेदकः इरिमेदः कषायोष्णो इति।]

उक्त वर्ग में ही अरि पादप शूकपुष्पी की अन्य प्रजाति है। इसके पुष्प पीतवर्ण और सुगन्ध वाले होते हैं। यह पुँखपर्णी है। पत्तियों का आकार छोटा होता है और यह रेगिस्तान में पाया जाता है। इसके पर्याय काम्भोजी, विट्खदिर, दुर्गन्धखैर भी हैं। यह पीले पुष्प वाला होता है।

तत्रान्य ज्ञातव्यमाह –

खदिरादयः सर्वे तु कषायाः कण्टकद्रुमाः ॥27॥
शिरीषादयः सर्वे तु शूकपुष्पेण वीक्षिताः ॥28॥

ऊपर वर्णित खदिरादि सभी पादप काँटों वाले होते हैं। इसी प्रकार शिरीष इत्यादि समस्त वृक्षों में शूकरूपी पुष्प दृष्टिगोचर होते हैं।

अथाशोकः लक्षयति –

अशोको वञ्जुलं ज्ञेयं फलेन सिम्बिका भवेत्।
गुच्छमञ्जरिका तत्र वासन्तो रक्तपल्लवः ॥29॥
[अशोकः न शोकोऽस्मात्, हेमपुष्पश्च वञ्जुलस्ताम्रपल्लवः कङ्केलिः पिण्डपुष्पश्च गन्धपुष्पो नटस्तथेति।]

अशोक वृक्ष को वंजुल के नाम से भी जानना चाहिए। इसके फल के लक्षण सिम्बिका जैसे होते हैं। मंजरी में पुष्प गुच्छों के रूप में आते हैं। पुष्प वसन्त में आते हैं और नवपल्लव रक्तिम आभा वाले होते हैं।

श्योनाकः तस्य नामानि इत्याह –

श्योनाको दीर्घसिम्बिः स्याद् वञ्जुलो भूतपुष्पकम्।
माढिना मञ्जुपर्णकं कट्वङ्गः पीतवल्कलम्॥30॥

[श्योनाकेति– शोषणश्च स्यान्नटकट्वङ्गटुण्टुकाः मण्डूकपर्णपत्रोर्ण–शुकनासकुटन्नटाः दीर्घवृन्तोऽरलुश्चापि पृथुशिम्बः कटम्भरेति।]

श्योनाक (सोनापाठा, अरलू) पादप का फल एकदम लम्बा दीर्घसिम्बि होता है। इसके दो पर्यायवाची है– वंजुल और भूतपुष्प। इसकी पत्तियाँ नेत्राकार होती हैं। पत्तियाँ माढ़ि पर आती हैं। यह कटु अंग वाला और इसकी छाल पीली होती है।

अथ तिन्तिडीकाह –

तिन्तिडी मिश्रसिम्बिः स्यात् पुष्पेण तु विशिष्यते।
अम्लिका चाम्लफलञ्च वृक्षाम्लं क्षारपादपा॥31॥

[तिन्तिडेति– अम्लो रसोऽस्त्यास्याः अम्लिका चुक्रिकाऽम्ली चुक्रा दन्तशठाऽपि अम्ला चिञ्चिका चिञ्चा तिन्तिडीका च तिन्तिडी इति नामानि।]

तिन्तिडी (इमली) मिश्रित लक्षण वाला पादप है। इसके पुष्प विशिष्ट होते हैं। फल खट्टे होते हैं। इसके पर्याय हैं– अम्लिका, अम्लवृक्ष और क्षारपादप।

[समाहृत इति वर्गो समिनाम्नात् विनिश्चयः।

इस प्रकार यहाँ समि नाम वाले समस्त पादप वर्गों का वर्णन किया गया।

इति पराशरकृते वृक्षायुर्वेदे वानस्पत्यकाण्डे समिवर्गाध्यायो नाम तृतीयोऽध्यायः॥3॥]

इस तरह पराशरकृत वृक्षायुर्वेद के वानस्पत्य काण्ड में समिवर्गाध्याय नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ।

❖❖❖

अथ गुल्मक्षुपकाण्डः
दल्वजवर्गाऽध्याय ॥1॥

अथ पराशरोवाच –

अथात दल्वजवर्गाध्यायं
व्याख्यास्याम इत्याह पराशरः ॥1॥

महर्षि पराशर बोले- अब मैं दल्वज वर्ग के पादप समूह का वर्णन करूँगा।

तत्र दल्वजा संज्ञाकारणमाह –

इह खल्वानुपदल्वच्छन्न भूमिषु
सञ्जातमुदभिदं दल्वजं विज्ञायते।

जहाँ पर भूमि नम और दलदली होती है, वहाँ पर इन पादपों की उत्पत्ति होने से उनको दल्वज के नाम से जाना जाता है।

तस्या कण्डुला नामानि –

तेषां दल्वजानामेकमातृकं कन्दरोहकं
त्रिसिराकमठच्छदं यदुद्भिदं तदेव कण्डुला संज्ञायते।

इस वर्ग के पादपों के बीज एकपत्रीय पाए जाते हैं। इनका पुनरुत्पादन प्रकन्दों से होता है। इनकी पत्तियाँ कमठाकार (कछुए जैसी) होती हैं और त्रिसिरा (तीन सिर वाली) होती हैं। इस कारण इनको कण्डुल नाम से भी जाना जाता है।

एव तासां दीर्घं नालसङ्काशं पत्रवृन्तमन्तरसुषिरञ्च।
तस्मिन् बहुनि स्रोतांसि विद्यन्ते।
वृन्ते पत्रसन्निवेशं पृष्ठग्रन्थिकञ्च।

कण्डुल पादप लम्बे और नलिका के आकार वाले होते हैं। पत्रवृन्त भीतर से खोखले होते हैं। उन वृन्तों में अनेक स्रोत या छिद्र होते हैं। वृन्त पत्ती के पिछले भाग से जुड़े होते हैं।

एष वर्गोऽक्षमञ्जरिकश्च।
एव तासामेकमोचिको तु पुच्छिकवल्लर्यां
सफलं निष्फलञ्च द्विविधं पुष्पं भवति।

कण्डुल वर्ग के पादपों में अक्ष मंजरी होती है जिसमें एक ही मंजरी बिल्ली की पूँछ जैसी होती हैं। पुष्प सफल और निष्फल दोनों प्रकार के होते हैं।

अन्यदप्याह –

कण्डुलानां स्वरसः किञ्चिद विषविकाशि-
गुणत्वात् स्पर्शे कण्डुश्च भवति।

कण्डुल प्रकार के पादपों का अपना रस विष का विकास कर सकता है जिसके फलस्वरूप उसका स्पर्श करने पर खुजली होती है।

तस्य पञ्चविध प्रकृत्याह –

कण्डुला प्रकृत्या पञ्चविधा भवति।
मानका च ग्रन्थिला च खण्डकर्णा च
वल्लीकण्डुला चैकपर्णिका चेति।

कण्डुल पादप पाँच प्रकार के होते हैं। यथा– 1. मानक, 2. ग्रन्थिला, 3. खण्डकर्ण, 4. वल्लीकण्डुल और 5. एकपर्णिक।

तत्र मानका बृहत्कमठच्छदं भवति।
गते बहुवर्षे कदाचिद् हरितमोचिकेन पुष्पमञ्जरिर्दृश्यते।

मानक वर्ग में पत्ती एक बड़े कछुए जैसी दिखाई देती है। मानक वर्ग की मंजरी वर्षों बाद आती है जो हरित मोचिक के साथ दिखाई देती है।

त्रिविध मानकवर्गाः –

मानका तु त्रिविधा भवति।
निर्विषा च सविषा च क्षुद्रमानकेति।

उक्त मानक वर्ग भी तीन उप विभाग का है– 1. निर्विष, 2. सविष और 3. क्षुद्रमानक।

तत्र निर्विषा बृहत्पत्रं मध्यमकन्दं भवति।
सविषा तु बृहत्कन्दं बहुवर्षं जीवयति।
क्षुद्रमानकैव सविषा भवत्येव वार्षिका च।

इनमें से निर्विष मानक वर्ग में बड़े पत्ते पाए जाते हैं और मध्यम दर्जे के कन्द होते हैं। सविष वर्ग में बड़े कन्द होते हैं और वर्षों तक विद्यमान रहते हैं। तीसरे, क्षुद्रमानक विषकारी वर्ग होता है और सालों साल होता है।

अथ ग्रन्थिलावर्गाः –

ग्रन्थिला तु पुष्पान्ता भवत्येव मूलेन ग्रन्थिः सञ्जायते।
अस्याः पीतमोचिकेन सह पुष्पमञ्जरिर्दृश्यते।

इसके दूसरे ग्रन्थिला वर्ग में जब पुष्प आते हैं, वह मर जाता है लेकिन कलिका मूल फिर से उत्पत्ति होती है। इसकी मंजरी में पीत वर्ण का मोचिक रस होता है।

खण्डकर्णाह –

खण्डकर्णा तु मण्डुकपर्णिनी भवति।
अस्या हरितमोचिकेन सह रक्तमञ्जरिकार्दृश्यते।
एव फलपाकान्ता भवति। बीजेन वा कन्देन प्ररोहयेत।

खण्डकर्ण वर्ग में पत्ती मेंढक जैसी होती है। इसमें हरित मोचिक पाया जाता है और वह रक्त मंजरी के साथ दिखाई देता है। ये वार्षिक होते हैं और पुनः उत्पादन बीज या प्रकन्द से होता है।

वल्लीकण्डुला तु प्रताना स्यात्।
अस्यां खलु पत्रमञ्जरिभेदेन बहुभेदो विद्यते।

वल्लीकण्डुल से प्रतान उत्पन्न होते हैं। इनमें मंजरियों के भेद से अनेक प्रकार पाए जाते हैं।

वर्तुलकन्दकानां –

एकपर्णिकश्च वर्तुलकन्दश्च। स तु सुरणकन्दमाचक्षते।
अस्यादौ पुष्पमञ्जरिः सम्भवति। पश्चात् शुङ्गावृतं दीर्घनालवृन्ते
पृष्ठग्रन्थिकमेकपर्णं सञ्जायते।

अन्तिम, एकपर्ण वर्ग में वर्तुलकन्द होता है। जैसा कि सुरण नामक कन्द देखा जा सकता है। इसके प्रारम्भ में पुष्पीय मंजरी आती है। तत्पश्चात् शुंग से आवृत्त लम्बी नाल वाला वृन्त होता है। इसमें पृष्ठग्रन्थी में एक ही पत्ती होती है।

एव यावज्जीवेत्तावेदेकपर्णेन विद्यते।
पर्णन्तु बहुकर्णं भवति।
इति दल्वजवर्गे कण्डुलागणाः।

जब तक यह पादप रहता है, तब तक एक तना और एक पत्ती होती है जिसमें अनेक चीरे पाए जाते हैं। इस प्रकार यहाँ दल्वज वर्ग में कण्डुल कोटि का वर्णन पूरा हुआ।

अथ गुल्मक्षुपकाण्डः।

अथ गुल्मान् प्रवक्ष्यामि सिंहपुष्पेण भाषितान्।
समपक्षं भवेत् पर्णं दीर्घेण यच्च संज्ञितम्॥1॥

महर्षि पराशर बोले- अब मैं गुल्म समूह या क्षुप (झाड़ी) विषयक वर्णन सिंहपुष्प के सन्दर्भ में करूँगा। सिंहपुष्प प्रकार के पादपों में पत्ती के दोनों अर्द्धभाग समान आकार वाले होते हैं। पत्ती थोड़ी लम्बे आकार की होती है।

सिंहपुष्पमाह –

सिंहपुष्पं जृम्भदलं विषमकुण्डमण्डलम्।
पलाशवल्लरिस्तत्र व्यत्यासपक्षपङ्क्तिकम्॥2॥

पुष्प जो कि सिंहपुष्प के नाम से जाना जाता है, उसका पुष्पदल सिंह के खुले मुँह जैसा दिखाई देता है। पँखुड़ियाँ असमान आकार की होती है और पुष्प कुम्भमण्डल वर्ग का होता है। सिंहपुष्पगण के पादप की मंजरी पलाश वल्लरी जैसी होती है।

तत्र केशरादीनां –

पञ्चकर्णं भवेद्दलं कुण्डाङ्केशरस्तथा।
द्विकेशरौ हयक्रान्तौ द्विवराटौ द्विवर्तकौ॥3॥
कदाचित् सिंहपुष्पञ्च भिद्यते केशरेण च।
चत्वारः केशरास्तत्र विषमेण भवन्ति हि॥4॥

सिंहपुष्प की पंखुडियाँ संख्या में पाँच होती है। कुण्ड की कोख में केशर होते हैं। केशर संख्या में दो होते हैं। कभी-कभी चार व असमान होते हैं। केशर की आकृति हयक्रान्त (घोड़े के खुर जैसी) होती है। बीजाधार में दो वराटक होते हैं और दो प्रकोष्ठ पाए जाते हैं।

अथ विरुधवल्लीकाण्डः।

अथ वल्लीतृणगण्डालिकावर्गः।

अब वल्ली-तृण-गण्डालिका वर्ग प्रारम्भ होता है।

खलु वल्लीतृणगण्डालिका विविधाः सन्ति।
एता मिश्रतृणजातयः।

वल्ली, तृण और गण्डालिकाएँ[1] अनेक प्रकार की होती हैं। ये मिश्रित प्रकार की घास की प्रजातियाँ कही जाती हैं।

तत्रैकपर्ण वर्गाः –

प्ररोहे पर्णामेकं भवति।
एषां वर्गाणां पत्राणि मञ्जुकसंज्ञकानि स्युः।

इनमें वे पादप भी हैं जो अंकुरण पर केवल एक पत्ती उत्पन्न करते हैं। इनके वर्ग में पत्तों को मंजुकपत्र के नाम से जाना जाता है।

पत्रसिराणां संस्थानं वेल्लितञ्च।

1. यह बहुत सम्भव है कि तीखे काँटे पैदा करने वाली कोई घास है। मन्त्रों में विषैले जानवर के लिए आता है- गोयरा गण्डाली, चित्ती रक्तपित्ती...। सम्भव है यह विषैले वर्ग की हो।

इनमें जालीय शिरा विन्यास भी हो सकता है।

बहुसन्धितकाण्डमाह –

पत्रबन्धनन्तु पट्टिकेन काण्डक्रान्तं भवति।
काण्डस्तु तन्तुलं बहुसन्धितञ्च भवति।
स्वल्पप्रताना एव तृणपुष्पेण विद्यात्।

पत्रबन्धन पट्टिक से तने को आक्रान्त करता है। इनमें तना कमजोर, रेशेदार और बहुखण्डीय होता हैं। पत्ती तने को ढँक लेती हैं। पुष्प घास परिवार जैसे होते हैं।

स्वरसस्तु सान्द्रं पिच्छलं भवति।
एष गणः काञ्चलिका नामतो विज्ञायते गण्डिनी वा।
एव पत्रेण पुष्पेण विविधं भवतीति तृणगण्डालिकावर्गः।

इनका रस गाढ़ा और लसलसा होता है। इस परिवार के पादप कांचलिका और गण्डिनी कहलाते हैं। इस प्रकार पत्र और पुष्प अनेक प्रकार के होते हैं। यहाँ तृण गण्डालिका वर्ग पूरा हुआ।

तत्र प्रक्षिप्तांश –

विरुधवल्लीकाण्ड के अन्तर्गत ऊपर उल्लिखित पादपों में से कतिपय वल्लियों की पहचान कोशों और निर्घण्टुओं के आधार पर की जा सकती है। पातंजलनिर्घण्टु, राजनिर्घण्टु, मदनपालनिर्घण्टु आदि में जो साक्ष्य और सन्दर्भ हैं, उनके आधार पर निम्न संकेत उपयोगी होने से विचारणीय हो सकते हैं–

1. *सूर्यवल्ली* : इस पादप की पहचान नहीं हो सकी है।
2. *चन्द्रवल्ली* : यह सम्भवतः माधवी है।
3. *सोमवल्ली* : इसकी पहचान नहीं हो सकी है।
4. *भद्रवल्ली* : यह सम्भवतः प्रशारणी है।
5. *कन्दवल्ली* : यह विदारीकन्द है।
6. *काष्ठवल्ली* : यह दारुहरिद्रा (दारुहल्दी) है।
7. *कण्टवल्ली* : यह शान्तामूली या शतावरी है।
8. *छिन्नरुहावल्ली* : अमृता और गुडुची के रूप में इसको जाना गया है।
9. *त्रिपुटावल्ली* : त्रिपुट नामक पादप।
10. *कोलवल्ली* : ताम्बूली, चव्य, पिप्पली।
11. *तुम्बीत्रिपुषवल्ली* : तुम्बी, कोहड़ा वर्ग वाली लताएँ।
12. *जालिनीकृतबेधनवल्ली* : तुम्बी वर्ग वाली अन्य लताएँ।

13. *आकाशवल्ली* : पहचान नहीं हो सकी।
14. *क्षीरवल्ली* : अब तक अनजाना पादप।
15. *गुच्छफलवल्ली* : द्राक्षा या अंगूर वाली लता।
16. *सिम्बिफलवल्ली* : मधुयष्टि या मूलेठी।
17. *मञ्जुवल्ली* : इसको मंजिष्ठा या मजीठा के नाम से जाना जाता है।
18. *जलवल्ली* : कलम्बी नाम से पहचान।
19. *दल्वजवल्ली* : कमजोर तने वाले, आर्द जलवायु वाले पादप।
20. *ह्रस्ववल्ली* : छोटी लेकिन पहचान नहीं हो सकी है।
21. *तृणगण्डालिकावल्ली* : पहचान नहीं हो पाई है।
22. *ऋतुवल्ली* : इसकी पहचान नहीं हो सकी है।
23. *कपोतवल्ली* : इसकी पहचान नहीं हो सकी है।

अथ आयुर्वेदविभागः नाम प्रक्षिप्तांशे चिकित्साऽध्यायः ॥1॥

अथ पराशरोवाच –

अथ चातुर्वर्ण्यहितार्थाय पादपात्
चिकित्साकर्मः कथ्यताम्।

पराशर बोले- अब मैं चारों ही वर्गों के हित के निमित्त पादपों से होने वाले चिकित्सा कर्म के विषय में कहता हूँ।

वेदानामुपवेदान् ऋग्वेदस्यायुर्वेदो
तस्या गुल्मवृक्षायुर्वेदः शृणुष्व ते।

वेदों से संयुक्त उपवेद होते हैं। उनमें ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है और उसमें गुल्म-वृक्षायुर्वेद के विषय में सुनिये।

तस्य ध्यानमाह –

तस्य रूपं पद्मपत्राक्षः प्रलम्बजठरः सुविभक्तग्रीवः।
कुञ्चितकेशश्मश्रुः प्रमाणेनापि वितस्तिपञ्च।
स राजते मौक्तिवरोऽथ पूज्यो वरप्रदो द्विजाय।

उसका ध्यान-स्वरूप इस प्रकार है- उसके नेत्र कमलपत्र के समान हैं, लम्बा उदर है, ग्रीवा अच्छी तरह विभाजित रूप वाली है, कुंचित केशराशि और दाढ़ी-मूँछ हैं तथा आयाम प्रमाण पाँच वितस्ति के बराबर है। चाँदी और मोती से पूजा करने पर यह वेद अभ्यासकर्ता विप्रों को वरप्रदान करता है।

तस्य माहात्म्यः –

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात्।
अविद्वान् विद्यां प्राप्नोति दुःखादुःखी प्रमुच्यते॥1॥

इस वेद के अभ्यास से व्यक्ति यदि अपुत्र हो तो पुत्रलाभ प्राप्त करता है। निर्धन हो तो धन पाता है। जो जड़ बुद्धि हो, वह विद्या प्राप्त करता है और दुःखी हो तो दुःखों से मुक्त हो जाता है।

पठित्वा इदं वेदानां सम्मतो द्विजवल्लभः।
भवते नात्र सन्देहो पादपा वरदा सदा॥2॥

इसका पाठाभ्यास करने वाला पण्डितों का प्रियपात्र हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पादप सदैव वरदायक होते हैं।

उपाङ्गानां च वृक्षानामायुर्वेदं वरः विदुः।
धर्मार्थकाममोक्षानां स चापि फलदायकः ॥3॥

उपांग और अंगों में वृक्ष नामक आयुर्वेद सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष- इन चारों ही पुरुषार्थों का फल प्रदायक माना गया है।

तत्र सर्वज्ञातव्यमाह –

हिताहारोपयोग एव पुरुषस्याभिवृद्धिकरो भवेत्।
अहिताहारोपयोगः पुनर्व्याधिकरो तथा।
हितसमाख्यातानां चैवहारजातानामहित समाख्यातानां
च मात्रा काल क्रिया भूमि –
देहदोषपुरुषोऽवस्थान्तरेषु विपरीतकारित्वमुपलभामहेति।

हितकारक आहार का उपयोग ही व्यक्ति के लिए सुखवृद्धि का कारण जानना चाहिए। अहितकारक आहार व्याधिकारक होता है। हितकारक आहार को समझना चाहिए और अहितकारक आहार को भी जानना चाहिए। इस प्रसंग में आहार की मात्रा, कालानुसार उपयोग, उपयोग की क्रियाविधि, भूमि, देह के दोष, अवस्था और विपरीत कारण से होने वाले प्रभाव को भी जानना चाहिए।

यदाहारजातश्चैव शरीरधातून् प्रकृतौ स्थापयति विषमाञ्च
समीकरोत्येतद्धितं विद्धि विपरीतं
वारितामित्येतद्धि हिताहितलक्षणमनपवादं भवति।

जो आहार समतासम्पन्न धातुओं को प्रकृतिस्थ (स्वाभाविक रूप में) रखता है तथा विषम भावापन्न धातुसमूह को समतापन्न करता है, वही आहार हितकारी होता है। इससे विपरीत होने पर आहार अहितकारी समझना चाहिए। इसी को हिताहित का लक्षण समझना चाहिए।

येषां विदितमाहारतत्त्वं गुणतो द्रव्यतः कर्मतः
सर्वावयवतो मात्रादयश्च तावान्तु एतदेवमुपदिष्टं विज्ञातुमुत्सहेरन्।
तदेतदुपदैक्ष्यामो मात्रादीन् भारानुदाहरन्तः।

जो आहारतत्त्व को जानते हैं और उसके गुण, द्रव्य, कर्म और मात्रादि समस्त अवयवों सहित पहचानते हैं, उनके लिए यह उपदेश सहज बोधगम्य है। उसके मात्रा, भारादि के विषय उपदेश योग्य हैं।

अथा आहारविधिमाह –

तेषां हि बहुधा विकल्पा भवन्ति।
आहारविधिविशेषाँस्तु खलु

लक्षणतश्चावयवतः चानुव्याख्यास्यामः।

तद्यथा-

आहारत्वमाहारस्यानेकविधमर्थभेदात्।

यह ज्ञात है कि आहार के अनेक विकल्प होते हैं। यहाँ विशेष रूप से आहार की विधि के लक्षणात्मक अवयवों की विवेचना की जा रही है। अर्थ के भेद से आहार भी अनेक प्रकार का हो सकता है।

द्विविधाहारभेदमाह -

स पुनर्द्वियोनिः स्थावरजङ्गमात्मकत्वात्।

द्विविध प्रभावो हिताहितोदकाविशेषात्।।4।।

उत्पत्ति के आधार पर उसके दो भेद होते हैं- 1. स्थावर आहार और 2. जंगम आहार। उसका प्रभाव भी विशेषरूप से दो प्रकार का होता है- हितकारक और अहितकारक प्रभाव।

तस्य चतुर्विधोपयोगमाह -

चतुर्विधः उपयोगः पानाशनभक्ष्यलेहजोपयोगात्।

उपयोग की दृष्टि से आहार के चार प्रकार होते हैं- 1. पान (पेय), 2. अशन (भोजन), 3. भक्ष्य (चर्वण) और 4. लेहन (चाटना)।

तस्य षड्रसाः -

षडास्वादो रसभेदतः षडविधत्वात् पूर्वतः।।5।।

रस चूँकि छः हैं। इस भेद से उसके छः प्रकार के आस्वाद होते हैं। जैसा कि पूर्व में भी कहा गया है।

विंशति गुणाहार -

विंशतिगुणो गुरु-लघु-शीतोष्ण-स्निग्ध-रूक्ष-

तीक्ष्ण-स्थिर-सरस-मृदु-कठिन-विषद-

पिच्छल-श्लक्ष्ण-खर-सूक्ष्म-

स्थूल-घन-सार्द्र-द्रव्यानुगमात्।

आहार के बीस गुण होते हैं- 1. गुरु आहार (गरिष्ठ), 2. लघु (हल्का), 3. शीतल (ठण्डा), 4. उष्ण (गर्म), 5. स्निग्ध (तैलीय), 6. रूक्ष (रूखा), 7. तीक्ष्ण (तीखा), 8. स्थिर (स्थायी), 9. सरस (रसपूर्ण), 10. मृदु (मुलायम), 11. कठिन (कठोर), 12. विषद (जटिल), 13. पिच्छल (लसलसा), 14. श्लक्ष्ण (चिकना), 15. खर (खुरदरा), 16. सूक्ष्म (अल्प), 17. स्थूल (अधिक), 18. घन (पिण्डित), 19. द्रवीय (द्रव जैसा) और 20. अनुगमीय (परवर्ती)।

अपरिसंख्येयविकल्पो द्रव्यसंयोगकरण बाहुल्यात्।

भिन्न-भिन्न पदार्थों के संयोग से आहार के अनगिनत विकल्प हो सकते हैं।

तस्य ये ये विकारावयवा भूयिष्ठमुपयुज्यन्ते
भूयिष्ठकल्पाणाञ्च मनुष्याणां प्रकृत्येव
हिततमाँश्चाहिततमाँश्च ताँस्तान् यथावदनुव्याख्यास्यामः।

उनमें से जो भेद, अवयव अर्थात् विकल्प सर्वत्र व्यवहृत होते हैं तथा विशेष रूप से हितकर अथवा अहितकर होते हैं, उन सबकी व्याख्या की जाती है।

हिततमानामप्युदेक्ष्यामः तद्यथा-

लोहिताशालयः शूकधान्यानां पथ्यतमत्वे श्रेष्ठतमा भवन्ति।
मुद्गाः शमीधान्यानां जीवन्तीशाकं शाकानाम्।

हितकारक आहारों में से शूकवर्गीय धान्य में रक्तशाली (लाल चावल) सर्वापेक्षतया सुपथ्य माने गए हैं। शमीधान्य वर्ग में मूँग और शाक वर्ग में जीवन्तिशाक श्रेष्ठ हैं।

तिलतैलं स्थावरस्नेहानां शृङ्गवेरं कन्दानां
शर्करा इक्षुविकाराणामिति
प्रकृत्यैव हिततमानामाहारविकाराणां
प्रधानतमानि द्रव्यानि व्याख्यातानि भवन्ति।

स्थावर स्नेह के अन्तर्गत तिल का तेल श्रेष्ठ है। कन्द वर्ग में अदरक और ईख से बनाई वस्तुओं में शर्करा है। प्राकृतिक स्वभाव से ही ये आहार हितकारी होते हैं और अविकारी होते हैं। इस प्रकार उक्त प्रधान-प्रधान हितकारी आहार द्रव्यों को यहाँ कहा गया है।

अहिततमानामप्युपदेक्ष्यामः -

यवकाः शूकधान्यानामपथ्यत्वे निकृष्टतमाः भवन्ति।
माषा शमीधान्यानाम्। सर्षपशाकं शाकानाम्।
कुसुम्भस्नेहः स्थावरस्नेहानाम्।

अब अहितकारक आहार के विषय में कहा जाता है। शूकवर्गीय धान्य में यवक (छोटे जौ) का आहार अतिशय अपकारी और निकृष्टतम है। शमीधान्य में उड़द और शाकों में सरसों का साग निकृष्ट होता है। वनस्पतिजन्य तेलों में कुसुम्भ बीज का तेल निकृष्ट माना गया है।

मूलकं कन्दानाम् लकुचं फलानाम्
फाणितमिक्षुविकाराणामिति प्रकृत्यैव

अहिततमानामाहारविकाराणाम्
निकृष्टतमानि द्रव्याणि व्याख्यातानि भवन्ति।

इसी प्रकार कन्दवर्ग में मूली, फलों में लकुच का फल और ईख से बने हुए द्रव्यों में फाणित (मीठी राब) सबसे निकृष्ट होती है। इस प्रकार यहाँ निकृष्ट आहार वाले द्रव्यों को कहा गया है।

अथोषधानां प्राधान्यतः द्रव्याणि –

हिताहिताहारमाहारविकाराणामतो भूयः
कर्मोषधानाञ्च प्राधान्यतः सानुबन्धानि द्रव्याणि
अत्र व्याख्यास्यामः।

ऊपर हितावह और अहितकारी आहार के विषय में कहा गया है। अब क्रिया सहित औषधियों में प्रधानतः अनुबन्धित द्रव्यों की व्याख्या करता हूँ।

तद्यथा–
सोम औषधीनां, यथा– रोचनादधिसर्पिमङ्गलानां
तथा तिलदानं ग्रहोपशमनीयानाम्।

चन्द्रमा को औषधियों का प्रधान माना गया है। मंगलकारक द्रव्यों में गोरोचन, दधि और घृत को जिस तरह प्रमुख गिना गया है, वैसे ही ग्रहजन्य दोषों के उपशमन के लिए तिलदान को वरीयतः जानना चाहिए।

अन्नं वृद्धिकरद्रव्याणाञ्च तिन्दुकमनन्नद्रव्यरुचिकराणाञ्च
आमकपित्थक अकर्च्यानाम्।

जीवन के वृद्धिकारक पदार्थ में अन्न प्रमुख है। अरुचिकारक अन्नों में तिन्दुक प्रधान है। स्वरभंग करने वाले द्रव्यों में प्रधान है केरी (कच्चा आम) और कपित्थ (कैथ, कबिती)।

अन्यदप्याह –

गवेधुकान्नं कर्शनीयानाञ्च उद्दालकान्नं विरक्षणीयानाञ्च
इक्षुर्मूत्रजननानाञ्च यवाः पुरीषजननानाम्।

कृशताकारक द्रव्यों में गवेधुक धान्य प्रमुख माना गया है। रुक्षकारी द्रव्यों में उद्दालक अन्न, मूत्रजनक द्रव्यों में ईख का रस और मलजनक द्रव्यों में जौ का आहार प्रमुख होता है।

अन्यदप्याह –

जाम्बवं वातजननानाञ्च शष्कुल्यः श्लेष्मपित्तजननानाञ्च
कुलत्था अम्लपित्तजननानाञ्च माषा श्लेष्मपित्तजनानाम्।

वायुजनक पदार्थों में जामुन और पित्त-श्लेष्माकारी द्रव्यों में शष्कुल्य (तिलपिष्टक) प्रमुख है। अम्ल-पित्तजनक पदार्थों में कुलथी और श्लेष्म-पित्तजनकों में उड़द का प्रमुख स्थान है।

अन्यदप्याह –

मदनफलं मदनस्थापनानुवासनोपयोगीनाञ्च
त्रिवृत्त् सुखविरेचकानाञ्च चतुरङ्गुलं मृदुविरेचकानाञ्च
स्नूहीक्षीरं तीक्ष्णविरेचकानाञ्च प्रत्यक्पुष्पी शिरोविरेचनानाम्।

मद की स्थापना, अनुवासन के उपयोगी पदार्थों में मदनफल (मातुल-पुत्रक, धत्तूर अथवा गाँजा भी) प्रमुख माना जाता है। सुखपूर्वक विरेचन करने वाले पदार्थों में त्रिवृत् (सफेद निशोथ, पितोहरी, नाकपतर या नसोतर) और मृदु विरेचक पदार्थों में चतुरंगुल (गरमाला) प्रमुख है। थूहर का दूध तेज कोटि का विरेचक होता है और प्रत्यक्पुष्पी (अपामार्ग के बीज) शिरो विरेचन के लिए प्रमुखतः स्मरणीय है।

अन्यदप्याह –

विडङ्गं कृमिघ्नानाञ्च शिरीषो तीक्ष्र्यी विषघ्नानाञ्च
खदिरः कुष्ठघ्नानाञ्च रास्ना वातहराणाञ्च
आमलकं वयः स्थापनानां स्मृतः।

उदरस्थ कृमियों के विनाश के लिए विडंग, विषनाशक पदार्थों में शिरीष (सिरस), कोढ़ जैसे रोग के निवारण के लिए खदिर (खैर), वातहर औषधियों में रास्ना (छोड़, अतिरसा या रायसन) और आयु के स्थापकों में आमलकी प्रमुख रूप से स्मरणीय है।

अन्यदप्याह –

हरीतकीं सर्व सुपथ्यानाञ्च एरण्डमूलं वृष्यवातहराणाञ्च
पिप्पलीमूलं दीपनीयपाचनीय प्रशमनानाञ्च
चित्रकमूलं दीपनीयपाचनीयानाम्।

समस्त सुपथ्यों में हरीतकी (हरड़) प्रमुख है। वृष्य और वायुहारी पदार्थों में एरण्ड की जड़, जठराग्नि को प्रदीप्त करने वाले व पाचनीय तथा प्रशमनीय पदार्थों में पिप्पलीमूल प्रमुख है तो चित्रक की जड़ (चीतामूल) भी दीपनीय और पाचनीय है।

अन्यदप्याह –

पुष्करमूलं हिक्का-श्वास-कास-पार्श्वशूलहराणाञ्च
उदीच्य निर्वापण दीपनीय पाचनीय छर्द्यतीसारहराणामेति वराः।

पोष्करमूल हिचकी, श्वास, कास (खाँसी) और बाजुओं में उठने वाले शूल के

निवारण के लिए ज्ञेय है। उशीर नामक औषधि निर्वापण, दीपनीय और पाचनीय है तथा छर्दि, अतिसार जैसी व्याधियों के निवारण के लिए भी उत्तम है।

अन्यदप्याह –

कट्वङ्गं संग्राहक-पाचनीय-दीपनीयानाञ्च
अनन्ता संग्राहक रक्त-पित्त-प्रशमनानाञ्च
अमृता संग्राहक-वातहर-दीपनीय
श्लेष्मशोणितादिदोषं प्रशमनानाम्।

कट्वंग (कूठ) को संग्राहक, पाचनीय और दीपनीय द्रव्य माना गया है। अनन्तमूल को संग्राहक और रक्त-पित्त जन्य दोषों के प्रशमन के लिए जानना चाहिए। अमृता (गिलोय) को भी संग्राहक, वातहर, दीपनीय, श्लेष्म, रक्तादि दोष के शमन के लिए कहा गया है।

अन्यदप्याह –

बिल्वं संग्राहक-दीपनीय-वात-कफ-प्रशमनानाञ्च
अतिविषा दीपनीय-पाचनीय-संग्राहक-सर्वदोषहराणाम्।

बिल्व (बेल फल) को संग्राहक, दीपनीय, वात और कफजन्य दोषों के शमन के लिए जाने। अतिविषा (अलीश) को दीपनीय, पाचनीय, संग्राहक और समस्त दोषों के निवारण के लिए कहा गया है।

अन्यदप्याह –

उत्पल-कुमुद-पद्म-किञ्जल्का संग्राहक
शोणित पित्तादि योग रक्तपित्तप्रशमनानाञ्च
दुरालभा पित्त-श्लेषप्रशमनानाञ्च
गन्धप्रियङ्गु रक्तपित्तादि प्रशमनानाम्।

उत्पल, कुमुद और पद्म के किंजल्क को संग्राहक तथा रक्त-पित्तादि के संयोग तथा रक्त-पित्तजन्य दोषों के शमन के लिए जानना चाहिए। इसी प्रकार दुरालभा (धमासा) को पित्त तथा श्लेषजन्य दोषों के निवारण और गन्धप्रियंगु को रक्त-पित्तादि दोषों के शमन के लिए जाने।

अन्यदप्याह –

कुटजत्वक् श्लेष्म-पित्त-रक्त-सांग्रहिकोपशोषणानाञ्च
काश्मर्यफलं संग्राहक-रक्त-पित्त-प्रशमनानाञ्च
पृश्निपर्णि सांग्राहिकवातहरदीपनीय वृष्याणाम् वरा।

कुटज वृक्ष की छाल श्लेष्म, पित्त, रक्त, संग्राहक और उपशोषक द्रव्यों में परिगणित है। काश्मीरी फल (गम्भारी फल) संग्राहक और रक्त-पित्तजन्य दोषों के प्रशमन के लिए है। पृश्निपर्णि (पिठवन, डबला, रानगांजा एवं शंकरजटा) को संग्राहक, वातहर, दीपनीय और वृष्यद्रव्यों में प्रशस्त कहा गया है।

अन्यदप्याह –

विदारिकन्दा वृष्य सर्वदोषहराणाञ्च
बला सांग्राहिक बल्य वातहराणाञ्च
गोक्षुरको मूत्रकृच्छ्रानिलहराणाम्।

विदारी कन्द (भूमि-कूष्माण्ड) को वृष्य और सर्वदोषहारी कहा है। बला नामक औषधि को संग्राहक, बल्य तथा वातहारक बताया गया है। इसी तरह गोखरु को मूत्रकृच्छ्र तथा वायुजन्य व्याधियों का निवारक माना गया है।

अन्यदप्याह –

हिङ्गुनिर्यास छेदनीय-दीपनीय-आनुलोमिक-
वात-कफप्रशमनानाञ्च
अम्लवेतसो भेदनीय आनुलोमिक श्लेष्मप्रशमनाञ्च
यावशूकः संग्रहणीय पाचनीय अर्शोघ्नानाम्।

छेदनीय, दीपनीय, आनुलोमिक तथा वात-कफनाशक द्रव्यों में हींग को प्रमुख माना गया है। अम्लवेतस (अमलवेत) औषधि भेदनीय, आनुलोमिक और श्लेष्मजन्य रोगों के प्रशमन के लिए है। यावशूक (यवक्षार) को संग्रहणीय, पाचनीय तथा बवासीर निवारक माना गया है।

अथ लेपनीय द्रव्याः –

चन्दनोदुम्बरं मोहनिर्वाणोपलेपनाञ्च
रास्नागुरुणि शीतापनयप्रलेपानाञ्च
लोमज्जकोशीरं दाहत्वग्दोषस्वेदापनयन प्रलेपानाम्।

दाहनाशक लेपनीय पदार्थों में चन्दन और उदुम्बर प्रमुख हैं। रास्ना तथा अगुरु शीतनाशक प्रलेपों के रूप में ज्ञेय है। दाहनाशक, त्वग्दोषहारक तथा पसीना हटाने के लिए लोमज्जकोशीर (बेना की जड़) का प्रयोग करना चाहिए।

अन्यदप्याह –

कुष्ठं वातहराभ्यङ्गोपानहयोगिनाञ्च
मधूकं चक्षुष्य-वृष्य-केश्य-कण्ठ्य-
वर्ण्य-विरजनीयरोपनीयानाम् वरा।

कुष्ठ (कूठ) नामक औषधि वातहारी है। यह अभ्यंग और प्रलेपन उपायों में भी प्रमुख है। मूलेठी चक्षुष्य, वृष्य, केशहितकारी, कण्ठ हितावह, स्वर अच्छा करने वाले और विरजनीय घाव भरने वाले द्रव्यों में प्रमुख है।

अथाहारमात्रादीनां विचारमाह –

अतिमात्राशनं आमप्रदोषहेतुनाञ्च
यथाग्न्यम्बुभ्याहारो अग्निसन्धुक्षणानाञ्च
यथासाम्यं चेष्टाव्यवहारश्च सेव्यानाञ्च
काले भोजनमारोग्यकराणाम्।

आवश्यकता से अधिक भोजन आमदोषकारकों में प्रधान कारण माना जाता है। जितनी जठराग्निदीप्त (जितनी भूख लगी) हो, उतना ही जल और आहार उस समय ग्रहण करना चाहिए। जितना सामर्थ्य हो, उतना ही कार्य-व्यवहार करना चाहिए। आरोग्यकारी उपायों में मुख्य है यथासमय भोजन ग्रहण करना।

अन्यदप्याह –

वेगसन्धारणं अनारोग्यकराणाञ्च तृप्तिराहारगुणानाञ्च
गुरुभोजनं दुर्विपाकानाम्।

व्याधि उत्पन्न करने वाले उपायों में प्रधानरूप से मल-मूत्रादि के स्वाभाविक वेग को रोके रखना। गुणानुसार आहार ग्रहण करने में तृप्ति होती है। कठिनाई से पचने वाला भोजन दुष्परिपाक या अपचकारक होता है।

अन्यदप्याह –

एकाशन शय नभोजनञ्च सुखपरिणामकराणाञ्च
अनशनमायुषो ह्रासकराणां, प्रमितामाशनं कर्णनीयाणाम्।

उत्तम रूप से पचाने की दृष्टि से एक समय आहार करना ठीक होता है। यह सुख परिणाम प्रदायक होता है। भूख से कम आहार करना या अनशन आयु को कम करता है। सदैव मिताहार करने के योग्य है।

अन्यदप्याह –

अजीर्णाध्यशनं ग्रहणीदूषणानाञ्च
विषमशनमग्निवैषम्यकराणाम्।

ग्रहणीदोष में प्रधान है अपच रहते भोजन करना। असमय आहार करना अग्नि विषमता के कारकों में प्रधान होता है।

अथ रसः लक्षयति –

सर्वरसाभ्यासो बलपुष्टिकराणाञ्च
एकरसाभ्यासो दौर्बल्यकराणाञ्च अजीर्णं रोगहेतूनाम्।
आयुर्वेदोऽमृतानां सन्तोषः सुखानामिति।

समस्त रसों (अम्ल, मधुरादि छह रस) का सेवन बल और पुष्टिकारक है। केवल एक रसीय रहना दुर्बलता का कारण होता है। अजीर्ण रोगों का हेतु है। अमृत में आयुर्वेद और सुखों में सन्तोष प्रमुख माना गया है।

अथारोग्य हेतुसाधनं प्रशंसामाह –

सर्वेषां साधने हेतुरारोग्यं समुदाहृतम्।
तस्मात् प्रयत्नतो विप्र प्रथमेनं समभ्यसेत्॥6॥

यह ज्ञातव्य है कि आरोग्य ही समस्त कार्यसिद्धि का हेतु कहा गया है। इसलिए सर्वोच्च प्राथमिकता से आरोग्य का साधन करना चाहिए।

वेदाङ्गानां यथा ज्योतिर्वरिष्ठः मुनिसत्तम।
उपाङ्गानां तथा चैतदायुर्वेदो वरः स्मृतः॥7॥

मुनिवरो! वेदांगों में जिस प्रकार ज्योतिष सबसे श्रेष्ठ कहा जाता है, वैसे ही उपांगों में आयुर्वेद का स्थान उत्तम जानना चाहिए।

आयुर्वेदार्थकुशलारमरत्वं गता मुने।
मित्राणामुपकाराय अपकाराय शत्रवे॥8॥

आयुर्वेद के महत्त्व को जानकर निष्णात् मुनियों ने अमरत्व प्राप्त किया है। यह विद्या मित्रों का उपकार और शत्रुओं का अपकार करने वाली भी है।

इति पराशरकृतेन वृक्षायुर्वेदे आयुर्वेदविभागः
नाम प्रक्षिप्तांशे चिकित्साऽध्यायः॥

इस प्रकार महर्षि पराशरकृत वृक्षायुर्वेद के आयुर्वेद विभाग नामक प्रक्षिप्तांश में चिकित्साध्याय पूरा हुआ।

❖❖❖

अथ आयुर्वेदविभागः नाम प्रक्षिप्तांशे भूमिप्रविभागीयाऽध्यायः ॥2॥

अथ पराशरोवाच –

अथातो भूमिप्रविभागीयमध्यायं
व्याख्यास्यामः इत्याह पराशरः ॥1॥

महर्षि पराशर बोले- अब इसके उपरान्त भूमिप्रविभागीय नामक अध्याय का व्याख्यान करेंगे।

अथौषधोपयोगीभूमिलक्षणमाह –

यथोवाच पुराकाले महर्षयः-
श्वभ्र-शर्करा-ऽश्म-विषम-वल्मीक-श्मशाना-घातन-
देवतायतन-सिकताभिरनुपहता-मनूषरा-मभङ्गुरा-मदूरोदकां
स्निग्धां-प्ररोहवतीं-मृद्वीं-स्थिरां-समां-कृष्णां-गौरीं
लोहितां वा भूमिमौषधार्थं परीक्षेत ॥2॥

जैसा कि पूर्वकाल में महर्षियों ने कहा था कि औषधि, वनस्पति को ग्रहण करने के लिए निम्न प्रकार की भूमि की परीक्षा करनी चाहिए- जो श्वभ्र (खड्डे, बिल), कंकड़, पत्थर, ऊँची-नीची, बाँबी वाली, श्मशान, वधस्थल (आघातन), देवता का स्थान (देवतायतन), बालू से रहित (सिकताशून्य), अनूषर (ऊसर न हो), अभंगुर (फटी हुई न हो), जिसमें खोदने पर जल अधिक गहराई पर नहीं हो, चिकनी, दूर्वा-घास आदि उगते रहते हों, जो मुलायम, स्थिर और समतल हो, जो काले, सफेद और जो रक्तवर्ण भूमि हो।

तत्रोपयोगी ओषधयः –

तस्यां जातमपि कृमिविषशस्त्रातपपवनदहनतोयसम्बाध
मार्गैरनुपहतमेकरसं पुष्टं पृथ्ववगाढमूल-
मुदीच्याञ्चौषधमाददीतेत्येष भूमिपरीक्षाविशेषः सामान्यः ॥3॥

उपर्युक्त लक्षणों वाली भूमि में उत्पन्न हुई वनस्पति में भी यह ज्ञातव्य है कि वह कृमि-कीटों के द्वारा नहीं खाई हुई हो, विष, शस्त्र, धूप, वायु, अग्नि, जल और अन्य बाधाओं से ग्रस्त न हो, रास्ते में उगने से नष्ट नहीं हुई हो तथा उत्तम एकरस से युक्त हो, पुष्ट हो जिसकी जड़ भूमि में गहराई तक गई हुई हो, ऐसी वनस्पति को उत्तर की ओर बैठकर ग्रहण करना चाहिए। यह सामान्यतया औषध और भूमि की विशेष परीक्षा (पहचान) कही गई है।

विशेषतस्तु तत्र भूमिः लक्षयति –

अश्मवती स्थिरा गुर्वी श्यामा कृष्णा वा
स्थूलवृक्षशस्यप्राया स्वगुण यूयिष्ठा।

उक्त भूमियों के प्रसंग में यह ज्ञातव्य है कि विशेषरूप से जो पथरीली, स्थिर, भारी, श्याम अथवा काले रंग वाली और बड़े-बड़े पेड़ तथा घास से युक्त भूमि हो, वह अपने पार्थिव गुणों से युक्त होती है।

स्निग्धा शीतलाऽऽसन्नोदका स्निग्धशस्यतृण-
कोमलवृक्षप्राया शुक्लाऽम्बुगुण भूयिष्ठा।

जो चिकनी हो, ठण्डी, थोड़ी गहराई पर खोदे जाने पर जल की प्राप्ति वाली तथा जिसमें मुलायम धान्य और घास उत्पन्न होता हो, जहाँ प्रायः कोमल वृक्ष मिलते हों और जो श्वेत वर्ण वाली मिट्टी हो, वह जल के गुणों (शीत, स्निधादि) वाली भूमि होती है।

नानावर्णा लघ्वश्मवति प्रविरलाल्प-
पाण्डुवृक्षप्ररोहाऽग्निगुणभूयिष्ठा।

जो भूमि अनेक वर्ण वाली, छोटे-छोटे पत्थरों वाली, कहीं-कहीं पर छोटे-छोटे सफेद रंग के वृक्ष और तृणांकुरों से युक्त हो, वह भूमि आग्नेय गुणों की प्रधानता लिए होती है।

रुक्षा भस्मरासभवर्णा तनुरूक्षकोटराल्परस-
वृक्षप्राया अनिलगुण भूयिष्ठा।

जो भूमि रूक्ष (रूखी-सूखी), भस्म अथवा गदहे के समान धूसर वर्ण वाली हो, जिसमें छोटे-छोटे और रुक्ष तथा कोटरयुक्त और अल्प रस वाले वृक्षों की बहुलता पाई जाती हो, वह वायु के गुणों की प्रधानता वाली भूमि होती है।

मृद्वी समा श्वभ्रवत्यव्यक्तरसजला सर्वतोऽसारवृक्षप्राया
श्यामा चाकाशगुणभूयिष्ठा।।4।।

जहाँ पर मिट्टी मुलायम, समतल, बिल (गड्ढे) मिलते हों और जहाँ रस तथा जल अल्प होने से प्रकट नहीं होता हो, जहाँ चतुर्दिक सारहीन बड़े-बड़े वृक्ष पाए जाते हों तथा जहाँ बड़े-बड़े पर्वत विद्यमान हों एवं जिसकी मिट्टी काले वर्ण की हों, वह भूमि आकाश गुणों की प्रधानता लिए होती है।

अत्र केचिदाहुराचार्य्याः-

प्रावृड्वर्षाशरद्धेमन्तवसन्तग्रीष्मेषु यथासङ्ख्यं
मूलपत्रत्वक्क्षीरसारफलान्याददीतेति।
तत्तु न सम्यक् सौम्याग्नेयत्वाज्जगतः।

कतिपय आचार्यों का कहना है कि वर्षा के आदिकाल में वनस्पतियों की जड़ें, वर्षा ऋतु के दौरान पत्र, शरद ऋतु में छाल, हेमन्त ऋतु में दुग्ध, वसन्त ऋतु में सार और ग्रीष्म ऋतु के दौरान फलों को संचित करना चाहिए लेकिन यह मत उचित नहीं है क्योंकि जगत् जगत सौम्य (जलीय या कफ तत्त्व प्रधान) तथा आग्नेय (अग्नि या पित्त तत्त्व प्रधान) होता है।

सौम्यान्यौषधानि सौम्येष्वृतुषु गृहीतानि सोमगुण भूयिष्ठायां भूमौ जातान्यतिमधुरस्निग्धशीतानि जायन्ते ॥5॥

अतएव सौम्य (शीतवीर्य अथवा जल या कफ गुण प्रधान) वनस्पतियों को सौम्य (दक्षिणायन में सूर्य के विद्यमान रहते) ऋतुओं में और अग्नि गुण प्रधान (उष्णवीर्य) ओषधियों को आग्नेय (उत्तरायण में सूर्य के रहते) ऋतुओं में संचित करना चाहिए। इस प्रकार से संचित करने से वनस्पतियाँ अविकृत गुणों वाली होती हैं। सौम्य ओषधियों को सौम्य ऋतुओं में संचित किया जाए तथा सौम्य भूमि में वे उत्पन्न हुई हों, तो वह बहुत ही मधुर रस वाली, स्निग्ध तथा अतीव शीतवीर्य प्रधान होती हैं।

अथ विरेचक द्रव्याणि ग्रहणकाले भूमिविचारमाह –

तत्र पृथिव्यम्बुगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातानि विरेचनद्रव्याण्यददीत, अग्न्याकाशमारुतगुणभूयिष्ठायां वमनद्रव्याणि।

पृथ्वी और जल गुण वाली भूमि में उत्पन्न हुई विरेचक वनस्पतियों को ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार अग्नि, आकाश तथा वायु गुण वाली भूमि में उत्पन्न वामक वनस्पतियों को ग्रहण करना चाहिए।

उभयगुणभूयिष्ठायामुभतोभागानि।
आकाशगुणभूयिष्ठायां संशमनानि।
एवं बलवत्तराणि भवन्ति ॥6॥

यदि उक्त दोनों ही गुणों वाली भूमि हो तो वहाँ उत्पन्न हुई दोनों ही गुण अर्थात् वमन और विरेचन कर्म करने वाली वनस्पतियों को संचित करना चाहिए। आकाश गुण प्रधान भूमि में उत्पन्न हुई संशमन करने वाली वनस्पतियों का संचय करना चाहिए। इस तरह की भूमि से और उचित उक्त समय में संचित की गई वनस्पतियाँ अपने-अपने गुणों की दृष्टि से प्रबल सिद्ध होती हैं।

तत्र विशेषमाह –

सर्वाण्येव चाभिनवान्यन्यत्र
मधुघृतगुडपिप्पलीविडङ्गेभ्यः ॥7॥

यह ज्ञातव्य है कि समस्त प्रकार की वनस्पतियाँ नवीन ही ग्रहण करनी चाहिए लेकिन शहद, घृत, गुड़, पिप्पली और वायविडंग को सदैव पुराने देखकर ही काम में लेना चाहिए।

तथा चाह –

विडङ्गं पिप्पली क्षौद्रं सर्पिश्चाप्यनवं हितम्।
शेषमन्यत्त्वभिनवं गृह्णीयाद्दोषवर्जितम्॥8॥

इस बारे में कहा भी गया है कि विडंग, पिप्पली, शहद और घृत पुराने होने पर हितकारी होते हैं लेकिन अन्य द्रव्यों को दोषों से रहित देखकर नवीन रूप में ही काम में लेना चाहिए।

सर्वाण्येव सक्षीराणि वीर्य्यवन्ति
तेषामसम्पत्तावनतिक्रान्तसंवत्सराण्याददीतेति॥9॥

समस्त वनस्पतियाँ प्रायः क्षीरयुक्त अथवा रसयुक्त होने पर ही बलवती सिद्ध होती हैं। उनके सम्पत् (गुण) युक्त नहीं होने पर या नहीं मिलने पर एक वर्ष की अवधि वाली वनस्पतियाँ भी काम में ली जा सकती हैं।

अन्यदप्याह –

गन्धवर्णरसोपेता षड्विधा भूमिरिष्यते।
तस्माद् भूमिस्वभावेन बीजिनः षड्रसायुताः॥10॥

भूमि गन्ध, वर्ण और मधुरादि छह रसों के कारण छह प्रकार की होती है। इसलिए भूमि के स्वभाव के कारण पादप भी छहों रसों से युक्त पाए जाते हैं।

अन्यदप्याह –

अव्यक्तः किल तोयस्य रसो निश्चयनिश्चितः।
रस एव स चाव्यक्तो व्यक्तो भूमिरसाद्भवेत्॥11॥

जल प्रायः अव्यक्त रस वाला होता है। यह अनेक निश्चयों (प्रमाणों) से निश्चित होता है और वही जल का अव्यक्त रस भूमि के रस से व्यक्त हो जाता है।

अन्यदप्याह –

सर्वलक्षणसम्पन्ना भूमि साधारणा स्मृता।
द्रव्याणि यत्र तत्रैव तद्गुणानि विशेषतः॥12॥

पूर्वकथित समस्त लक्षणों के युक्त भूमि को साधारण जानना चाहिए। जो द्रव्य जैसी भूमि में उत्पन्न होते हैं, उन द्रव्यों के गुण विशेषकर उस भूमि के गुणों के अनुसार ही होते हैं।

अन्यदप्याह –

विगन्धेनापरामृष्टमविपन्नं रसादिभिः।
नवं द्रव्यं पुराणं वा ग्राह्यमेव विनिर्दिशेत्॥13॥

सामान्यतया जो द्रव्य विकृत गन्ध से युक्त नहीं हों तथा जिसके मधुरादि रसों में भी विकार पैदा नहीं हुआ हो, वह द्रव्य चाहे नवीन हो अथवा पुराना हो, उसको ग्राह्य ही स्वीकारना चाहिए।

अथोषधीय संग्रहकाले ज्ञातव्यमाह –

धूमवर्षानिक्लेदैः सर्वर्तुष्वनभिद्रुते।
ग्राहयित्वा गृहे न्यस्येद्विधिनौषधसङ्ग्रहम्॥14॥

ओषधीय वनस्पतियों को उचित विधि के अनुसार ग्रहण करना चाहिए और धूआँ, वर्षा, वायु और जल से होने वाली खराबी से बचाकर समस्त ऋतुओं के अनुकूल गृह में संग्रहित करना चाहिए।

संग्रहस्थानमाह –

प्लोतमृद्भाण्डफलकशङ्कुविन्यस्तभेषजम्।
प्रशस्तायां दिशि शुचौ भेषजागारमिष्यते॥15॥

संचित ओषधीय वनस्पतियों को ध्यानपूर्वक प्लोत (कपड़े के टुकड़े), मिट्टी के भाण्डे, काठ की तख्ती और खूँटियों पर रखना चाहिए। पवित्र स्थिति और दिशा में प्रशस्त भेषजागार (ओषधशाला) का निवेश करना चाहिए।

इति पराशरकृते वृक्षायुर्वेदे आयुर्वेदविभागे प्रक्षिप्तांशे
भूमिप्रविभागीयो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥2॥

इस प्रकार महर्षि पराशरकृत वृक्षायुर्वेद के आयुर्वेद विभाग में भूमि प्रविभागीय नामक द्वितीय अध्याय पूरा हुआ।

अथ वृक्षायुर्वेदविभागः नाम प्रक्षिप्तांशे पादपचिकित्साऽध्यायः ।।3 ।।

अथ वृक्षायुर्वेदः –

वृक्षायुर्वेदविधिना व्याधितन्तु यथाक्रमम्।
नीरुजं मानवः कृत्वा स्वर्गलोकमवाप्नुयात् ।।1 ।।

इसके उपरान्त, वृक्षायुर्वेद की विधि में यथाक्रम व्याधियों आदि को जानना चाहिए। जो मानव वृक्षों के समुदाय को नीरोग करने की चेष्टा करता है, वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है।

वृक्षविद्या च विततता एता विद्या महाफलाः।
धर्माधर्मप्रणयिनी धर्माधर्मप्रसाधिका ।।2 ।।

वृक्षविद्या का ज्ञान समस्त विद्याओं में महान् फलदायक है। यह धर्म और अधर्म को स्पष्ट करने वाली और धर्म तथा अधर्म का साधन करने वाली कही गई है।

कर्षुकाणां कृषिवृत्तिः पण्यं विपणिजीविनाम्।
गावोऽस्माकं परा वृत्तिरेतत् त्रैविधमुच्यते ।।3 ।।
विद्यया यो यया युक्तस्तस्य सा दैवतं परम्।
सैव पूज्यार्चना च सैव तस्योपकारिणी ।।4 ।।

खेती का कार्य करने वालों की जीविका कृषि को माना गया है, व्यापार से जीवन चलाने वाले वैश्यों की क्रय-विक्रय जीविका-वृत्ति है। आभीरादि की सर्वोत्कृष्ट-वृत्ति है गायों का पालन। वार्ताओं के ये तीन भेद कहे गए हैं, ये असामान्य देव रूप हैं, जो जिस विद्या को जानता है, वही उसके लिए सर्वोत्तम देवरूप है, वही पूजा-अर्चना के योग्य है और वह विद्या ही उसके लिए उपकार करने वाली मानी जाती है।

मन्त्रयज्ञपरा विप्राः सीतायज्ञाश्च कर्षुकाः।
गिरियज्ञास्तथा गोपा इज्योऽस्माभिर्गिरिर्वने ।।5 ।।

जो विप्रगण हैं, वे मन्त्र रूपी यज्ञ कर्म को करते हैं। किसान सीता-यज्ञ करते हैं अर्थात् वे खेतों को अच्छी तरह से जोतते हैं और हल को जोतने से जो रेखा बन जाती है, उसकी और हल की पूजा करते हैं। ग्वाले गिरियज्ञ करते हैं, अर्थात् पर्वतीय वन क्षेत्र में जहां गोचारण के योग्य घास मिल जाती है, उस भूमि को साधते हैं।

अथ प्राच्येतिहासमाह –

वैन्यो नाम महीपालो यः पृथुः परिकीर्तितः।
स धन्वी कवची जातस्तेजसा प्रज्वलन्निव।
पृथर्वैन्यः सर्वलोकान्ररक्ष क्षत्रपूर्वजः ।।6 ।।

पूर्वकाल में वैन्य नाम का एक राजा हुए जो पृथु के नाम से विख्यात थे। वे धनुष और कवचधारक थे और प्रज्वलित लौ के समान उत्पन्न हुए थे। पृथु वैन्य समस्त लोकों के रक्षक के रूप में क्षत्रियों के पूर्वज माने गए हैं।

राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः।
तस्य स्तवार्थमुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥7॥

उन पृथ्वीपति राजा ने अपने अभिषेक के बाद राजसूय यज्ञ किया। उनकी स्तुति के लिए निपुण सूत और मागध उत्पन्न हुए थे।

तेनेयं गौर्महाराज्ञा दुग्धा सस्यानि धीमता।
प्रजानां वृत्तिकामानां देवैर्ऋषिगणैः सह ॥8॥
पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैरप्सरोगणैः।
सर्वैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ॥9॥

महाराज पृथु ने वृत्ति की अभिलाषिणी अपनी प्रजा के लिए ऋषियों, देवताओं, पितरों, दानवों, गन्धर्वों, अप्सराओं, सभी पुण्यात्मा पुरुषों, वृक्षों और पर्वतों के समूहों के साथ गाय रूपधारिणी पृथ्वी से अनेकानेक अन्न राशियों का दोहन किया था।

तेषु तेषु पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा।
प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन लोकांस्त्वधारयत् ॥10॥

उक्त दोहन के समय पृथक्-पृथक् पात्रों में दूही गई वसुन्धरा ने दुहने वाले को यथाभिलषित वृक्षोत्पन्न क्षीर प्रदान की। इसी के द्वारा समस्त लोक की रक्षा सम्भव हो सकी।

अथ वृक्षारोपणयोग्यं स्थानमाह –

दूर्वावीरणसंयुक्ताः सानूपाः मृदुमृत्तिकाः।
तत्र वाप्याः शुभा वृक्षाः सुगन्धिफलशाखिनः ॥11॥

जिस भूमि में दूर्वा, वीरण जैसी घास उगाने वाली, जलयुक्त, मुलायम मिट्टी हो तो वहां पर शुभ वृक्षों को लगाना चाहिए। इन वृक्षों में सुगन्ध वाले, फल वाले और अनेक शाखाओं वाले होने चाहिए ताकि प्राणियों को छाया भी उपलब्ध हो सके।

अशोकचम्पकारिष्टपुन्नागश्च प्रियङ्गवः।
शिरीषोदुम्बराः श्रेष्ठाः पारिजातकमेव च ॥12॥
एते वृक्षाः शुभा ज्ञेयाः प्रथमं तांश्च रोपयेत्।
देवालये तथोद्याने गृहेषूपवनेषु च ॥13॥

यह ज्ञातव्य है कि प्रासादों-देवालयों के आसपास, उद्यान योग्य भूमि और घर में

बगीचे का विकास करना चाहिए। इसके बाद, वहाँ पर सर्वप्रथम अशोक, चम्पक, अरिष्ट, पुन्नाग, प्रियंगु (ककुनी या कौनी), सरस, गूलर और पारिजात आदि शुभ वृक्षों को लगाया जाना चाहिए।

तत्र काण्डादीनां रोपणमाह –

द्राक्षातिमुक्तको जम्बूबीजपूरकदाडिमाः।
कदलीबहुलाशोकाः काण्डरोप्याश्च वापयेत्॥14॥
अन्येऽपि शाखिनो ये च पुष्पिताः फलितास्तथा।
गोमयेन प्रलिप्ताश्च रोपणीया विवृद्धये॥15॥

व्यक्ति को चाहिए कि वह अंगूर, अतिमुक्तक, जामुन, बीजपूरक, दाड़िम, केला, बहुला और अशोक की बुवाई करे तो उनके काण्डों का रोपण करें। इनकी शाखाओं को अन्य वृक्षों पर लगाया जाना हो तो उनके पुष्पागमन और फलागमन काल को दृष्टिगत रखना चाहिए। इसके लिए यह नियम है कि उनको गोबर से प्रलिप्त करें ताकि वे रोपे जाने के साथ ही वृद्धि को प्राप्त करने लग जाएँ।

अथ वृक्षादीनां रोपणकालविचारमाह–

अजातशाखा ये वृक्षाः शिशिरे तांश्च रोपयेत्।
जातशाखाश्च हेमन्ते रोपणीया विधानतः।
सुस्कन्धाः शाखिनो ये तान् प्रावृट्काले तु रोपयेत्॥16॥

जिन वृक्षों की शाखाएँ नहीं फूटी हों, उनको शिशिर अर्थात् माघ और फाल्गुन में लगाया जाना चाहिए। जिनकी शाखाएँ निकल आई हों, उन वृक्षों को हेमन्त ऋतु के दौरान लगाएँ। जिनके अच्छे स्कन्ध विद्यमान हों, उनको वर्षाकाल (श्रावण, भाद्रपद) में लगाया जाना उचित होता है।

अथ वाटिकायां क्षेत्राणां रोपणनियमाह –

घृतं क्षीरं तथा क्षौद्रमुशीरतिलगोमयैः।
विडङ्गलेपनं मूलात् सङ्क्रामणविरोपणम्॥17॥

यदि वृक्षों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित करना हो तो उनको उखाड़ने के बाद मूल में घी, दूध, शहद, खस, तिल का तेल मिला गोबर अवश्य लगाना चाहिए। उन पर वायविडंग के चूर्ण का लेपन भी लाभदायक होता है।

अथोत्तममध्यमाधमं रोपणप्रकारमाह –

अन्तरं विंशतिर्हस्ता वृक्षाणामुत्तमं स्मृतम्।
मध्यमं षोडश ज्ञेयमधमं द्वादश स्मृतम्॥18॥

वृक्षों के रोपण का नियम यह है कि दो वृक्षों के बीच अन्तराल 20 हाथ रखना उत्तम होता है। एक-दूसरे वृक्ष के बीच 16 हाथ की दूरी को मध्यम और 12 हाथ का अन्तराल अधम जानना चाहिए।

तत्र व्याधिनामोपचारमाह -

शाखाविटपपत्रेश्च छायया विहिताश्च ये।
येऽपि पर्णफलैर्हीना रूक्षाः पत्रैश्च पाण्डुरैः ॥19॥
शीतोष्णवर्षवाताद्यैर्मूलैर्व्यामिश्रितैरपि ।
शाखिनां तु भवेद्रोगो द्विपानां लेखनेन च ॥20॥

अनेक बार वृक्षों की शाखाएँ और पत्ते छाया में आ जाते हैं अर्थात् कुम्हलाए हुए दृष्टिगोचर होते हैं। यह भी सम्भव है कि वृक्ष पत्तों और फल से रहित हो जाते हैं, सूख जाते हैं अथवा उनके पत्ते पीले पड़ जाते हैं। अधिक सर्दी, अधिक गर्मी, अधिक वर्षा, अधिक हवाओं के चलने इत्यादि कारणों से अथवा मिले-जुले कारणों से ऐसा सम्भव है। ऐसे में वृक्षों को रोगग्रस्त जानकर उनकी लिखाई का कार्य करना चाहिए।

चिकित्सितेषु कर्तव्या ये च भूयः पुनर्नवाः।
शोधयेत्प्रथमं शस्त्रैः प्रलेपं दापयेत्ततः ॥21॥
कर्दमेन विडङ्गैश्च घृतमिश्रैश्च लेपयेत्।
क्षीरतोयेन सेकः स्याद्रोहणं सर्वशाखिनाम् ॥22॥

जो वृक्ष रोगयुक्त दिखाई दें, उनकी सर्वसम्भव चिकित्सा की जानी चाहिए ताकि वे पुनः नवीन अथवा आरोग्य वाले हो सकें। इसके लिए सर्वप्रथम रोग वाले वृक्षों के सम्बन्धित अंग की शस्त्र से छिलाई करनी चाहिए। इसके बाद उस अंग पर प्रलेपन कार्य करें। इसके लिए कीचड़ में वायविडंग और घी मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। तदनन्तर दूध मिश्रित जल से सिंचाई करें। इससे समस्त शाखाएं पुनः आरोहित होने लगती हैं।

अथ वृक्षवृद्ध्यर्थं विधिमाह -

अजाविकानां द्वौ प्रस्थौ शकृच्चूर्णं च कारयेत्।
तिलानामाढकं दद्यात् सक्तूनां प्रस्थमेव च ॥23॥
गोमांसशतमेकं स्याद्द्वे सार्धे सलिलस्य च।
सप्ताहमुषितैरेतैः सेकं दद्याद्वनस्पतेः ॥
स भवेत्फलपुष्पैश्च पत्रैश्चाङ्कुरितैर्वृतः ॥24॥

वृक्षों की उचित वृद्धि के लिए उनको खाद देना चाहिए। खाद के रूप में भेड़-बकरियों की मेंगनी का चूर्ण दो प्रस्थ (लगभग 2 किलो) प्रमाण लें। तिल एक आढ़क (4 किलो) और सतुआ एक प्रस्थ (1 किलो) प्रमाण लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त सौ

पल (6.400 किलो) के प्रमाण गोमांस और उसका ढाई गुणा (13 किलो) पानी लें। इन सभी द्रव्यों को एक सप्ताह तक भरकर रखें और फिर वनस्पति के जड़ों की सिंचाई करनी चाहिए। इस प्रयोग से पेड़-पौधों पर फल-फूल, पत्तों का अंकुरण इस तरह होता है कि वे उनसे भरे-पूरे दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

अथाग्राह्य धान्यमाह –

अनार्तवं व्याधिहतमर्यागतमेव च।
अभूमिजं नवञ्चापि न धान्यं गुणवत् स्मृतम्॥25॥

वे धान्य-वनस्पति ग्रहण के योग्य नहीं हैं, जो बेमौसम में उत्पन्न हुए हों। फसल में यदि कोई रोग लग गया हो और फल उससे प्रभावित हुए हों, फल अपरिपक्व हों, खराब भूमि में उत्पन्न हुए हों और एकदम नवीन धान्य हों।

नवं धान्यमभिष्यन्दि लघु संवत्सरोषितम्।
विदाहि गुरु विष्टम्भि विरूढं दृष्टिदूषणम्॥26॥

एकदम नवीन धान्य अभिष्यन्दकारक (पसीने का कारण) होते हैं। एक साल पुराना धान्य हो तो हल्का हो जाता है। विरूढ़ (अंकुरित) धान्य विदाहकारक होते हैं। वे पचने की दृष्टि से भारी, विष्टम्भकारक (कब्जोत्पादक) और नेत्रों को दूषित करते हैं।

अथ त्याज्यफलमाह –

व्याधितं कृमिजुष्टं च पाकातीतमकालजम्।
वर्जनीयं फलं सर्वमपर्यागतमेव च॥27॥

जो फलादि उत्पाद रोगयुक्त हों, कृमियों से व्याप्त हो, अधिक पककर सड़ गया हो, बिना मौसम में लगा हुआ हो और बिना पका हुआ हो, ऐसे फलों को उपयोग की दृष्टि से त्याग दिया जाना चाहिए।

हिमानिलोष्णदुर्वातव्याललालादिदूषितम्।
जन्तुजुष्टं जले मग्नमभूमिजमनार्त्तवम्॥28॥

पाले का शिकार हुए, झंझावात प्रभावित, गर्म हवा या लू से दग्ध, सर्पादि विषैले जीवों की की लार के लगने से दूषित और अन्य जन्तुओं से घिरे हुए, जल में डूबे हुए, अनुचित भूमि में दबे हुए तथा बेमौसम में उत्पन्न हुए हों, वे त्याज्य होते हैं।

वर्जितपत्रशाकमाह –

कर्कशं परिजीर्णं च कृमिजुष्टमदेशजम्।
वर्जयेत् पत्रशाकं तद्यदकालविराहि च॥29॥

जो पत्रशाक कर्कश हो, जीर्ण या पुराना हो गया हो, कीड़ों से खाया गया हो, अपवित्र भूमि में और बिना मौसम के उत्पन्न हुआ हो, उसको वर्जित समझना चाहिए।

वर्जितकन्दमाह –

बालं ह्यनार्त्तवं जीर्णं व्याधितं कृमिभक्षितम्।
कन्दं विवर्जयेत् सर्वं यो वा सम्यङ् न रोहति ॥30॥

जो कन्द कच्चा हो, बेमौसम का हो, अधिक पुराना हो गया हो, किसी भी रोग से युक्त हो, कीड़ों से खाया हुआ हो, तथा जिसको बोने पर ठीक से न उग सकता हो, उसको त्याग देना चाहिए।

अन्यदप्याह –

रोप्यातिरोप्या लघवः शीघ्रपाकाः गुणोत्तराः।
अदाहिनो दोषहरा बल्या मूत्रविवर्द्धनाः ॥31॥

एक बार उखाड़कर अन्य भूमि में रोपे गए (रोप्य शालि) और अनेक बार एक स्थान से उखाड़कर अन्य स्थान में रोपे गए (अतिरोप्य शालि) आहार की दृष्टि से लघु होते हैं, वे शीघ्र पचने वाले और गुणों में उत्तम होते हैं। ऐसे शालिधान्य दाह नहीं करते, दोषों का हरण करते हैं, बलदायक होते हैं और पर्याप्त मूत्र उत्पादक होते हैं।

शालयश्छिन्नरूढा ये रूक्षास्ते बद्धवर्चसः।
तिक्ताः कषायाः पित्तघ्ना लघुपाकाः कफापहाः ॥32॥

जिस धान्य के पौधे को एक बार काट देने पर यदि फिर से बड़ा हो जाता हो, उसके शालि रूक्ष होते हैं और वे मल को बाँधने वाले, स्वाद में तिक्त और कषाय होते हैं। वे पित्तनाशक, पचने में हल्के और कफहारी होते हैं।

दग्धायामवनौ जाताः शालयो लघुपाकिनः।
कषाया बद्धविण्मूत्रा रूक्षाः श्लेष्मापकर्षणाः ॥33॥

जो शालि चावल दग्धभूमि में उत्पन्न हुए हों, वे पाक में लघु होते हैं तथा रस में कषाय और विष्ठा-मूत्र को बाँधने वाले, स्वरूप में रूक्ष तथा गुण में कफ का निवारण करते हैं।

स्थलजा कफपित्तघ्ना कषायाः कटुकान्वयाः।
किञ्चित् सतिक्तमधुराः पवनानलवर्धनाः ॥34॥

स्थलजात या जांगलदेश में उत्पन्न होने वाले शालि चावल कफ और वात व्याधि के नाशक होते हैं। वे स्वाद में कुछ कषाय और कुछ कटु, तिक्त और मधुर हो सकते हैं। वे वायु और पाचकाग्नि के वर्धक होते हैं।

केदारा मधुरा वृष्या बल्याः पित्तनिवर्हणाः।
ईषत्कषायाल्पमला गुरवः कफशुक्रलाः ॥35॥

केदार भूमि (क्यारियों वाली या पर्याप्त जल वाली) में उत्पादित होने वाले शालि

चावल स्वाद में मधुर, गुण में वृष्य, बलवर्धक, पित्तनाशक, कुछ कषाय, कुछ मलोत्पादक, पचने में भारी तथा कफ व वीर्योत्पादक होते हैं।

अथ वृक्षरोपणनक्षत्राः –

ध्रुवमृदुमूलविशाखा गुरुभं श्रवणस्तथाश्विनी हस्तः।
उक्तानि दिव्यदृग्भिः पादसंरोपणे भानि ॥36॥

पादपों के रोपण के लिए दिव्य दृष्टि वाले मुनियों ने निम्न नक्षत्रों को उत्तम बताया है– तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मूल, विशाखा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी और हस्त।

पूर्तादिकर्त्तव्ये वृक्षारोपणनिर्देशमाह –

कृत्वा पर्याप्तं अम्बुसरोद्यानं विनिवेश्य च।
नानाविधद्रुमां रोपयेद्यशोधर्माभिवृद्धये ॥37॥

पर्याप्त जलराशि वाले सरोवर बनाएँ, बगीचे लगाएँ और वहाँ पर धर्म तथा यश की अभिवृद्धि के लिए अनेक प्रकार के वृक्षों का रोपण करना चाहिए।

इष्टापूर्त्तादिभिर्यज्ञैर्यावत्कुर्वन्ति मानवाः।
अग्निष्टोमादिपशुभिरिष्टं यज्ञं प्रकीर्त्तितम् ॥38॥
द्वारिबन्ध च कूपादि गुल्मद्रुमां च रोपणम्।
स्वर्गस्थितिं नित्यं कुर्यात्तद्दानं पूर्तसंज्ञितम् ॥39॥

इष्टकर्म और पूर्तकर्म के रूप में मानव जो कुछ कर्म करता है, उनमें अग्निष्टोमादि से लेकर पशुयागादि सब के सब इष्ट यज्ञ के रूप कहे गए हैं। इनके अतिरिक्त बाँध बनवाना और कूप खुदवाना सहित गुल्म–पौधों का रोपण करना– ये सब पूर्त कर्म के रूप हैं। इनका उत्सर्ग और दान करने से नित्य स्वर्ग में स्थिति बनी रहती हैं।

इति पराशरकृते वृक्षायुर्वेदे आयुर्वेदविभागे प्रक्षिप्तांशे
पादपचिकित्सा नाम तृतीयोऽध्यायः ॥3॥

इस प्रकार महर्षि पराशरकृत वृक्षायुर्वेद के आयुर्वेद विभाग में पादपचिकित्सा नामक तृतीय अध्याय पूरा हुआ।

❖❖❖

परिशिष्ट

द्रव्यज्ञानार्थं निघण्टुसंग्रह

अथात्र व्यवहारार्थं निघण्टुरभिलिख्यते।
कस्तूरी मदनी नाभिर्मदो दर्पो मृगोद्भवा।
मृगदर्पो मृगमदो गन्धचेल्येकवाचका ॥1॥
स्फटिकेन्दुतुषाराख्यं कर्पूरं घनसारकम्।
काश्मीरं घुसृणं रक्तसञ्ज्ञकं कुङ्कुमं विदुः ॥2॥
वानराख्यं चलाख्यं च तैलं सिह्लं तुष्ककक्कम्।
कालीयं जोङ्गकं लोहं खलः कार्पासकोऽगुरुः ॥3॥
हिमं शीताख्यमाहेयं मलयाख्यं च चन्दनम्।
सूक्ष्मैला बहुलाख्या च चन्द्रैला द्राविडी त्रुटिः ॥4॥
श्रीपुष्पं देवपुष्पं च लघुपुष्पं लवङ्गकम्।
कोलं कोलककक्कोले फलं जातीफल विदुः ॥5॥
उष्णं कटुफलं जातिं मालतीं जातिपत्रिकाम्।
फलं पत्रं तमालं च गन्धपत्रं च नेत्रकम् ॥6॥
भृङ्गाख्यं नेत्रराजं च वराङ्गं त्वक तनुत्वचम्।
गणकाख्यं काञ्चनाख्यं केसरं नागकेसरम् ॥7॥
रसं गन्धरसं पिण्डरसं बोलं चलं विदुः।
पूतिकोशो विडालाख्यश्चेलिस्तज्जातकाभिधः ॥8॥
लता लतानाभिनाम्नी रेणुः कुन्ती हरेणुका।
मेघाख्यं मुस्तमिच्छन्ति वक्राख्यं तगरं नतम् ॥9॥
करजाख्यं नखं शङ्खं तथा नखपदं स्मृतम्।
ज्वरक्षयोत्पलाख्यं च वाप्यं कुष्ठं गदोऽथ रुक् ॥10॥
मांसी केशीं पिशाचीं च नलदं कमलं जटाम्।
श्यामा प्रियाख्या श्रीसञ्ज्ञा प्रियङ्गुः फलिनी स्मृता ॥11॥
ग्रन्थिपर्णो ग्रन्थिपर्णं शुकं स्थौणेयकं विदुः।
ह्रीवेरं वारिसञ्ज्ञं च ह्रीवारं बालकं स्मृतम् ॥12॥
रणं सेव्यं मृणालाख्यमुशीरमिह कथ्यते।
रामोमृणालो रामञ्जो व्यामकं दवदग्धकम् ॥13॥

प्रवालं विद्रुमाख्यं च वल्ली स्यान्नलिका नली।
स्पृक्काऽसृग्ब्राह्मणी माला देवी च परिभाष्यते ॥14॥
चक्राङ्गी कटुकी गन्धा जटिलोग्रा जया वचा।
कर्चुं कर्चूरमुग्रं च गन्धमूलं च कीर्त्यते ॥15॥
पुष्पा समन्तपुष्पा च शतपुष्पा शता मसिः।
कुसुमालो भवेच्चण्डः स्तेनश्चोरोऽथ तस्करः ॥16॥
आकृष्टं केशपालितं जरा स्थविरसञ्ज्ञितम्।
गिर्याख्यं गिरिजाख्यं च शैलेयं समुदाहृतम् ॥17॥
दार्वी दारु निशाख्या च कालेयं पीतचन्दनम्।
पीता हरिद्रा नक्ताख्या दारु तद्देवदारु यत् ॥18॥
रक्ता समङ्गा मञ्जिष्ठा मधुकं मधुयष्टिका।
धान्याकं धान्यकं धानीयकं कुस्तुम्बुरु स्मृतम् ॥19॥
मरुं मरुवकं मूर्वी फणिजं सानवं तथा।
सर्जा सर्जरसासञ्ज्ञा रालाचेह निगद्यते ॥20॥
पुरं गुग्गुलं भद्रं च भद्राख्यं महिसाक्षकम्।
रोहिषं पेशलं प्राहुः पर्यासं च कुठेरकम् ॥21॥
क्षीरदध्याज्यसंज्ञश्च श्रीवासः श्रीश्च वासकः।
जतु लाक्षा कृमिस्तज्ज्ञा धात्रीमामलकं विदुः ॥22॥
हरीतक्याभया पथ्या विजयाप्राणदाऽऽपि च।
कलिर्बिभीतकं चाक्षं त्रिफलं स्यादिदं त्रिकम् ॥23॥
शुण्ठीमरीचपिप्पल्यस्त्र्यूषणं सर्वसंयुता।
त्रिफला सत्रिजाता च त्रिवर्गं त्रितयं स्मृतम् ॥24॥
त्वक् पत्रैला त्रिजातं स्याच्चतुर्जातं सकेसरम्।
त्रिफला स्यात् तु कक्कोलकटुजातिफलैस्त्रिभिः ॥25॥
घृतेन्दुकुङ्कुमै पञ्चसुगन्धिः कोलपुष्पवृत्।
कोलोज्झितः सदर्पश्च देवराजः सदैव हि ॥26॥
कर्पूर कुङ्कुमं दर्प त्रितयं स्यात् त्रिगन्धिकम्।
लवङ्गफलकक्कोलकटुकर्पूरकुङ्कुमैः ॥27॥
त्वग्लताजातिचूतोत्थरसैर्दशसुगन्धिकम् ।
तीक्ष्णं मरीचमिच्छन्ति चित्रकं वह्निसञ्ज्ञकम् ॥28॥

रोचना रुचिरा ज्ञेया शर्करा सिकता सिता।
पुष्पासवः पुष्परसः सारघ मधुमाक्षिकम्॥29॥
क्षौद्रं भ्रामरमित्याहुस्तन्मलं सिक्थकं विदुः।
मदनं च मधूच्छिष्ट मधुसारं च पण्डिताः॥30॥
द्राक्षाफलोत्तमा बिल्वः श्रीफलः श्रीतरुस्तथा।
लुङ्गं च मातुलुङ्गं च केशरी बीजपूरकम्॥31॥
सौभाञ्जनं सुभाञ्जं च शिग्रुवत् फलपल्लवा।
अजो वस्तो जरश्छागो मूत्रं स्त्रावस्तदम्बु वा॥32॥
त्वकसहा सुरभिर्वज्री सुरभिश्च महातरुः।
स्वर्णक्षीरी स्वर्णलता ज्योतिष्मत्यभिधीयते॥33॥
सुवीरं काचिकं वीरं तालुमालं च तालुकम्।
सौभाग्यं टङ्कणं टङ्कं बाकुची मालतीभवम्॥34॥
निःसारं राक्षसं पद्मं कच्छं कतकजं स्मृतम्।
आमश्चूतश्च कामाङ्गः सहकारः स्मरप्रियम्॥35॥
अक्षरं कोकिलाक्षश्च निघण्टुज्ञैरुदाहृतम्॥

सन्दर्भ ग्रन्थ

अष्टाङ्गसंग्रह : वागभट प्रणीत, व्याख्याकार – पं. लालचन्द्र शास्त्री, वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड, नागपुर, संस्करण 1981 ई.

काश्यपीय कृषि पद्धति : मुनि काश्यप प्रणीत, सम्पादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2013 ई.

कृषिपराशर : पराशरप्रणीत, सम्पादक : प्रो. गिरिजाप्रसन्न मजूमदार, सुरेशचन्द्र बनर्जी, द एशियाटिक सोसायटी, कोलकाता, 1960 ई. अनुवादक : द्वारकाप्रसाद शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2003 ई.

गरुडपुराण : वेद व्यासकृत, अनुवादक : चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2012 ई.

चरकसंहिता : महर्षि चरक, सम्पादक : आचार्य विद्याधर शुक्ल, प्रो. रविदत्त त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2007 ई.

देवीपुराण : वेद व्यासकृत, अनुवादक : एस. एन. खण्डेलवाल, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2003 ई.

बृहत्संहिता : वराहमिहिरकृत, अनुवादक : अच्युतानन्द झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1997 ई., भटोत्पलीय विवृत्ति : सम्पादक – पं. सुधाकर द्विवेदी, पुनर्सम्पादन–कृष्णचन्द्र द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1996 ई.

मानसोल्लास : भूलोकमल्ल सोमेश्वर कृत, सम्पादक–अनुवादक : श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2019 ई.

विश्ववल्लभ वृक्षायुर्वेद : पं. चक्रपाणि मिश्र कृत, सम्पादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, 2004 ई.

विष्णुधर्मोत्तरपुराण : कृष्णद्वैपायन व्यास प्रणीत, अनुवादक : कपिल नारायण, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2014 ई.

वृक्षायुर्वेद : सुरपाल प्रणीत, सम्पादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2004 ई.

सस्यवेद : सम्पादक : डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2013 ई.

सुश्रुतसंहिता : महर्षि सुश्रुत, व्याख्याकार : डॉ. अम्बिकादत्त शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2018 ई.

निघण्टु, कोशादि

अमरकोश : अमरसिंहकृत, अपरनाम नामलिंगानुशासनम्, टीकाकार : पण्डित रामस्वरूप भोलानाथ गौड़, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई, 1952 ई.

धन्वन्तरि तन्त्र शिक्षा : महादेवप्रणीत, पंडित कन्हैयालाल मिश्र, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई, संस्करण विक्रम संवत् 2063.

धन्वन्तरिनिघण्टु : सम्पादक पं. हरिप्रसाद त्रिपाठी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2008 ई.

भावप्रकाशनिघण्टु : भावमिश्रप्रणीत, सम्पादक : प्रो. कृष्णचन्द्र चुनेकर, चौखम्भा भारती अकादमी, वाराणसी, संस्करण 2010 ई.

वनौषधि कोश (गुजराती) : केशवराम कांशीराम शास्त्री, प्राच्यविद्या मन्दिर, महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा, 1982 ई.

शब्दकल्पद्रुम : स्यारराजा राधाकान्तदेव कृत, सम्पादक : वरदाप्रसाद हरिचरण, 71 पाथुरिया घाटा स्ट्रीट, कोलकाता, शक 1808, पुनर्मुद्रण : राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 1987 ई.

❖❖❖

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

राजस्थान के चित्तौड़ जिले के आकोला ग्राम में 2 अक्टूबर, 1964 को जन्म, स्व-शिक्षित-अधिस्नातक (प्राचीन भारती इतिहास, हिन्दी एवं अंग्रेजी), पी-एच.डी.-मेवाड़ प्रदेश का हीड़ साहित्य (राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर), अन्यपत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा एवं शिक्षास्नातक (सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर)। लोकसाहित्य एवं इण्डोलॉजी के ख्यात अध्येता और इतिहास, पुराण सहित भारतीय सांस्कृतिक परम्परा पर गम्भीर शोध कार्य। विशेषकर प्राचीन भारतीय कला और तकनीकी विषयों पर कई स्तरीय संगोष्ठियों पर व्याख्यान एवं कई शोधपूर्ण आलेखों का प्रकाशन। इन्हीं विषयों पर 50 से अधिक ग्रन्थों का प्राकाशन। अधिकांश ग्रन्थ मूल पाण्डुलिपियों के आधार पर सम्पादित और अनुदित। प्रकाशित ग्रन्थों में महाराणा प्रताप के दरबारी पं. चक्रपाणि मिश्र कृत **राज्याभिषेकपद्धति**, **मुहूर्तमाला** एवं **विश्ववल्लभ-वृक्षायुर्वेद**, श्रीपतिभट्ट विरचित **ज्योतिषरत्नमाला**, विट्ठलदीक्षित कृत **मुहूर्तकल्पद्रुम**, महादेवदैवज्ञ कृत **मुहूर्तदीपक**, सुरपालकृत **वृक्षायुर्वेद**, नग्नजिताचार्य कृत **चित्रलक्षणम्**, अज्ञातकर्तृक कृत **वास्तुविद्या**, विश्वकर्मीय **शिल्पशास्त्रम्**, सूत्रधारमण्डनकृत **वास्तुसारमण्डनम्**, **आयतत्त्वम्**, **राजवल्लभवास्तुशास्त्रम्**, **देवतामूर्तिप्रकरणम्-रूपमण्डनम्**, **प्रसादमण्डनम्**, **वास्तुमण्डनम्**, सूत्रधारनाथाकृत **वास्तुमञ्जरी**, सूत्रधार गोविन्दकृत **कलानिधि**, **वास्तु उद्धारधोरणी**, मयमुनिकृत **मयमतम्**, जिनदत्तसूरीकृत **विवेक विलास**, ब्रह्मानन्दकृत **योगगीता**, **राजमार्तण्ड-राजमृगाङ्क**, जीवानन्दकृत **वास्तुरत्नावली**, वायुप्रोक्त **एकलिङ्गपुराण**, **विश्वकर्मावास्तुशास्त्रम्** आदि कृतियाँ चर्चित। भुवनदेवाचार्य कृत **अपराजितपृच्छा** ग्रन्थ में मूलपाठ का ससन्दर्भ पुनर्संशोधन, पाद टिप्पणियों से विषय-वस्तु का विश्लेषण और समग्रत प्रामाणिक अनुवाद। अल्पज्ञात धर्मोत्तर पुराणों सहित भारतीय कला पर लगभग दो दर्जन मूल ग्रन्थ प्रकाशाधीन।

NOTE

NOTE

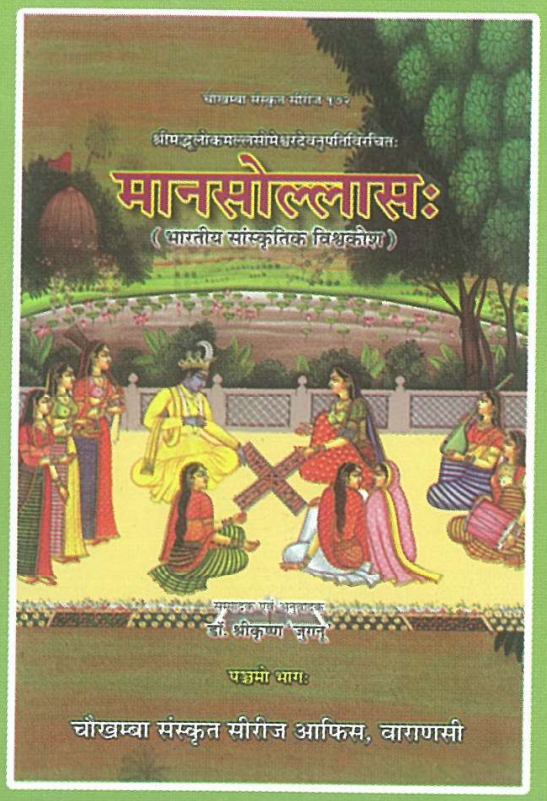

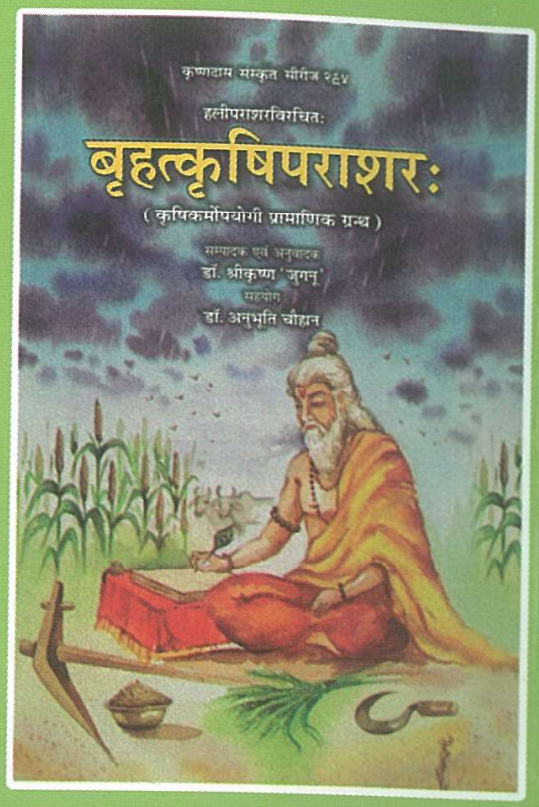

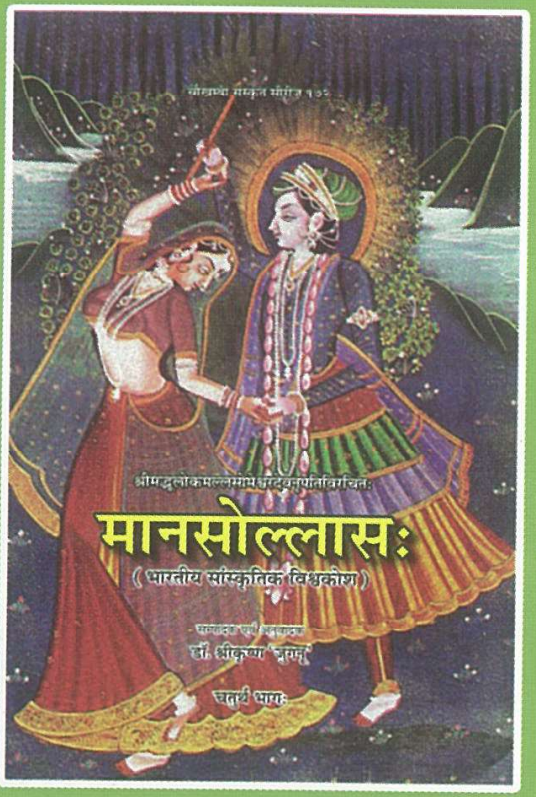

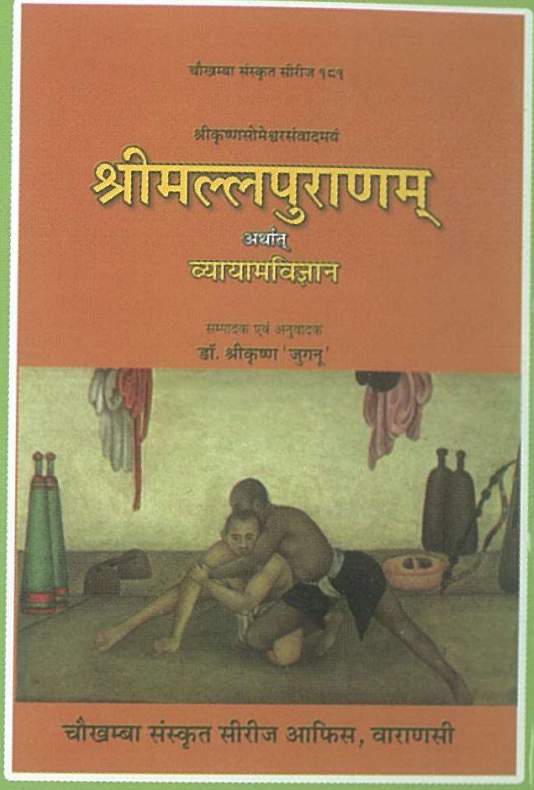

designed by Shreyashi GRAPHICS, mo. 9839814784

ब.आ.सी. ११४

गुल्मवृक्षायुर्वेदः

सम्पादक एवं अनुवादक – डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' एवं मुन्नालाल डाकोत

Also can be had from : **Chowkhamba Krishnadas Academy,** Varanasi.

₹ 175.00